स्कूल-प्रबन्ध

सतवंत कोछड़ एम० ए०

लाहौर बुक शाप

लुधियाना

स्कूल प्रबन्ध



दिसम्बर

१९५९



दूसरा संस्करण

११००



प्रकाशक :

स० जीवन सिंह एम० ए०

व्यवस्थापक लाहौर बुक शाप

क्लाक टावर, लुधियाना



मुद्रक :

स० जीवन सिंह एम० ए०

लाहौर आर्ट प्रेस,

लुधियाना



मूल्य ४.४०

विषय-सूची

प्रथम परिच्छेद

आधुनिक स्कूल

आज संसार जागृति की करवट ले रहा है—इसे प्रत्येक स्थान पर झंझोड़ा जा रहा है और इस समय यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि शिक्षा प्रणाली को भी नये-नये दृष्टिकोणों से देखा जाये—उसका निरीक्षण किया जाये। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारी नई पौद सुन्दर फल फूल बने और हमारे बच्चों में से हमें महत्वाकाँक्षायें रखने वाले सजग और सुखकारी व्यक्तित्व मिल सकें, तो हमें न केवल घर, बल्कि स्कूल, और यहां तक कि सारे समाज में एक सजग और सुखकारी वातावरण पैदा करना होगा। आज के शिक्षा-विशेषज्ञ उस शिक्षा और उस शिक्षा-प्रणाली को बिलकुल बदल देना चाहते हैं जो प्रत्येक नई पौद को छील छाल कर एक ही स्तर पर रखना चाहती है, जिसमें खट्टे और गुलाब का मोल एक जैसा है और जिसमें नरगिस और करेले की जड़ों में कोई अन्तर नहीं माना जाता।

एक नया, सचेत और ज़िन्दगी की धड़कनों से स्पन्दित भ्रातृ-भाव पैदा करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है जिसके आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को यथोचित स्थान दिया जा सके। हर जीव प्रसन्न और स्वतन्त्र रह सके, अपना विकास कर सके और अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह उभार सके। स्कूलों के प्रबन्ध में परिवर्तन लाने के लिए कई प्रकार के प्रयत्न किये जा रहे हैं। यह परिवर्तन स्कूलों के कई पहलुओं में नज़र आ रहे हैं।

अध्यापक का स्थान

The Position of the Teacher

प्राचीन समय में अध्यापक छोटे बच्चों की आवश्यकताओं से बिलकुल अनभिज्ञ रहता था। इस बात की उपेक्षा की जाती थी कि बच्चा एक फलने फूलने वाला अस्तित्व है और भिन्न भिन्न स्थानों पर उसकी आवश्यकतायें भिन्न भिन्न होती हैं। उस समय विद्या का केन्द्र अध्यापक था और बच्चे को वही पढ़ाया लिखाया जाता था जो अध्यापक की समझ के अनुसार ठीक होता था इसके अतिरिक्त पढ़ने की विधि भी अध्यापक द्वारा निश्चित की जाती थी । बच्चों में ज्ञान इस प्रकार भरने की कोशिश की जाती थी जिस प्रकार बहते नल से बोतलें भरी जाती हैं। बच्चे को एक प्रकार की गीली मिट्टी ही समझा जाता था जिसको अध्यापक जो आकृति चाहे दे दे। अध्यापक पूरे अधिकार रखने वाला एक निरंकुश बादशाह था जिस के एक हाथ में डण्डा और दूसरे हाथ में पुस्तक होती थी।

बच्चों में यह डर पैदा किया जाता था कि सारे संसार का भण्डार उनके मास्टर जी हैं, उनकी आज्ञा का पालन अति आवश्यक है, इसलिये नहीं कि वे जो कुछ कहते हैं सच या ठीक है, बल्कि इसलिये कि वे मास्टर जी हैं। बच्चे के लिये अध्यापक के पुराने हो (Second hand) चुके विचारों और तरीकों (Manners) को अपनाने के सिवा और कोई चारा नहीं होता था।

परन्तु आज के स्कूल का केन्द्र बच्चा है। आधुनिक शिक्षा के अनुसार अध्यापक के पढ़ाने लिखाने के स्थान पर बच्चे के स्वयं पढ़ने लिखने पर जोर दिया जा रहा है । अध्यापक एक पथ-पर्दशक, मित्र या दार्शनिक है, न कि निरंकुश बादशाह। वर्तमान शिक्षा का आदर्श बच्चे की प्रकृति और उसके फलते फूलते व्यक्तित्व को विकासशील बनाना

है ताकि बच्चा अपने व्यक्तित्व को भली प्रकार प्रफुल्लित कर सके। इसलिये अध्यापक की पहली विशेषता यह है कि वह अपने आप को एक अनावश्यक वस्तु बना ले। केवल एक नेक मित्र की तरह जरूरत के अवसर पर यथोचित सहायता करना ही उसकी विद्वता है। अब 'मास्टर', 'मास्टरानी' के स्थान पर 'प्रधान सलाहकार' (Chief Advisor) और 'प्रधान प्रबन्ध करने वाली' (Chief Directress) शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है।

यहां पर एक बात के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है कि अध्यापक एक अनावश्यक वस्तु नहीं। उसका काम तो पहले से भी अधिक कठिन हो गया है। उसे अपने कथन और कर्म का पूरा ख्याल रखना पड़ता है। प्रत्येक काम में उसकी सहायता की बड़ी आवश्यकता है। यह बात अलग है कि उसके प्रभुत्व को पसन्द नहीं किया जाता, फिर भी ठीक अवसर पर ठीक प्रकार और ठीक ढँग की सहायता करना उसका कर्तव्य है। इसलिये, अध्यापक का सजग और सियाना होना जरूरी है ताकि वह बच्चों और उनके बाल-सुलभ भावों को ठीक प्रकार से समझ सके। वह केवल गणित, इतिहास, भूगोल आदि का ज्ञाता ही नहीं होना चाहिये बल्कि बाल-मनोविज्ञान (Child Psychology) में भी निपुण होना चाहिये।

२. शिक्षा और शिक्षा प्रणाली

(Contents and Methods of Education)

शिक्षा और शिक्षा-प्रणाली में भी काफी परिवर्तन आ गया हैं। जहां पहले केवल पढ़ने, लिखने और गणित (3 Rs.—Reading, Writing and Arithmetic) पर ही जोर दिया जाता था, अब वहां मनोविनोद (Recreation) की ओर

भी पूरा ध्यान दिया जाता है । यह धारणा बल पकड़ता जा रही है कि बच्चा उसी समय सुन्दर ढंग से पढ़ सकता है जबकि वह खेलने की वृत्ति में हो । अब सिलेबस के अतिरिक्त खेलों (Extra Curricular Activties) को अनावश्यक या महत्वहीन नहीं समझा जाता बल्कि अब ये सिलेबस सम्बन्धी कामों का एक अंग समझी जाती हैं । इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि, क्योंकि 'सारा बच्चा' स्कूल आता है, इसलिये कोई कारण नहीं कि उसके मानसिक एवं शारीरिक विकास की उपेक्षा करके केवल उसके मस्तिष्क को विकसित करने के लिये ही प्रयत्न किये जायें । आज हमारे स्कूलों का यह कर्तव्य है कि वे बच्चे को समाज में रहने वाला एक सफल व्यक्ति और राष्ट्र का अविच्छिन्न भाग बनायें । स्कूलों की सारी शिक्षा का आधार दो बातें हैं जिन्हें हम आधुनिक शिक्षा के महत्वशाली स्तम्भ समझते हैं । अनुभव करके अभिव्यक्त करो अर्थात अनुभूति और अभिव्यक्ति (Experience and Express) इसके लिये एक खुला वातावरण पैदा किया जाये ताकि बच्चे को अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का अवसर मिल सके और वह नित नये अनुभव प्राप्त कर सके । आधुनिक स्कूल एक ऐसी जगह नहीं जहां पर बच्चे को मरघट जैसी निस्तब्धता में रहना पड़े, बल्कि एक ऐसा स्थान है जहां बच्चा खुशी से जाना चाहता है और वहां ठहरना पसन्द करता है । यह तो एक मधुमक्खियों का छत्ता है जहां हर समय कुछ न कुछ होता रहता है—जहां सबसे बड़ा खिलाड़ी अध्यापक नहीं, बल्कि विद्यार्थी हैं । बहुत से काम तो अध्यापक और विद्यार्थियों के सम्मलित प्रयासों से ही सफल हो सकते हैं । आधुनिक शिक्षा का आदर्श बच्चे के मन, मस्तिष्क और शरीर को विकासशील बनाना है ताकि बच्चा एक उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तित्व बन सके । इसके लिये स्कूलों और स्कूलों के सामान पर धन खर्च करने से संकोच

नहीं किया जाता। इस प्रकार के सामान (Apparatus) का आविष्कार किया गया है जिसके द्वारा बच्चा ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव (Sensory Experience) से स्वयं ही विद्या प्राप्त कर सकता है। "बच्चा अधिकतर ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विद्या ग्रहण करता है।" पढ़ाने और भाषण देने में बहुत अन्तर है। बच्चे को भाषण नहीं चाहिये– वह अपने आप को व्यक्त करके कुछ सीखता है। प्रसिद्ध विद्यविद् फ्रॉइबल (Froeble) का विचार है "पढ़ाने का मन्तव्य बच्चे में ज्ञान भरने के स्थान को और उसके अंतस को विकासशील बनाना है।

पढ़ाने का अर्थ केवल बतलाना ही नहीं, बल्कि सिखाना भी है। नये अध्यापक के सामने तो यह उद्देश्य रहता ही है। कोशिश यही होनी चाहिये कि बच्चे को कम से कम बताया जाये और जितना अधिक हो सके, उसे अपने आप भाँपने और समझने की ही प्रेरणा दी जाये। अब यह विचार बल पकड़ता जा रहा है कि सर्वोतम विद्या (Self–education) स्व्–विद्या है। प्रयोग–विधि (Proiect Method) डालटन–योजना, (Dolton Plan) मांटीसरी विधि (Montessori Method) आदि बच्चे को स्व–विद्या के लिये प्रेरित करती हैं।

आधुनिक विद्याविदों का यह भी विचार है कि सब से अच्छा अध्यापक सबसे छोटी श्रेणी के लिये नियुक्त करना चाहिये। फ्रॉइबल (Froebel) का विचार है कि बच्चे पर प्रारम्भित शिक्षा का बहुत प्रभाक होता है। इसलिये इस शिक्षा का बहुत महत्व है।

३. विद्या का केन्द्र-खेलें

(Activity–Centred Education)

आधुनिक शिक्षा का केन्द्र काम और खेलें हैं, क्योंकि काम

और खेलें बच्चों के लिये बहुत लाभदायक हैं। इंगलैंड का शिक्षा-मन्त्री मण्डल (Ministry of Education, London) अपनी एक रिपोट में लिखता है "हमारी राय है कि एक प्राईमरी स्कूल का काम खेलों और अनुभवों में होना चाहिये। केवल ज्ञान प्राप्ति और उसका संग्रह करना ही नहीं। पढ़ाई की अपेक्षा अनुभव अधिक विशेषता रखता है।" बच्चा तब ही उचित शिक्षा प्राप्त कर सकता है यदि वह चुस्त हो। स्कूल अब ऐसा स्थान नहीं जहां पर ज्ञान बेचा जाता हो और बच्चे ज्ञान के टुकड़े चुनते हों, बल्कि स्कूल एक ऐसा स्थान है जहां बच्चे कई प्रकार के काम सीख सकते हैं और उनसे प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। बच्चों की शिक्षा अधिकतर, जो कुछ वे अपने लिये स्वयं करते हैं, उस पर निर्भर करती है।

४. नये स्कूल का क्रम

(Descriptive in New School)

क्रम (तरतीब) के विषय में आधुनिक शिक्षा और पुराना शिक्षा में बहुत भिन्नता है। वह स्कूल जिसमें मौन बच्चे कतारों में बैठे, मुंह खोले अध्धापक की ओर देखते हों और केवल उस समय बोलते हो जब उन से कुछ पूछा जाता हो, अब बिलकुल अच्छे नही समझे जाते। मनोविज्ञान की खोजों ने यह हमेशा के लिये प्रमाणित कर दिया है कि बच्चे को पढ़ाने का सर्वोत्तम ढङ्ग यह है कि उसे स्वय पढ़ने की खुली छुट्टी दी जाये। आजके विद्वानों का विचार है कि आप बच्चे को तब तक ठीक काम करना नहीं सिखा सकते जब तक आप बच्चे को ग़लत काम करने की पूरी स्वतन्त्रता नहीं देते। जे. जे. फिन्डले (J. J. Findly) लिखता है "जब सब कुछ कहा जा चुका है. चरित्र और स्वभाव केवल मेरा अपना ही हो सकता है। यदि मैंने इसका निर्माण ही नहीं किया, यदि मुझे कुछ

चुनने की आज्ञा नहीं और मैं हाँ या ना नहीं कर सकता तो मेरे सारे गुण उधार लिये हुये हैं। इस लिए इसका फल चरित्र या स्वभाव नहीं बल्कि मांगा हुआ व्यक्तित्व है।" कैहलल गिबरन एक स्थान पर लिखता है

"आप अपना प्यार चाहे उसे दें,
किन्तु उसे अपने विचार न दें।
क्योंकि उसके अपने विचार हैं।
आप उस जैसा बननेका प्रयत्न करें।
न कि उसे अपने जैसा बनायें।"

"डण्डा पीर है बिगड़ों तिगड़ों का" यह नियम अब माना नहीं जा सकता। बायह्य-अनुशासन (External Discipline) के स्थान पर अब स्व-अनुशासन (Self Discipline) पर ज़ोर दिया जा रहा है। आज का विद्वान हर प्रकार के हस्ताक्षेपों और टोकने की वृति के सख्त विरुद्ध है। मैडम माँटीसरी लिखती है—"स्वतन्त्रता ही तो काम की खेल है। एक विद्वान का विचार है—"स्वतन्त्रता में रह कर काम करना ही उचित क्रम हैं, रुकावटों में झुकना क्रम नहीं।" क्रम का अपने आप में गंतव्य होना चाहिये। इसलिये हर जगह अध्यापक के कन्धों से भार हलका करके, बच्चों पर डाला जा रहा है।

नये स्कूल का प्रबन्ध
(Organization in New School)

नये स्कूल में श्रेणियों को पढ़ाने के स्थान पर हर बच्चे को अकेला पढ़ाने पर ज़ोर दिया जाता है। पहले हर बच्चे की ओर इतना ध्यान दिया जाता था जितना कि औसत के हिसाब से श्रेणी की संख्या के अनुसार एक बच्चे की ओर दिया जा सकता

था। बच्चे के व्यक्तित्व और अन्य विशेष बातों की ओर कोई ध्यान न दिया जाता था, किन्तु अब जबकि बच्चे में सामाजिक गुण भी प्रफुल्लित किये जाते हैं, उसे उसके व्यक्तित्व के अनुसार आवश्यक सहायता भी दी जाती है। पहले की तरह गोल सूराखों में चपटी कीलें नहीं ठोकी जातीं।

संक्षेप में नया स्कूल पुराने स्कूल के विरुद्ध एक महान क्रान्ति है। केवल नई बोतलों में पुरानी शराब भरने वाली बात नहीं। आज कल यह मांग की जा रही है कि नये प्रकार के स्कूलों की देश में वृद्धि हो। अन्य उन्नत देशों में पुराने स्कूल बहुत पहले ही बन्द हो गये थे। शायद कोई एकाध पुराने ढंग का स्कूल मिल जाता हो, परन्तु हमारे देश में अभी नये प्रकार के स्कूलों की मांग बहुत कम है। क्योंकि नये स्कूल को चलाने के लिये नये प्रकार के अध्यापकों की आवश्यकता है जिनका हमारे देश में अभी अभाव है।

हमारे देश में वह स्कूल अच्छा गिना जाता है जिसके नतीजे (Results) शत-प्रतिशत या उसके निकटतम हों, और वह अध्यापक योग्य और विद्वान समझा जाता है जिसका विद्यार्थी प्रथम रहे। ये दो बातें हमारे स्कूलों की सफलता की कसौटियां हैं। इन बातों पर हमारे स्कूल प्रसिद्ध होते हैं और इन्ही बातों के आधार पर विद्यार्थियों की संख्या घटती बढ़ती है। वार्षिक रिपोर्टों और पारितोषिक-वितरण उत्सवों में इन्ही बातों का ढंडोरा पीटा जाता है।

एक साधारण स्कूल के जीवन की ओर देखें तो बड़ी निराशा होती है। परीक्षाओं की ख़बत, इन्सपैंकशन का डर, हैडमास्टर का अकुंश, अध्यापकों के आगमन पर चाय-पार्टियां। विद्यार्थियों के साथ निर्दयतापूर्ण वर्ताव—प्रत्येक स्कूल के आवश्यक भाग हैं। अध्यापक बेचारा पेट के लिये परिश्रम करके अच्छे परिणाम

दिखाता है, विद्यार्थी [illegible] और अध्यापकों के भय वश परिश्रम करके नम्बर लेते हैं। कोरस चुनने या बनाने में अध्यापकों का कोई हाथ नहीं। अच्छी या बुरी, उन्हें वही पुस्तकें पढ़ानी हैं जो नियत हों। विद्यार्थियों को इन्हीं पुस्तकों को 'घोटा लगाना' (रटना) पड़ता है जो नियत होती हैं।

परन्तु याद रखना चाहिये, जिस देश की ९० प्रतिशत जन-संख्या जीवन के इतने नीचे धरातल पर रहती है कि चोरियां, डाके, लड़ाईयाँ मारकुटाई, गाली-गलोच; गन्दे गाने, गन्दे इशारे उसके दैनिक जीवन का भाग हों, उस देश की कोई संस्था यदि सुधार कर सकती हैं तो वह इस देश के स्कूल हैं जो एक सुन्दर वातावरण पैदा कर के नई पौद को कुपथ पर जाने से रोकें। वृक्षों को छीलने से कुछ नहीं हो सकता जब कि बीज और जड़ में ही कोई त्रुटि हो, सो बच्चे के विकास और हित के लिये आवश्यक है कि स्कूल ऐसा स्थान हो जिसका केन्द्र बच्चा हो, जहाँ पर टाईम-टेबल की प्रबल ज़ंजीरों में बच्चे को क़ैद न किया जाये।

चाहिए यह कि बच्चे अपना टाइम-टेबल स्वयं बनायें। वे क्लास की कोठरियों में बन्द न रहें, अध्यापक अपने विद्यार्थियों के हाक़िम न बनें, बल्कि उनके मित्र, सलाहकार और परामर्शदाता हों।

एक सुन्दर प्रबन्द के नीचे चलता हुआ स्कूल एक अच्छी और वैभवशाली ज़मीन के समान है।

द्वितीय परिच्छेद

घर स्कूल और समाज

भारतवासियों ने अपने देश के राज-प्रबन्ध के लिये सर्वोतम प्रणाली लोक-राज्य को चुना है। किन्तु लोक-राज्य में रहने का एक विशेष तरीक़ा है जिसमें मनुष्य के राजनीतिक और सामाजिक काम आते हैं। इसलिये एक विशेष प्रकार के विचारों और अनुभवों का होना आवश्यक है। एक विशेष दिशा में काम करने की आदतें डालती पड़ती हैं। ये आदतें सहज में ही नहीं आ जातीं। यह तो एक विशेष प्रकार की शिक्षा का फल होती हैं। यह शिक्षा अधिकतर घर और स्कूल में ही दी जा सकती है। पर घरों और स्कूलों की शक्ति का मापदण्ड समाज और देश पर निर्भर है। इसलिये घर और स्कूल केवल उसी समय लोक-राज्य के नियमों की शिक्षा दे सकते हैं जब कि देश और समाज में भी लोक-राज्य हो। वास्तविक बात तो यह है कि घर, स्कूल और समाज का परस्पर सम्बन्ध होना आवश्यक है—यदि हम एक सुन्दर और सजग व्यक्तित्व को जन्म देना चाहते हैं। स्कूल ज़रूर एक हारने वाली लड़ाई लड़ रहें होंगे, यदि वे उस समाज का जिसमें वे हैं और उन घरों का जहां से उनमें पढ़ने वाले बच्चे आवे हैं, ध्यान नहीं रक्खेंगे।

घर और स्कूल

घर एक ऐसा स्थान है जहाँ लोक–राज्य का पालन-–पोषण होता है। हम उतनी देर तक एक सुन्दर और शान्तिपूर्ण समाज की आशा नहीं कर सकते जब तक कि हमारे घर बच्चों के सुन्दर व्यक्तित्व का आदर नहीं करते। जिस बच्चे को चिन्ता, भय, पराधीनता, द्वेष और विक्षिप्तता भरे वातावरण में रहना पड़ता हैं, वह कभी भी एक शानदार व्यक्तित्व नहीं बन सकता और इस तरह लोक-राज्य के पहियों को ऐसे ही व्यक्तित्वों के हाथ में प्रत्येक समय झींकू झीकू करते रहना पड़ेगा। इसलिये आज की शिक्षा का आग्रह है कि घर और स्कूल, मां बाप और अध्यापक के परस्पर सम्बन्ध हों।

प्राय: घरों में देखा जाता है कि हम बच्चे की प्रतीक्षा बड़ी रुचि और अधीरता से करते हैं। यदि उसी रुचि से उसके जीवन को सीधे रास्ते पर चलाने की कोशिश करें तो बच्चे कभी भी उलझे हुए और रहस्मय न बनें। परन्तु दु:ख तो इस बात का है कि हमारे बच्चे स्वयं ही बड़े होते हैं और स्वयं ही आगे बढ़ते हैं। उन्हें जीवन-पथ पर कोई पथ-प्रदर्शक नहीं मिलता।

परिवार में माता की अपेक्षा पिता का अधिक भय होता है—परन्तु जब तक हमारा परिवारिक-सिस्टम एक पुरुष–प्रधान ढाँचा रहेगा, जहां मां स्वयं बच्चे का सुधार नहीं कर सकती और सारी शिकायतें बाप के पास लेकर जाती है, तब तक बच्चे के जीवन का निर्देशन ठीक प्रकार से नहीं हो सकेगा।

हमें रहस्मय, असाधारण और उलझे हुए बच्चे देखकर हैरान नहीं होना चाहिये, क्योंकि माता-पिता स्वयं बहुत बड़ी उलझनें हैं। बच्चे को एक सजग व्यक्तित्व बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समाज नारी और पुरुष का एक सामान्य रूप हो।

हमारा परिवारिक सिस्टम कुछ इस प्रकार का हो गया है कि बच्चे का सम्बन्ध अधिकतर माता से ही रहता है। पिता उसके पास बहुत कम रहता है। और माँ का अपना जीवन इतना व्यस्त रहता है कि वह बच्चें का ध्यान रख ही नहीं सकती, उसका अपना ज्ञान, विवेक और अनुभव बहुत कम होता है, जिसके कारण वह बच्चे से विद्वता पूर्ण ढंग से वर्ताव नहीं कर सकती। वह बच्चे को सम्भालना घर के अन्य झँझटों की भाँति एक झंझट ही समझती है। इससे बच्चे के मन पर एक प्रहार सा होता है। कभी कभी का लाड़ और प्यार बिल्कुल व्यर्थ है–बल्कि यह तो बच्चे के साथ एक और अन्याय है। क्योंकि बच्चे के मन में उसके प्रति किया गया अन्याय, निर्दयता और अन्य कठोरताएं इस प्रकार रड़कती रहती हैं कि वह उस सामयिक लाड़-प्यार को भूल जाता है। माता कभी मार पीट कर, कभी कोई लालच देकर, कभी कोई प्रण करके, कभी भूत-प्रेतों का डर पाकर 'समय टालने' की कोशिश करती हैं–न कि बच्चे के मन को समझने की। बच्चे को सम्भालने का काम केवल मां का ही सपझा जाता है। कभी कभी जब पिता हस्ताक्षेप करने की कोशिश करता है तो दोनों में मत-भेद हो जाता है जिसके कारण बच्चे पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वे भूल जाते हैं कि यदि पिता किसी बात पर बच्चे से क्रुध हो और उसे झिड़के, और माता उसे शरण दे और पिता से उसके व्यवहार के कारण लड़े तो यह पिता और बच्चे दोनों के लिए अशुभ और अकल्याणकारी होगा। इसी प्रकार यदि माता बच्चे को मारे, पिता उसका पक्ष ले, तो भी यही हालत होती है। बच्चे के साथ माता और पिता दोनों का एक सा बर्ताव होना चाहिए। उन्हें एक समझोता कर लेना चाहिये कि वे बच्चे के सामने एक जैसा बर्ताव करेंगे। बच्चे की बेहतरी के लिए यह बहुत जरूरी है। मत-भेद तो किसी और समय भी हल हो सकते हैं।

हम हैं और उसका दमन करते हैं। हम उसे खिलौने लेकर देते हैं, किन्तु सम्भाल सम्भाल कर रखते हैं कि कहीं तोड़-फाड़ कर खराब न कर दें। उसे कई प्रकार के डर दिये जाते हैं—अंधेरे में गिराना, कुत्ते बिल्ली का भय देना आदि बड़ों के लिए मन-बहलाव और मज़ाक ही है, किन्तु ये सब बच्चे के मन में अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं। हमें यह समझना चाहिये कि जिस बच्चे के मन से भय दूर हो जाता है, उसका जीवन एक सरल, गतिहीन वेग बन जाता है—शर्त केवल इतनी है कि बच्चे के जीवन की चलती हुई 'मशीनरी' में कोई अड़चन न पैदा की जाय और न ही उसके चालक को सदा झिड़का और टोका जाए। घर में एक ऐसा वातावरण पैदा किया जाए जिस में प्रत्येक बच्चा अपने अन्तर के व्यक्तित्व का दर्शन कर सके और अपने प्रतिबिम्ब को भली प्रकार देख सके, न कि वह अपने भावों का दमन करके उन्हें अपने मन में ही रखने पर विवश हो जाए। इस प्रकार समाज अनेक रूप, सजग व्यक्तित्वों का एक थियेटर बन जाएगा।

कई बार बच्चे की किसी शारीरिक कमज़ोरी या अभाव के कारण उसे कई प्रकार के विशेषणों से सम्बोधित किया जाता है—जैसे-काला, 'बुद्धू' 'रोनी शकल' 'घुग्गू' दाग़ी आदि। रंग और शकल तो जन्मजात हैं ही, किसी हद तक बुद्धि भी जन्मजात है—परन्तु जिनके पास इन बातों का अभाव है, उन्हें इन बातों का अभाव करा के उनके अभावों का मज़ाक बना कर हम उन्हें सदा के लिए अपने स्थान से गिरा देते हैं, बुद्धू को हमेशा के लिए बुद्धू बना देते हैं, और खैर बेचारा घुग्गू वह तो हमेशा के लिए घुग्गू रह जाता है। काला, कलोटा दाग़ी अपनी और ही दुनिया बना लेता है। इन नीच भावों से जीवन-ज्योति का प्रकाश कम हो जाता है—कई कोमल कलिकायें मुरझा

जाती हैं। मसली जाती हैं। कई आकांक्षाएं दम घुट कर प्राण-विहीन हो जाती हैं और अन्तस से कई अरमान अन्तस में ही रह जाते हैं। जीवन का विकास रुक जाता है, उसके पावों को गतिरोध की काली और मनहूस ज़ंजीरों से बांध दिया जाता है—केवल माता–पिता की मूर्खता के कारण-भाई बहनों के अन्वेपन के परिणाम-स्वरूप। प्रतिक्रिया यह होती है कि बच्चा आत्म हीनता (Inferiority complex) का शिकार हो जाता और उसे कई भयानक मानसिक रोग लग जाते हैं। दमन के कारण उसकी कई अपूर्ण इच्छाएं प्रकट होने के लिए और भी प्रबल हो जाती हैं। परिणाम स्वरूप दमन और प्रतिक्रिया के संघर्ष में फंसा हुआ बच्चा अपने अवचेतन मन के हाथों विवश होकर कई काम सामाजिक नियमों के विरुद्ध कर बैठता है। यहां पर एक समझदार माता पिता को यह समझने की ज़रूरत है कि वे सहानुभूति पूर्ण और मधुर वर्ताव करें, क्योंकि ऐसे बच्चे को उनकी सहायता की अधिक आवश्यकता है और उसे अधिक कठिनायों का सामना करना पड़ता है।

माँ–बाप बच्चे की शरारतों से तंग आकर बड़े बुरे ढंग से उसे स्कूल के लिए तय्यार करते हैं—"तुम ने बहुत तंग कर रखा है। तुम्हें हम स्कूल में डाल देंगे। सारा दिन वहां मास्टर तुम्हें बांध रखेगा और साथ ही तुम्हारी खूब मुरम्मत भी करेगा"। ऐसी बातें सुन कर बच्चा स्कूल को जेल समझने लगता है। वह स्कूल में जा बड़ी उलझन में पड़ जाता है। घर में तो उसे प्यार भी किया जाता है (पर उसका कोई नियम नहीं।) उधर स्कूल में उस पर कुछ प्रतिबंध लगा दिये जाते हैं जिन्हें बच्चा सहज में अपना ही नहीं सकता। यदि बच्चे को घर में पहले ही समय पर खाने, पीने सोने आदि की आदतें डाल दी गई होती तो बच्चा इतनी कठिनाई का अनुभव न करता। यदि

हो सके तो स्कूल और घर को मिल कर बच्चों के व्यक्तित्व को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिये। घर ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहां माता के प्यार के साथ २ बालकों को अध्यापक का विचारशील प्यार भी मिले और स्कूल ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहां अध्यापक के प्यार के साथ २ मातृ स्नेह की सरसधारा भी मिल सके। ऐसा वातावरण जिस में बच्चे को सामूहिक जीवन का पूरा २ अवसर मिलता है, जिसमें बच्चा अपनी पूरी स्वतन्त्रता के साथ हंस खेल और शिक्षा ग्रहण कर सकता है, वही बच्चे का वास्तविक स्कूल है।

बच्चे के घर और स्कूल का जीवन, नदी के दो किनारों के समान होना चाहिये। घर और स्कूल की शिक्षा एक ही हो। बच्चे के जीवन में घर और स्कूल दोनों का एक जैसा मतलब हो। दोनों को बच्चे की शख़सीयत बनाने में पूरा पूरा सहयोग देना चाहिये—अर्थाथ स्कूल और पाठशाला का योग एक जैसा होना चाहिये। ब्रे (Bray) का विचार है कि घर और स्कूल के आपसी संबन्ध का बड़ा महत्व है। स्कूल और घर दोनों के सामने एक ही आदमी होना चाहिये। सैडलर (Sedler) के मतानुसार बच्चों की शिक्षा के लिये मां-बाप के उत्तरदायित्व को नहीं भूलना चाहिये। यह शिक्षा देने के लिए एक बहुत बड़ी शक्ति है। जहां भी माता पिता और अध्यापक के सहयोग की परीक्षा की गई है वहीं एक नया जीवन और एक नया प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ है। इस लिये स्कूल एक प्रकार से परिवार का ही प्रसार होना चाहिये। इसी लिये तो कहा गया है कि अध्यापक ही बच्चों के वास्तविक मां बाप होते हैं और मां बाप ही बच्चों के सच्चे अध्यापक।

२. सहयोग किस प्रकार प्राप्त किया जाए ?

एक कहावत है कि अध्यापक जो स्कूल पैदल चल के आता है, उस अध्यापक से अच्छा पढ़ाता है जो घोड़े पर सवार हो कर आता है।

इस का भावार्थ यह है कि अध्यापक केवल बच्चे को श्रेणी के कमरे में

ही बैठ कर समझने का प्रयत्न न करे। विषयों को जानने और समझने से पहले बच्चों का जानना और समझना ज़रूरी है। नीचे लिखी बातें ध्यान से प्रयोग में लाई जाएँ तो घर और स्कूल में बड़ा अच्छा सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

(१) माँ बाप पर जोर डालना चाहिये कि वह स्कूल कई बार आया करें ताकि इस तरह मां बाप अध्यापक के विचारों को जान सकें और आवश्यक सहयोग भी दे सकें। कई बार देखा जाता है कि जो आदतें (Habits) अध्यापक स्कूल के थोड़े से समय ($5\frac{1}{2}$ घंटे) में बच्चों में डालने का प्रयत्न करता है, वह स्कूल से बाहर के समय में माँ बाप और घर का वातावरण तोड़ने में लगा देता है। इसका परिणाम यह होता है कि स्कूल के सारे यत्न निष्फल हो जाते हैं। इस लिए यह बहुत ही अच्छा हो यदि मां बाप और अध्यापक मिल कर बच्चे के सम्बन्ध में बातें करें।

(२) स्कूल में भी इस प्रकार के उत्सव होने चाहियें, जिन में सब बच्चों के मां बाप को भी निमन्त्रण दिया जाये। इस प्रकार उन से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।

(४) कभी कभी अध्यापक स्वयं बच्चों के घरों में जा कर उन के मां बाप से मिलें। इस प्रकार की बातों से बच्चों के उन्नत होने में जो चीज़ें रोड़ा अटका रही हों उन का पता बड़ी आसानी से लग जाता है।

(५) हर तीसरे—छटे—नयमें महीने और साल के बाद रिपोर्ट आदि भेजना भी सुन्दर ढंग है। यह रिपोर्ट बड़ी बुद्धिमता से अध्यापक को भरनी चाहिये और इस पर सदैव बच्चों

के हस्ताक्षर होने चाहियें। इस रिपोर्ट से मां बाप को हर प्रकार की सूचना मिल सकती है और वह बच्चे की सहायता करने के लिये हर प्रकार की विधि से बच्चे को ठीक करने की कोशिश करेंगे। इस प्रकार अध्यापक और मां के सम्बन्ध अच्छे हो जायेंगे।

(6) मां बाप और अध्यापकों की एक संस्था (Teacher–Parent Association) बनाई जा सकती है। यदि इस संस्था के कुछ सदस्य स्कूल की समित (Board of management) में हो जाएं तो बड़ी ही लाभप्रद रहेगी। इस ऐसोसीएशन में कभी शिक्षा की विधि पर विचार हो और कभी बच्चों की समस्याओं पर विचार हो। और यह सभायें केवल शुष्क भाषणों पर ही समाप्त नहीं हो जानी चाहिये अपित इनमें थोड़ा बहुत चाय पानी भी हो जाए तो और भी अच्छा रहेगा। ऐसी संस्थाओं का लाभ केवल अध्यापकों को ही नहीं अपितु माता पिता को भी बराबर होगा। बच्चों के ठीक प्रकार से लालन पालन का ढंग उनको आ जाएगा। ये संस्थाएं एक प्रकार से बालग़–शिक्षा के केन्द्र बन जाएंगी। बच्चों का इन से कई लाभ हो जाएंगे। स्कूल में उनको यह लाभ होगा कि अध्यापक उनको समीप से जानने लगेगा और घर में उनको यह लाभ होगा कि अध्यापकों और उनके माता पिता का उनके ही कारण घनिष्ट सम्बन्ध हो जाएगा। सब से अधिक उन्हें यह लाभ होगा कि माता-पिता और अध्यापक शिक्षा के काम में दो हिस्सेदार बन के काम कर रहे होंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि माँ बाप को बहुत ही काम करना पड़ेगा, पर बिना इसके अध्यापक, विद्यार्थी और उसके मां बाप सब अंधेरे में ठोकरें खाते रहेंगे। इस लिये परिश्रम, समय और शक्ति का व्यय काफ़ी लाभदायक हो सकता है।

स्कूल और समाज

यह पहले भी बताया जा चुका है कि यदि स्कूल अपने उद्देश्व में सफल होना चाहता है तो समाज और जाति जिसमें वह हो उसकी सेवा करे। वे दिन अब बीत चुके हैं जब केवल ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य समझा जाता था। वे दिन भी अब स्वप्न ही हो गये हैं जब स्कूल ज्ञान देने वाली दुकानें और अध्यापक ज्ञान उगलने वाली मशीनें समझे जाते थे। आज तो स्कूल समाज और जाति का केन्द्र है और घर एक ऐसी संस्था है जो जाति की सारी अवश्यकताएं पूरी करती हैं। विद्या आज जीवन से भिन्न वस्तु नहीं अपितु हमारे सम्पूर्ण जीवन का एक अभिन्न अंग है।

के० जी. सैयदान (K. G. Saiyidain) लिखते हैं—"स्कूल सारे राष्ट्र के जीवन का एक सुन्दर खुलासा है। इसमें हर प्रकार के वे काम होते हैं जो समाज का निर्माण करते हैं।" अब केवल मनुष्य की योग्यता पढ़ाने तक ही बस कर देना स्कूलों का काम नहीं समझा जाता अपितु मनुष्य को समाज, देश और जाति के लिये तय्यार करना भी स्कूल का ही धर्म समझा जाता है। क्योंकि समाज और देश की मागों में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है, इस लिये यह अति आवश्यक है कि स्कूल जाति और समाज के साथ साथ चलें। जॉन डैवी (John Dewey) लिखते हैं—जो कुछ अच्छे और योग्य मां बाप अपने बच्चों के लिये चाहते हैं वही कुछ जाति और समाज अपने बच्चों के लिए चाहे। हमारे स्कूलों के लिए और कोई आदर्श अच्छा नहीं है, और यदि इस आदर्श को समाने न रखा गया तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे लोक-राज्य का सर्वनाश हो जाएगा।"

परन्तु हमारी शिक्षा-प्रणाली में सब से बड़ा दोष यह कि यह आज जीवन से दूर की वस्तु हो कर रह गई है। इस का फल यह हुआ है कि आज यह केवल कृत्रिम सी ही नहीं दीख पड़ती है बल्कि हमारे समाज की उन्नति के लिये भी कोई सहायक सिद्ध नहीं हो रही। स्कूलों में से पढ़े लड़के लड़कियां वहां से छुटकारा पा बड़े प्रसन्न होते हैं। पर उनकी दशा 'भई गति सांप छछूँदर केरि' की सी होती है। न तो वे फिर से स्कूल को लौट सकते हैं और न ही कुछ और कर सकते हैं। हाथ पांव से काम लेना तो उन्होंने स्कूल में सीखा नहीं होता। जीवन की सच्ची शिक्षा तो उन्होंने कभी ग्रहण नहीं की होती। मिल बैठना उनको पता नहीं क्या होता है। अपने पांव पर खड़े होना वे नहीं जानते होते। फलस्वरुप वह एकदम घबरा जाते हैं। स्कूलों के मुकाबले कुछ और ही होते हैं, पर इस जीवन क्षेत्र में तो और ही ढंग के मुक़ाबले होते हैं। इस संसार रूपी स्कूल की परीक्षा में तो कोई ही सफल हो कर निकलता है। स्कूल की दुनिया इस बाहरी जगत से एकदम निराली होती है। स्कूलों में दी गई शिक्षा वास्तव में मनुष्य बनाने का यत्न नहीं करती। स्कूल में से किस तरह के मनुष्य बन कर निकलते हैं? पीला रंग, गालें अन्दर धंसी हुई, पुस्तकों के कीड़े जिनको संसार का कुछ पता नहीं होता। पुस्तकों के ज्ञान का दैनिक जीवन में प्रयोग नहीं कर सकते। कुछ भी बनने का उन में उत्साह नहीं होता। उनके व्यक्तित्व को पूरी तरह विकसित नहीं होने दिया जाता। उनको अच्छे नागरिक बनने की, अच्छे पुत्र पुत्री बनने की, अच्छे पति–पत्नी बनने की या अच्छे माता पिता बनने की कोई शिक्षा नहीं दी जाती।

अपने हाथ से परिश्रम करके अपनी आजीविका कमाने का कोई ढंग उन्होंने नहीं सीखा होता। स्कूल से वह एक मात्र नौकरी

की साध ले कर निकल पड़ते हैं।

इस लिये इस बात की आवश्यकता है कि स्कूलों का पूरा पूरा प्रयोग किया जाए—इनसे जितना लाभ उठाया जा सकता है, उठाया जाए। लाखों नहीं करोड़ों रुपये स्कूलों के बड़े बड़े भवनों पर व्यय किये जाते हैं। जब हम इन पर इतना व्यय करते हैं तो यह बड़ी मूर्खता होगी यदि हम सप्ताह में कुछ दिनों के लिये या वर्ष भर में कुछ महीनों के लिये ही स्कूलों का प्रयोग करें। स्कूल क्योंकि जन्ता के पैसे से ही बनाए जाते हैं, इस लिये स्कूलों को जन्ता की भलाई के लिये जितना अधिक से अधिक प्रयोग में लाया जा सके लाना चाहिये।

स्कूल ही एक ऐसी जगह है जहां सब लोग बिना किसी भेद-भाव के मिल के बैठ सकते हैं। ये भी जाति की राजधानी (Capital) बन सकते हैं। स्कूल को सामाजिक केन्द्र न गिनना बड़ी ग़लत सम्मति और दूषित फ़िलासफी है, सो जहाँ तक हो सके स्कूल ही से हमें समाज और जाति की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिये ! खेती-बाड़ी, घरेलू-विज्ञान, संगीत, साहित्य, आदि सलेबस (Syllabus) के आवश्यक ढंग होने चाहियें। स्थानीय हालतों को ध्यान में रखते हुए कई प्रकार के काम आरम्भ किये जा सकते हैं, जिस तरह कि कोप्रेटिव क्रैनडिट (Cooperative credit) और सांझा क्रिय-विक्रय (Cooperative buying and selling) आदि !

ग्रामीण स्कूल और उनके कर्तव्य

भारत एक ग्रामीण देश है। इसलिये ग्रामीण स्कूलों का कर्तव्य है कि वे ग्रामीणों को उनकी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा दें।

यहां यह बात याद रखने योग्य है कि ग्रामीण बच्चों की आवश्यकताएं शहरी बच्चों की आवश्यकताओं से एकदम भिन्न होती हैं। पर साधारणतः देखा जाता है कि देहाती और शहरी शिक्षा में कोई अंतर नहीं रखा जाता। अमरीका में ग्रामों के लिये बालोपदेश भिन्न हैं—पुस्तकें भिन्न हैं और पाठ भिन्न हैं।

उनकी गणित की पुस्तक भी कृषिक-जीवन में काम आने वाली बातों के आधार पर बनाई जाती हैं। देहाती-रीडरों में चित्र भी देहाती जीवन के ही होते हैं। प्रथम श्रेणी से लेकर बड़ी से बड़ी श्रेणी तक की पुस्तकें उनके दैनिक जीवन से संबन्ध रखने वाली होती हैं, पर इधर हमारे हां इस बात का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। क्या लाभ है ऐसे इतिहास भूगोल का जबकि हाईजीयन (Hygiene) के थोड़े से ज्ञान बिना एक देहाती अपना जीवन गंवा बैठता है? क्या लाभ है ऐसे हिसाब का जब कि वे भूमि को ठीक प्रकार से नहीं संभाल सकता और न ही अपने गांव को खुशहाल बना सकता है? क्या लाभ है लड़के को सुन्दर २ चीज़ों के दिखाने का जबकि उसकी जीवन-संगिनी को घर सुन्दर और आनन्दप्रद बनाना नहीं सिखाया जाता?

देहातियों का जीवन ही ऐसा होता है कि उनके घर का प्रत्येक सदस्य यदि काम न करे तो निर्वाह नहीं हो सकता, और इस प्रकार की शिक्षा जो बालकों को ग्रामीण-जीवन से अलग कर देती है, ग्रामीणों के साथ इन्साफ नहीं करती। देहाती-जीवन का भी कोई आदर्श होना चाहिये। वह आदर्श है शिल्प-कला और खेती बाड़ी द्वारा शिक्षा। ऐसी शिक्षा से ही हम देहात के जीवन को ऊंचा उठा सकते हैं। इस प्रकार का स्कूल ही शिक्षा-चिकित्सालय (educational dispensary) बन सकता है और देहातियों का हर पहलू में सुधार कर सकता है। डा० कथिशनीया लिखते हैं—"कुछ भी असंभव नहीं। आशा और

विश्वास से अधिक आवश्यकता है प्यार की। हमारे भारत में स्वागक अभियान का उदय तभी होगा, यदि झौंपड़ियों में रहने वाले ग्रामीणों को संकट और भ्रम के अंधकार में से निकाल कर वहां प्रकाश पहुंचाया जाए। हमारा उत्थान और पतन वास्तव में ग्रामीणों जन-संख्या पर ही निर्भर है।"

—:o-—

तृतीय परिच्छेद

हैडमास्टर और उसका स्टाफ़

१. हैड मास्टर की आवश्यकता

(Need of the Headmaster)

कोई भी संस्था किसी नियम में बंधी नहीं रह सकती जब तक उसका कोई मुखिया न हो । इसलिये यदि हम चाहते हैं कि स्कूल ठीक प्रकार से, अच्छे प्रबंध और ढँग से चल सकें तो मुखिया के रूप में मुख्याध्यापक का होना अति आवश्यक है । सो स्कूलों में हैडमास्टर का विशेष महत्व है । सर परसीवल रैन (Sir Percival Wren) के कथनानुसार जिस प्रकार घड़ी के लिए कमानी, मशीन के लिये पहियों और भाप के जहाजों के लिये इंजन की आवश्यकता है, उसी प्रकार स्कूल के लिये हैडमास्टर की ज़रूरत है ।" स्कूल का बुरा या भला होने का उत्तरदायित्व बहुत हद तक हैडमास्टर पर ही होता है । इसलिये हैडमास्टर बड़ा ज़िम्मेदार व्यक्ति होना चाहिये ।

हैडमास्टर के गुण

(Qualities Of Headmaster)

जो हैडमास्टर अपना अच्छा प्रभाव रखना चाहता है और एक योग्य आदमी बनने की इच्छा रखता है, उसके लिये यह आवश्यक

है कि उसका स्टाफ़ और विद्यार्थी यह न अनुभव करें कि वह उनके लिये हैडमास्टर के रूप में ही लाया गया है, बल्कि वे यह समझें कि वह अपनी योग्यता और विद्वता के कारण ही हैडमास्टर है। उसने न केवल पढ़ाने की ट्रेनिंग प्राप्त की हो बल्कि उसके अन्दर कुछ ऐसे जन्मजात गुण भी होने चाहियें जो अन्य अध्यापकों से श्रेष्ठ और भिन्न प्रमाणित करें।

उसके अन्दर एक नेता के गुण होने चाहियें। वह एक प्रतिभा शाली व्यक्ति होना चाहिये जो विद्वान अध्ययापकों का नेतृत्व बड़े सरुचिपूर्ण ढङ्ग से कर सके। उसे यह कभी भी सोचना नहीं चाहिये कि हैडमास्टरी प्राप्त कर लेने के बाद वह बड़ा आदमी बन गया और उसके उत्तरदायित्वों का अन्त हो गया है, बल्कि उसे इस बात का आभास होना चाहिये कि हैडमास्टर का पद प्राप्त करने के बाद उसके सिर पर और उत्तरदायित्व भी आ पड़े हैं। वह अपने आप को एक स्वतन्त्र अध्यापक न समझे, क्योंकि पग पग पर उसे अपने स्टाफ के अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। उसके नीचे काम करने वाले अध्यापक यह अनुभव करें कि सारा स्कूल उनके सुप्रबन्ध के कारण ही चल रहा है! यदि वह अपने स्टाफ के अध्यापकों में यह भाव पैदा करने में सफल हो जाता है, तभी वह एक अच्छा लीडर बन सकता है।

हैडमास्टर के मन में कभी यह ख्याल नहीं आना चाहिये कि वह कोई ग़लती नहीं कर सकता, बल्कि उसे अपने विचारों का आलोचनात्मक विवेचन करना चाहिये। यदि वह अपने स्टाफ के अध्यापकों से अच्छे सम्बन्ध रखना चाहता है तो वह उन्हें अपने विचारों पर आलोचना और वाद-विवाद करने की पूरी स्वतन्त्रता दे, और अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे बिना किसी द्वेष अथवा पक्ष

भावना से उसके विचारों की भरी पूरी आलोचना करें और उसे अपने वाद–विवाद का विषय बनायें। एक अच्छे हैडमास्टर का कर्तव्य है कि वह अपने स्टाफ के अध्यापकों के मनोभावों को पढ़े। उन्हें इस बात का आभास तक न होने दे कि वह एक जासूस या छिद्रान्वेषी आलोचक है। जहां तक हो सके वह रचनात्मक आलोचना ही करे, क्योंकि उसके आलोच्य विद्वता और प्रतिभा में उससे बहुत पीछे नहीं।

हैडमास्टर स्टाफ के अन्य अध्यापकों का एक मित्र या परामर्शदाता होना चाहिये। उसका कर्तव्य है कि वह अपने स्कूल में शिक्षा के स्तर को ऊंचा करे, परन्तु डण्डे के ज़ोर द्वारा नहीं, क्योंकि वह यह काम एक सृजनशील नेता बन के कर सकता है। यदि वह देखता है कि कोई अध्यापक अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझता या काम ठीक प्रकार से नहीं करता, तो वह उसके विरुद्ध आरम्भ से ही कारवाई करे, परन्तु यह कारवाई बड़ी समझ, सहानुभूति और सोच–विचार के साथ की जानी चाहिये। चाहे देनी कोनीन की गोली ही हो पर ऊ पर शक्कर चढ़ा कर देनी चाहिए ताकि उसका प्रभाव भी पूरा हो जाए और उसके कड़वेपन का अनुभव भी न हो।

३. हैडमास्टर के काम

(Functions of the Hea imaster)

१. देख-भाल करना

(Supervisory Functions)

यदि स्कूल का काम ठीक प्रकार से चलाना हो तो स्कूल की निगरानी करना भी हैडमास्टर के आवश्यक कामों में से एक होना

चाहिए। स्कूल का कोई ऐसा छोटे से छोटा कोना भी नहीं होना चाहिए जो हैडमास्टर की निगरानी से बचा हो, क्योंकि प्रत्येक वस्तु, का सारे स्कूल के प्रबन्ध पर कोई न कोई प्रभाव अवश्य पड़ता है। प्रत्येक काम की निगरानी करना आवश्यक है।

(क) पढ़ाने के कामों की देख-भाल
(Supervision of Teaching work)

हैडमास्टर का यह कर्तव्य है कि वह कभी कभी श्रेणियों में भी आए। परन्तु इस का यह मतलब नहीं कि बच्चों की उपस्थिति में अध्यापकों पर नुकताचीनी की जाए। श्रेणी में अध्यापक का एक विशेष प्रकार का प्रभाव होता है, सो यदि श्रेणी में ही अध्यापक को डांटा उपटा जाए तो परिणाम यह होता हैं कि बच्चों पर एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। इस प्रकार हैडमास्टर अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग करता है। यदि हैडमास्टर यह अनुभव करता है कि किसी विशेष विषय में कोई अध्यापक गलत है तो श्रेणी में घूम जाने के बाद सम्बधित अध्यापक को एकान्त में बुलाया जाए और उसे यथोचित परामर्श दिया जाए। हैडमास्टर एक गुप्तचर या आलोचक नहीं होना चाहिये बल्कि एक मित्र या सहायक होना चाहिए।

स्टाफ के प्रत्येक अध्यापक को यह समझना चाहिए कि उससे किस प्रकार के बर्ताव की आशा की जाती है, और उसके उत्तरदायित्व का कितना मूल्य है? इसलिये, अध्यापक को केवल छपे सरकुलर दे देना ही यथेष्ठ नहीं। उसे वर्ष भर की पढ़ाई और शिक्षा सम्बन्ध भी महत्वपूर्ण-बातें समझा देनी चाहिएं ताकि वह अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार जान सके।

हैड मास्टर को एक प्रकार की खब्त होनी चाहिए कि सारे स्कूल का काम शांतिपूर्वक और सुव्यवस्थित ढङ्ग से चले। जहां तक हो सके किसी के मन को किसी प्रकार का दुःख न पहुंचाया जाए। स्कूल की चारदीवारी के अन्दर संतोष और शांति का साम्राज्य हो। यह तभी हो सकता है यदि हैडमास्टर अपने आप को बादशाह न समझे, बल्कि अपने आप को किसी परिवार के संरक्षक की भाँति जाने और उस परिवार के हित को सदा अपने सामने रखे। हैडमास्टर को अपने व्यवसाय, स्टाफ़ और अपने विद्यार्थियों पर काफ़ी विश्वास होना चाहिए। केवल इसी प्रकार वह अपने स्टाफ़ से अच्छे और सतोष–जनक काम की आशा कर सकता है।

(ख) रजिस्टरों के कामों और हिसाब किताब को देख भाल।

(Supervision of Registration work and Accounts)

रजिस्टरों के कामों और हिसाब किताब की देख भाल करना भी हैडमास्टर के आवश्यक कामों में से एक है। इस प्रकार उसे अन्य अध्यापकों के कामों का पता लगता रहेगा। हैडमास्टर का दफ़तर एक बिन्दु है जिसके गिर्द सारा स्कूल घूमता है। प्रायः यह ख्याल किया जाता है कि अध्यापक की योग्यता का मापदण्ड उसका दफ़तर सम्बन्धी काम है। इस लिये हैडमास्टर को ध्यान रखना चाहिए कि दफ़तर के काम क्रमपूर्वक हों। कुछ अपने काम अन्य अध्यापकों में बाँट देने चाहिएँ ताकि दफ़तर के कामों में उसका अधिक समय न लगे। उसे सारे रजिस्टरों का भली प्रकार से निरीक्षण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त

हिसाब किताब ग्रोर भी पूरा ध्यान देना चाहिए क्योंकि प्रबन्धक-कमेटी ग्रौर शिक्षा विभाग के आगे स्कूल सम्बन्धित हिसाब किताब का उत्तरदायी वही ठहरता है।

(ग) ग्रौर देख भाल

स्कूल के मुखिया के रूप में, उसका यह कर्तव्य है कि वह स्कूल की सभी प्रकार की खेलों का ध्यान रखे। अलग २ क्लबों ग्रौर 'टीमों' की मीटिंगों में जाए, यदि हो सके तो स्वयं बच्चों के साथ खेल कर प्रसन्नता प्राप्त करे।

(घ) छात्रावास का निरीक्षण
(Supervision of the Hostel)

यदि स्कूल का कोई छात्रावास हो तो उसकी देख भाल करना भी हैडमास्टर का कर्तव्य है। उसे देखना चाहिए कि छात्रावास में घर जैसा वातावरण हो। छात्रों को दिये जाने वाले भोजन को स्वयं खा कर देखे। रसोईघर, खाने का कमरा, बर्तन धोने की जगह, स्नानागार ग्रादि स्थानों के प्रबन्ध का निरीक्षण करे। सुपरिनटैन्डैंट के साथ छात्रावास के विषय में विचार-विमर्श करे ग्रौर छात्रों को कम से कम पैसों में ग्रच्छा भोजन देने का प्रयत्न करे।

२. हैडमास्टर और विद्यार्थियों का सम्बन्ध

स्कूल के विद्यार्थियों से सम्बन्ध रखना हैडमास्टर की सफलता का एक रहस्य है। जो हैडमास्टर विद्यार्थियों को केवल ग्रध्यापकों की ग्रांखों से देखता है, उसमें उत्तरदायित्व-बोध की कमी है।

उसे स्वयं बच्चों में घुलमिल कर उन्हें समझने का प्रयत्न करना चाहिए, उनकी आवश्यकताओं को जानना चाहिये और जहां तक हो सके उनकी सहायता करके एक आनन्दानुभूति प्राप्त करनी चाहिए। स्कूल की सबसे छोटी श्रेणी को उसे एकाध घण्टी आवश्य पढ़ाना चाहिए ताकि जब से बच्चा स्कूल में प्रवेश करे, तब से वह उसे जानने लग जाए। कभी कभी बच्चों के कामों में उसे सहयोग देना चाहिए।

३. हैडमास्टर और माता-पिता का सम्बन्ध

स्कूल समाज का अंग होते हैं। इसलिये यदि स्कूल समाज की सेवा करना चाहतें है तो हैडमास्टर को चाहिए कि वह विद्यार्थियों के माता-पिता से सम्बन्ध स्थापित करे। इस विषय पर पहले भी प्रकाश डाला जा चुका है। उसे चाहिए कि वह स्कूल की चारदीवारी से बाहर भी झांकने की कोशिश करे! बच्चों के माता-पिता से मिलने के लिये अवसर ढूंढे, उनके घर जाए, उन्हें स्कूल में बुलाए और उनके साथ बच्चे के विषय में विचार–विमर्श करे।

४. हैडमास्टर—एक अध्यापक के रूप में

हैडमास्टर सारे विषयों का ज्ञाता होने के अतिरिक्त किसी एक विषय में निपुण होना चाहिए। वह एक आदर्श अध्यापक होना चाहिए, क्योंकि अध्यापकों ने भी उसका अनुसरण करना है। अध्यापक उसका सम्मान तभी करेंगे यदि उन्हें ज्ञात होगा कि उनका हैडमास्टर शिक्षा-प्रणाली और पढ़ाने की विधि में काफी निपूर्ण है।

५. हैडमास्टर एक मनुष्य के रूप में

हैडमास्टर जवान और विशाल हृदय का स्वामी होना चाहिए

स्वास्थ्य भी एक आवश्यक गुण है। वह जितना अधिक प्रसन्न-चित और शील स्वभाव वाला होगा उतना अधिक लोकप्रिय बन सकेगा।

संक्षेप में हैडमास्टर एक अच्छा अध्यापक, योग्य प्रबन्धकर्त्ता और सचेत सुप्रिन्टैन्डैंट होना चाहिए।

अध्यापक और उसके गुण।

यद्यपि वर्तमान शिक्षा का केन्द्र बच्चा है, किन्तु फिर भी अध्यापक का अपना ही स्थान है। वे विचार जिनके अनुसार अध्यापक एक ऐसा विशेष व्यक्ति माना जाता था, जिसके एक हाथ में पुस्तक (Book) और दूसरे में डण्डा हो, अब वहुत पुराने हो चुके हैं। अब अध्यापक के कामों में वृद्धि हो गयी है। यह ख्याल किया जाता है कि शिक्षा देना एक अध्यात्मक काम है जिसमें एक मन का दूसरे मन के साथ निकटतम सम्बन्ध होता है। इस प्रकार अध्यापक यदि चाहे तो बच्चों को बना या विगाड़ सकता है। सर परसी नन (Sir Percy nunn) का विचार है–'अध्यापक जब श्रेणी में चक्कर लगाता है, तब वह बच्चों को कई प्रकार के इशारों नकल, क्रोध या सहानुभूति द्वारा प्रभाव स्वीकार करने से रोक नहीं सकता।''

इस लिये उसमें कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है, क्योंकि उसने अपने उन्हीं गुणों द्वारा बच्चों पर प्रभाव डालना है।

१. अध्यापक का व्यक्तित्व

(Personality of the Teacher)

व्यक्तित्व को एक रूप तो दिया जा सकता, पर प्रायः बहुत सारे शारीरिक, वौद्धिक और मानसिक गुणों के विश्रण को व्यक्तित्व

कहा जाता है । एक अच्छा अध्यापक वही है जिसमें कुछ ऐसे गुण हों जिनके द्वारा बच्चों और उनके माता–पिता पर अच्छा प्रभाव डाला जा सके ।

२. व्यवसाय-बोध

(A sense of Vocation)

कोई रचनात्मक विद्या दी ही नहीं जा सकती जबतक कि उसके देने वाले यह अनुभव न करें कि वे इसी काम के लिये बनाए गये हैं ।

यदि अध्यापक का काम इस लिये किया जाता है कि वे किसी अन्य काम के योग्य न हों या उन्हें भोले भाले बालकों पर हकूमत करने की सनक हो, तो हम उनसे अच्छे काम की आशा नहीं कर सकते । सोचने की बात है कि जो काम हम अपने मन से नहीं करते, वह कैसे अच्छा या संतोषजनक हो सकता है ? अध्यापन–कार्य में तो मन की ईमानदारी की अत्याधिक आवश्यकता हैं । जब तक अध्यापक और विद्यार्थी दोनों अपने काम में दिलचस्पी नहीं लेंगे, कदाचित पठन–पाठन का कार्य वास्तविक रूप में नहीं किया जा सकता और न ही विद्यार्थियों को वास्तविक शिक्षा दी जा सकती है ।

एक विद्वान लिखता है—"एक अच्छे अध्यापक की सबसे अच्छी विशेषता यह है कि वह केवल अध्यापक ही होना चाहिए । उसे केवल अध्यापन–कार्य की ही ट्रेनिंग दी गई हो । किसी अन्य पेशे के लिये उसे तैयार न किया गया हो ।

३. मनोविज्ञान का ज्ञान

(The Knowledge of psychology)

एक आदर्श अध्यापक में बच्चों को समझने की क्षमता होनी चाहिए। यदि वह बहुत पढ़ा लिखा हुआ है और अपने विषय में निपुण है तो स्कूल के लिये अच्छा हैं—पर इसके अतिरिक्त बच्चों को समझने और उनके साथ निर्वाह करने की क्षमता का होना भी आवश्यक है। गणित, इतिहास, भूगोल आदि का ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है, परन्तु बाल–मनोविज्ञान सम्बंधी ज्ञान का होना इनसे भी अधिक जरूरी है।

४. अपने विषय में निपुण होना।

(Mastery of Subject Matter)

अध्यापक सदा सुशिक्षित होना चाहिए। एक अयोग्य डाक्टर रोगी की शारीरिक भलाई के लिये भयानक सिद्ध होता है—इसी प्रकार अयोग्य अध्यापक राष्ट्र-हित के लिये हानिकारक और अकल्याण कारी होता है, क्योंकि वह न केवल बच्चों के हृदयों को हानि पहुंचाता है बल्कि उनकी आत्मा के विकास को भी रोक लेता है। इस लिये अध्यापक अपने विषय में निपुण होना चाहिए। केवल विद्यार्थी से अधिक ज्ञान होना कोई विशेष बात नहीं। वह स्वयं एक अच्छा विद्यार्थी होना चाहिए और अपने व्यवसाय की समझ के अतिरिक्त उसमें कुछ जन्मजात गुण भी होने चाहिएँ।

५. अच्छा चरित्र

(Good Character)

अध्यापक एक अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति होना चाहिये। वह एक पब्लिक-मैने (Public Man) है और अबोध बालकों के लिये

एक आदर्श होता है। उसके विचार ऊंचे और विवेकपूर्ण होने चाहिएं। यदि वह समाज के लिये अच्छे चरित्रों का निर्माण करना चाहता है तो वह स्वयं एक चरित्रवान व्यक्ति होना चाहिए।

६. नेतृत्व
(Leadership)

जिस प्रकार हैडमास्टर का एक नेता होना जरूरी है उसी प्रकार अध्यापक में भी एक नेता के गुण होने चाहिएं। वह विद्यार्थियों के सम्मान मांग नहीं सकता, हां अपने वर्ताव द्वारा प्राप्त कर सकता है। अपने प्रभाव द्वारा तो एक अच्छा नेता बन सकता है किन्तु डण्डे के ज़ोर द्वारा नहीं, क्योंकि डण्डे के जोर की ओर ही प्रतिक्रियां होती है।

७. संतोष
(Patience)

एक कहावत है कि अध्यापक में अत्यधिक संतोष होना चाहिए। बच्चों और अपने अधिकारियों के साथ उसे बहुत ही संतोष से काम लेना चाहिए। शिक्षा-प्रणाली में कई प्रकार के प्रयोगों और योजनाओं की आवश्यकता होती है और कई बार इस प्रकार के कामों में निराशा का मुंह देखना पड़ता हैं। इसलिये यदि उसमें संतोष और धैर्य का अभाव होगा तो वह शीघ्र ही घबरा जाएगा।

८. अध्यापन-विधि का ज्ञान
(Knowledge of Teaching Method)

एक अच्छे अध्यापक को अध्यापन-विधि का पूरा ज्ञान होना चाहिए। डबल्यू ऐस. राईवर्न के शब्दों में-वह बच्चों को

समझाने के लिये उत्सुक, अपने विषय में प्रवीण और अध्यापन-कार्य का इच्छुक होना चाहिए। एक अच्छे ढंग की शिक्षा देने के लिये यह जरूरी है कि वह एक श्रेष्ट प्रकार की शिक्षा-प्रणाली का ज्ञाता हो। अध्यापन-विधि से अनभिज्ञ होना उसी तरह है जिस तरह एक मोटर-ड्राइवर मोटर की ब्रेकें लगाना या पैट्रोल को वश में करना न जानता हो। पैट्रोल चाहे अच्छा हो, मोटर भी ठीक हो, पर यदि ड्राइवर ही मोटर चलाने के नियमों से अनभिज्ञ हो तो यात्रियों के जीवन सुरक्षित नहीं होंगे। अध्यापक केवल तब ही ठीक प्रकार से पढ़ा सकता है जबकि वह अपने समय का नवींनतम अध्यापन-विधियों को जानता होगा।

९. स्वालोचना
(Self-criticism)

अध्यापक कभी कभी अपने पर भी विचार करे। ऐसा न हो कि वह बच्चों पर उपदेश झाड़ता फिरे, पर स्वयं त्रुटियों और अभावों का भण्डार हो। डबल्यू. ऐम. राईबर्न (W. M. Ryburn) लिखता है—"स्व-आलोचना अध्यापक के लिये पहली चीज़ है और उसके आवश्यक गुणों में से एक है" इस प्रकार अध्यापक को दो लाभ हो जाएंगे। उसे अपनी ऐसी त्रुटियों का ज्ञान हो जाएगा जिनका दूर होना आवश्यक है। दूसरा, वह ऐसे गुण ग्रहण करने का प्रयत्न करेगा जो बच्चों पर स्वस्थ प्रभाव डाल सकें। मेकडूगल का भी यही विचार है कि दूसरों को समझाने के लिये अपना पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। अपने आप को केवल स्व-आलोजना की दृष्टि से ही देखा जा सकता है।

सिलेबस के अतिरिक्त पाठान्तर क्रियाओं में रुचि

(Interest in Extra curriculum Activities)

आजकल अधिकतर किताबी-अध्ययन पर ही जोर दिया जाता है और सिलेबस के अतिरिक्त खेलों पर कोई जोर नहीं दिया जाता। इसलिये आवश्यक है कि अध्यापक खेलों में स्वयं दिलचस्पी ले।

१ . अध्यापक और विद्यार्थी का सम्बन्ध

(Relation of the Teacher and Pupil)

आज शिक्षा का केन्द्र बच्चा है इसलिए जरूरी है कि जितना समीप से हो सके वह बच्चे को जानने की कोशिश करे। बच्चे को घर में स्कूल में, गली में, प्रत्येक स्थान पर भली प्रकार देखे। इस प्रकार उसे पता लगेगा कि किस प्रकार घर का वातावरण बच्चे पर प्रभाव डालता है। दूसरी चिन्तनीय बात यह है कि बच्चा अध्यापक तक बड़ी आसानी से पहुंच सकता हो और वह उसे एक मित्र ही समझता हो। एसा अध्यापक ही बच्चे के प्यार और विश्वास को जीत सकता है। उसके कहने और करने में कोई विशेष अन्तर नहीं होना चाहिए क्योंकि यदि अध्यापक के 'कहने' और 'करने' में अन्तर होगा अर्थात वह कहेगा कुछ और करेगा कुछ तो बच्चों पर विचित्र सी प्रतिक्रिया होगी और वह अध्यापक का सम्मान नहीं कर सकेंगें। यह तो फिर वही बात होगी-"जिस तरह मैं कहता हूं वैसे करो, परन्तु उस तरह न करों जिस तरह मैं करता हूं।"

गाँधी जी का कथन है—"धिक्कार है उस अध्कापक पर जो मुँह से कुछ और पढ़ाता है, परन्तु दिल में कुछ और रखता है।"

सो अध्यापक छात्रों के लिये एक आदर्श होना चाहिए जिसके पदचिन्हों पर बच्चे चल सकें।

(१२) अध्यापक का स्टाफ के अन्य अध्यापकों से सम्बन्ध (Teacher's Relation to the other members of the Staff)

यदि स्कूल में पढ़ाना सहकारी उद्योग है तो यह जरूरी है कि एक अध्यापक के अन्य अध्यापकों के साथ अच्छे सम्बंध हों ताकि वह स्टाफ के अन्य अध्यापकों के साथ एक 'टीम' की तरह काम कर सके। वह केवल धन के लालच में ही न फंसा हो, बल्कि समय आने पर दूसरों के साथ चल कर स्कूल की गाड़ी को इकट्ठा खींच भी सके।

५. अध्यापकों की नियुक्ति के लिए विचारजनक बातें (Consideration for Employing the Teachers)

छोटी श्रेणियों के लिए हमेशा अच्छे और योग्य अध्यापक नियुक्त करने चाहियें, क्योंकि छोटा बच्चा जो नया नया स्कूल में प्रविष्ट होता है उदास और अनमना सा रहता है। उस समय अध्यापक को न केवल उसका मन लगाना पड़ता है बल्कि उसे इस बात का आभास कराना पड़ता है कि स्कूल कोई विचित्र स्थान नहीं। इस का यह अर्थ नहीं कि बाकी श्रेणियों के लिए साधारण अध्यापक रख लिये जाए। बड़ी श्रेणियों के लिए ऐसे अध्यापक रखने चाहिएं जो अपने विषय में खूब निपुण हों।

६. श्रेणी-प्रधान-अध्यापक प्रणाली और विषय-प्रधान अध्यापक प्रणाली (Special Subject-Teacher Versus Class-teacher system)

अब प्रश्न यह उठता है कि अलग अलग श्रेणियों के लिए अलग

अलग अध्यापक होने चाहिएँ याँ अलग अलग विषयों में निपुण अध्यापक प्रत्येक श्रेणी के लिए नियुक्त किये जाने चाहिए। दोनों प्रणालियों के अपने अपने लाभ और हानियां हैं। पहले हम विषय-प्रधान अध्यापक-प्रणाली की जांच करेंगे।

१. एक ऐसा अध्यापक जिसे केवल वही विषय पढ़ाने के लिये दिया जाता है जिसमें वह खूब निपुण है, बड़े अच्छे ढंग से पढ़ाने की कोशिश करेगा और वह बच्चों में उस विषय के लिये रुचि और उत्साह पैदा करने में सफल हो सकेगा। प्रत्येक विषय के लिये विशेष कमरा दिया जा सकता है। इस प्रकार उस विषय के लिए उसी प्रकार का वातावरण भी पैदा किया जा सकता है।

२. रुचि और रोचकता की भी उचित बाँट हो सकती है। श्रेणी-प्रधान-अध्यापक प्रणाली में यह बात नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रणाली में अध्यापक को सारे विषय पढ़ाने पड़ते हैं। विषय-प्रधान-अध्यापक प्रणाली में अपने विषय में निपुण अध्यापक अपने विषय के लिए एक विशेष प्रकार का उत्साह रखता है। इस प्रकार उसे श्रेणी को प्रत्येक विषय में दिलचस्प और रुचिकर पढ़ाई का आनन्द मिल सकेगा।

३. एक विषय में निपुण अध्यापक उस विषय का वृहद ज्ञान रखता हैं। प्रत्येक श्रेणी का अध्यापक सारे विषय इतनी अच्छी तरह से नहीं जान सकता, परन्तु एक विषय में निपुण अध्यापक को अपने विषय पर पूरा अधिकार होता है। इस लिये विषय-प्रधान अध्यापक प्रणाली अपेक्षाकृत अच्छी है।

४. इस प्रणाली के द्वारा बच्चे कई अध्यापकों के सम्पर्क में आते हैं। सो उनके दृष्टिकोण काफी विस्तृत हो जाते हैं और बच्चे को अपनी स्वाभाविक रुचि का भी पता लग जाता है।

५. किसी विशेष विषय में निपुण अध्यापक उस विषय के बारे में एक खास 'प्लान' बना सकता है और किसी दूसरे विषय के साथ भी सम्बन्ध जोड़ सकता है। बच्चों की मानसिक दशानुसार अपने विषय को एक निश्चित क्रम में रखता है।

ये सब तर्क चित्र का एक ही रूप प्रस्तुत करते हैं। श्रेणी-प्रधान अध्यापक-प्रणाली के पक्ष में भी कई दलीलें दी जा सकती हैं।

१. एक विषय में निपुण अध्यापक केवल अपने विषय में दिलचस्पी लेता है। परन्तु श्रेणी का अध्यापक श्रेणी में दिलचस्पी लेता है। परसीवल रैन के शब्दों में—"ऐसी प्रणाली जिसमें बच्चे की अपेक्षा विषयों पर अधिक महत्व दिया जाता है, कोई मनोविज्ञानिक प्रणाली नहीं। वहाँ सिखलाई, अनुशासन, प्रभाव, कुछ नहीं हो सकता, केवल थोड़ा सा ज्ञान बच्चे प्राप्त कर सकते हैं।

बड़ी श्रेणियों के बच्चे विषय-प्रधान अध्यापक प्रणाली से लाभ उठा सकते हैं—परन्तु छोटे बच्चों को अध्यापक की आवश्यकता है। उनके लिए कोई ऐसा व्यक्ति चाहिए जो उन्हें समझ सके और उनके जीवन का निर्देशन स्वस्थ ढंग से कर सके।

२. विषय के अध्यापकों पर कोई विशेष उत्तरदायित्व नहीं होते। बच्चे काम करें या ना करें—उन्हें कोई चिन्ता नहीं। श्रेणी का अध्यापक उनका उत्तरदायित्व लेकर काम करता है।

३. श्रेणी का अध्यापक प्रत्येक विषय की आवश्यकतानुसार समय दे सकता है, किन्तु दूसरी कोटि का अध्यापक केवल घन्टियों के पढ़ाने से मतलब रखता है।

४. इस प्रणाली के द्वारा अलग २ विषयों में एक दीवार सी नहीं खड़ी हो जाती। अध्यापक प्रत्येक विषय की आवश्यकतानुसार शेष विषयों से सम्बन्ध रख सकता है।

५. विषय-प्रधान अध्यापक-प्रणाली में प्रत्येक अध्यापक अपने विषय को आवश्यक जान कर घर का काम देता है। इस प्रकार बच्चों पर एक बोझ सा पड़ जाता है। श्रेणी-प्रधान-अध्यापक प्रणाली में यह बात नहीं। अध्यापक बच्चों की शक्ति के अनुसार काम देता है।

६. श्रेणी प्रधान अध्यापक-प्रणाली में समय का चार्ट बनाते समय कोई विशेष कठिनाई पेश नहीं आती, ठीक समय पर हर विषय बढ़ाया जा सकता है। यह विचार किया जाता है कि कठिन विषयों के लिए दिन का सबसे अच्छा भाग रखा जाना चाहिए जबकि बच्चों का दिमाग बिलकुल ताज़ा हो। यह बात विषय-प्रधान अध्यापक-प्रणाली में नहीं हो सकती।

दोनों प्रणालियों के अपने लाभ और हानियां हैं। यदि दोनों प्रणालियों को मिला दिया जाय तो बहुत लाभ प्राप्त किया जा सकता है। छोटी श्रेणियों के लिए श्रेणी-प्रधान-अध्यापक-प्रणाली लाभदायक सिद्ध हो सकती है और बड़ी श्रेणियों के लिए विषय प्रधान-अध्यापक प्रणाली। इस प्रकार दोनों प्रणालियों से लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

चतुर्थ परिच्छेद

स्कूल की इमारत, फर्नीचर और सजावट का सामान

स्थिति

(Site of the School)

१. एक स्कूल प्रत्येक स्थान पर नहीं बनाया जा सकता। स्कूल की स्थिति का चुनाव अत्यधिक सोच विचार के बाद किया जाए। स्कूल का उद्देश्य न केवल मानसिक विकास करना ही होता है, बल्कि शारीरिक आरोग्यता का भी ख्याल रखना होता है। इस लिए जगह अच्छी होनी चाहिए।

२. जहां तक हो सके स्कूल के लिए जगह शहर के बाहर ही होना चाहिए। आम सड़कों का ख्याल रखना चाहिए ताकि स्कूल आने वाले बच्चों के लिए तांगों मोटरों से बचा हो सके।

३. डबल्यू. ऐम. राईबर्न का विचार है कि स्कूल की जगह सड़क के समीप होनी चाहिए, परन्तु इतनी दूर भी होनी चाहिए कि धूल आदि से बची हुई हो।

४. इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए कि शहर किस ओर फैल रहा है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि थोड़े समय में ही स्कूल शहर में बस जाए।

तंग गलियाँ, ज़बरदस्त भीड़, गन्दी नालियाँ और कूड़े करकट के ढेर स्कूल के इर्द गिर्द नहीं होने चाहिए।

५. स्कूल ऐसे स्थानों पर बनाने चाहिए जो काफी खुले हों। एक स्वास्थप्रद और सुखमय वातावरण के बिना अध्यापक और विद्यार्थी ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकेंगे और उन पर अच्छा नैतिक प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। पहले बताया जा चुका है कि आज की शिक्षा का केन्द्र खेलें और काम हैं। श्रेणियों के कमरों की शिक्षा का रिवाज अब कम हो गया है। इसलिए स्कूल की जगह इतनी खुली होनी चाहिए कि बच्चे खूब खेल सकें और अपनी खेलों द्वारा कुछ सीख सकें।

६. जगह ऐसी होनी चाहिए कि आवश्यकता के समय स्कूल बढ़ाया जा सके, सर्दीयों में श्रेणियां बाहर लगाई जा सकें और खेलें भी आसानी से करवाई जा सकें।

७. स्कूल के लिए जगह ऊँची होनी चाहिए। दीवारों और छत्तों पर किसी प्रकार की दीमक न लगी हो। उसके इर्द गिर्द पानी के जोहड़ न हों।

८. स्कूल के प्रत्येक कमरे में सूर्य का प्रकाश अच्छी तरह आ सके। हवा का भी ख्याल रखना चाहिए।

९. जगह का धरातल सम होना चाहिए। यदि थोड़ी सी ढलान हो भी तो वह केवल दक्षिण की ओर होनी चाहए।

१०. स्कूल के नज़दीक किसी प्रकार का कारखाना या फ़ैकटरी नहीं होनी चाहिए जिसका धुआँ स्कूल के वातावरण को दूषित बनाए।

एक आदर्श स्कूल केवल एक आदर्श स्थान पर ही बनाया जा सकता है। स्कूल का जगह चुनते समय उपरोक्त बातों को अपने सामने रखना चाहिए।

स्कूल की इमारत

(School Building)

जिस प्रकार एक अच्छे और निरोग मन के लिए एक स्वस्थ शरीर का होना भी आवश्यक है, उसी प्रकार अच्छी शिक्षा देने के लिए अच्छी इमारत का होना जरूरी है। स्कूल की इमारत का स्कूल पर बहुत प्रभाव पड़ता है और स्कूल के वातावरण को सुन्दर और सुखकारी बनाने में इमारत का बड़ा योग होता है।

हमारे देश के स्कूलों में सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वे प्रायः 'काम चलाऊं' इमारतों में होते हैं। इस बात की अवहेलना की जाती है कि स्कूल की इमारत के कई मनोवैज्ञानिक प्रभाव होते हैं। भारत का शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिगामी होने का सब से बड़ा कारण स्कूल की इमारतें हैं। इस लिए स्कूलों की इमारतों का अच्छा होना बहुत जरूरी है। इमारत बनाने के समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि किसी प्रकार की चीज विद्यार्थियों के कामों में रुकावट डालने वाली न हो। छोटे बच्चों का स्कूल (Infant School) जूनियर बेसिक स्कूल, सीनियर बेसिक स्कूल और सैकिन्डरी स्कूल, सब अलग अलग ढङ्ग के बने होने चाहिएं।

इमारत का मुंह दक्षिण की ओर होना चाहिए। कमरों के दोनों ओर बरामदा होना ठीक नहीं और न ही 'क्रास लाइट' (Cross-light) बहुत लाभदायक होती है। यदि स्कूल E जैसी शकल या चकोर बना हो और उसका मुंह दक्षिण की ओर हो तो बरामदा अन्दर की तरफ बनाया जा सकता है। बाहर की तरफ हिलाए जा सकने वाले सन-शेड्स (Sun-shades) होने चाहिएं जो रोशनदानों और खिड़कियों के ऊपर से रस्सी द्वारा

खींचे जा सकते हैं। डब्ल्यू० एम० राइबर्न का विचार है कि स्कूल की इमारत हमेशा एक मंजिल वाली होनी चाहिए। ज़मीन कोई बहुत मंहगी नहीं होती। इस प्रकार दोमंज़िली इमारत से एक मंज़िल वाली इमारत हमेशा अच्छी रहती है। कमरों की लम्बाई चौड़ाई विद्यार्थियों की संख्या के अनुसार होनी चाहिये।

साधारणता १५ पन्दरह वर्ग फुट जगह प्रत्येक विद्यार्थी के लिए काफ़ी है। पचास विद्यार्थियों के लिये 20′×18′×15′ क्षेत्रफल काफी होता है। लम्बाई चौड़ाई आवश्यकतानुसार बनाई जा सकती है। इमारतें बनाने वालों का विचार है कि पन्दरह फुट से अधिक ऊंचाई रखना बिलकुल व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त यदि कमरा, चौड़ा होगा तो कोनों में बैठे हुए बच्चों के लिए सुनना मुश्किल हो जाएगा यदि कमरा ऊंचा होगा तो रोशनदान आदि रखना कठिन हो जाएगा और साथ ही उस के सजाने की समस्या का हल करना मुश्किल हो जाएगा। कम ऊंचाई वाले कमरे तंग, अन्धेरे और गन्दे होते हैं। ऐसे कमरों में अध्यापक की आवाज़ सुनने में कठिनाई पेश आती है। प्रत्येक कमरे के केवल दो दरवाजे होने चाहिए।

३. प्रकाश

(Light)

प्रति दिन बढ़ रही आंखों की कमज़ोरी स्कूल के प्रबंधकों पर एक और उत्तरदायित्व ला डालती है। श्रेणियों के कमरों को भली प्रकार से प्रकाशमान रखा जाए। कमरों में प्रकाश का प्रबंध कुछ इस प्रकार से करना चाहिये कि उनमें दिन के प्रत्येक समय में प्रकाश आ सके। प्रकाश किसी विशेष दिशा से कमरे में नहीं आना चाहिये अपितु कमरे में फैला होना चाहिये। इस बात का भी ध्यान

खाना चाहिये कि कमरे में आ रहे प्रकाश से छाया न पड़ने पाए। प्रकाश बाँयी ओर से आना चाहिये ताकि लिखते समय लेखनी की छाया न पड़े। इस लिये कमरे में डैस्क इस प्रकार पड़े होने चाहिये कि बाहर से आ रहे प्रकाश का पूरा २ उपयोग किया जा सके। यदि इस बात का ध्यान नहीं रखा जाएगा तो प्रकाश अध्यापक के मुख पर चमक उस की आँखों को चुंधिया देगा।

सीटों और डैस्कों का प्रबंध दरवाजे और खिड़कियों के हिसाब से करना चाहिये। कमरे में विद्यार्थी सम्बन्धी उपयोगी चीजें रखते समय शारीरिक विज्ञान का पूरा २ ध्यान रखना चाहिये।

४. विशेष विषयों (Subjects) के लिये विशेष कमरों की आवश्यकता

इस बात में अब जरा भी मतभेद नहीं है कि भूगोल, दस्तकारी, चित्रकारी और विज्ञान आदि के अपने २ कमरे होने चाहियें, यदि हम इन विषयों को प्रभावशाली और वैज्ञानिक ढंग दढ़ाना चाहते हैं तो हमें कई प्रकार के हलके और भारी सामान की आवश्यकता पड़ेगी। सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये काफ़ी समय नष्ट हो जाता है और साथ ही चित्रों, चार्टों और माडलों के टूटने का डर भी बना रहता है। इस लिए ऐसे विषयों के लिये अलग २ कमरे बनवाने से अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को ही बड़ी सुविधा रहती है। कई प्रकार के नवीन ढंगों का प्रयोग किया जा सकता है जोकि एक श्रेणी के साधारण कमरे में संभव नहीं है इस लिये स्कूल का भवन निर्माण करते समय विशेष कमरे बनवाने की ओर पूरा २ ध्यान रखना चाहिये।

भूगोल का कमरा

भूगोल का कमरा ऐसा होना चाहिए कि उसमें ३४ विद्यार्थी एक समय बड़ी आसानी से बैठ सकें। इसके लिये ३६' X ३०' कमरा काफी हो सकता है। प्रकाश के लिए बड़ी २ खिड़कियां होनी चाहिएं ताकि आवश्यकता के समय अधिक प्रकाश भी आ सके और जब कमरे में अन्धेरा करता हो तो उन्हें बन्द करके अन्धेरा भी किया जा सके। खिड़कियां अधिक भी नहीं होनी चाहिएं, क्योंकि इस कमरे की दीवारों पर काफी जगह की आवश्यकता होती है। एक बड़ी खिड़की का होना बहुत जरूरी है क्योंकि यह मौसम आदि को ध्यान पूर्वक देखने का काम दे सकती है। स्कूल का निरीक्षण करने के लिए उसका मुंह दक्षिण की ओर होना चाहिये ताकि स्कूल की हर हालत को ठीक प्रकार से देखा जा सके। यदि स्कूल का भवन दुमंजिला हो तो यह कमरा ऊपर वाली मंज़िल पर होना चाहिए ताकि वायु-यन्त्र (Wind Vane) और धूप घड़ी (Sun Dial) बिना किसी हलचल के काम कर सकें। जब फिल्म आदि दिखाने के लिए कमरा बिलकुल बन्द करना हो कृत्रिम प्रकाश और वायु लाने का सुन्दर प्रबन्ध होना चाहिए। इस कमरे में एक लटकते हुये गलोब का होना भी बहुत ज़रूरी है। गुलाब की दशा इस प्रकार की होनी चाहिए कि वह छत से अलग किया जा सके और जरूरत के समय नीचे भी लाया जा सके। वह इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रोजैक्टर का प्रकाश उस पर भली प्रकार पड़ सके ताकि दिन रात का बनना स्पष्ट रूप से दिखाया जा सके और सूरज की किरणों को सीधा तथा तिरछा पड़ने का प्रभाव भी समझाया जा सके। भवन निर्माण के समय यह देख लेना चाहिए कि गलोब को कौन सा स्थान देना है। ताकि भविश्य में व्यर्थ के खर्चों से बचा जा सके।

भूगोल के कमरे में पानी का प्रबन्ध भी होना चाहिये और कमरे के अन्दर पानी का एक हौज होना चाहिये । कम्पास की चारों दिशाएं भी छत पर अंकित होनी चाहिएं ताकि विद्यार्थियों को भिन्न २ दिशाओं का आभासा कराया जा सके। कुछ भूगोल विशेषज्ञों का विचार है कि कम्पास फर्श पर पड़ी होनी चाहिये ।

भूगोल के कमरे में सारे फर्नीचर और शेष सामान के लिए कोई नियत स्थान होना चाहिए । विद्यार्थियों के लिए सिन्गल-टेबुल (Single-Table) और हिलाए जा सकने वाली कुर्सियाँ होनी चाहिएं और मेज इतने बड़े होने चाहिएं कि उन पर नकशें या ऐटलस भली प्रकार से फैलाए जा सकें । अध्यापक का मेज़ एक चबूतरे पर होना चाहिए । और उसका मुँह विद्यार्थियों की ओर होना चाहिए । दीवार पर नकशा लटकाने के लिए अलग कीलें गड़ी होनी चाहिएं । फिल्म प्रोजैक्टर कमरे के एक कोने में होना चाहिए और पर्दा उस के सामने वाले कोने में लटका होना चाहिए। इस प्रकार विद्यार्थी अपनी कुर्सी मेज़ हिलाए बिना ही फिल्म को देख सकेंगे। पर्दा किसी विशेष और पूर्व निश्चित स्थान पर लटकाना चाहिए ताकि जब उस की आवश्यकता न हो तो धूल आदि से बचाने के लिए आसानी से लपेटा भी जा सके।

नकशों को भली प्रकार से संभाल कर रखने के लिए अलमारियां होनी चाहियें। इन अलमारियों में हुकें (Hoocks) होनी चाहियें और नकशों को अच्छी तरह लपेट कर क्रम से रखना चाहिए। इस तरह नकशे खराब होने से बच जाएंगे और जगह की भी बचत हो जाएगी क्योंकि $1\frac{1}{2}$' गहरी अलमारी में कोई बीस नकशे बड़ी आसानी से रखे जा सकेंगे । यदि हर हुक के साथ नकशे का नाम भी लिखा हो तो समय की काफ़ी बचत की जा सकती है ।

चित्र आदि रखने के लिये खाने वाली पेटियां बड़ी लाभदायक

रहती हैं। चित्रों को देशों अथवा विषय के क्रम से छांटा जा सकता है। भूगोल के लिये चित्रों को यदि देश क्रम से छांट कर रखा जाय तो बड़ा ही अच्छा रहता है। हर खाने में एक सूची पत्र होना चाहिये जिस से यह झट पता लग सके कि इस खाने में कौन कौन से चित्र हैं। खानों पर यदि देशों के लेबल लगा दिये जाएं तो और भी अच्छा रहेगा।

भूगोल के कमरे में एक लायब्रेरी का होना भी जरूरी है। लायब्रेरी की अलमारी में शीशे लगे होने चाहिये ताकि विद्यार्थी को पुस्तकें देखने में सुविधा रहे।

साइंस (Science) का कमरा

आज विज्ञान के युग में यह जरूरी हो गया है कि स्कूलों में साइंस की शिक्षा पर पूरा २ ध्यान दिया जाये। विज्ञान एक ऐसा विषय है जिस में अमली (Practical) काम बहुत करना पड़ता है। इस लिये इस विषय (Subject) के लिये अलग कमरे का होना अतिआवश्यक है। साधारणत. विद्वानों का मत है कि 45′×25′ का कमरा 40 लड़कों को पढ़ाने के लिये और 20 लड़कों के अमली (Practical) काम करने के लिये काफ़ी है। 40 विद्यार्थियों के लिये दोहरे मेज़ होने चाहियें। इस प्रकार यह लैक्चर का कमरा बन जाएगा और यह सारा कमरा नमूने का पाठ (Demonstration lesson) देने के समय प्रयोग में लाया जा सकेगा।

जहां तक कमरे की बनावट का सम्बन्ध है दीवारें $1\frac{1}{2}'$ मोटी होनी चाहियें। फ़र्श जहां तक हो सके समतल होना चाहिए ताकि उसे साफ़ करने में आसानी रहे। कमरे के कोने गोल हों तो अच्छा रहेगा

रौशनी तीन बड़ी बड़ी खिड़कियों की राह से आनी चाहिए। खिड़कियां सीटों और असली काम करने वाली मेज़ों के पास होनी चाहियें। हर खिड़की दो फुट चौड़ी और सात या आठ फुट लंबी होनी चाहिए। यदि असली काम करने के लिए अधिक प्रकाश की आवश्कता हो तो छत की राह से और प्रकाश प्राप्त करने का प्रवन्ध भी किया होना चाहिए। प्रकाश के प्रयोग के समय अँधेरा करने के लिए खिड़कियों को बन्द करके काम चलाया जा सकता है।

कमरे में प्रवेश करने के लिये और कमरे से बाहर जाने के लिए दो अलग अलग दरवाज़े होने चाहियें। दरवाज़े बाहर से खुलने चाहियें ताकि किसी विशेष अवसर पर आवश्यकता के समय राह रुक न जाए और बाहर जाना कठिन न हो जाये।

विज्ञान के कमरे के लिए $10' \times 4'$ का काला तखता होना चाहिये। केवल दीवार पर काला रंग पोत देने से भी काले तखते का काम लिया जा सकता है। काले तखते से तीन फुट की दूरी पर अध्यापक का मेज होना चाहिये। मेज 6 फुट लंबा $2\frac{1}{2}$ फुट चौड़ा और $2\frac{1}{2}$ फुट ऊँचा होना चाहिए। मेज का $2\frac{1}{2}$ फुट ऊँचा होना इस लिये जरूरी है ताकि उसे लिखने के प्रयोग में भी लाया जा सके और यदि अध्यापक नमूने के तौर पर विद्यार्थियों को कुछ कर के दिखा रहा हो गा तो उन को देखने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो गी।

विज्ञान के कमरे में गैलरी नहीं होनी चाहिए। इसके कई कारण हैं। एक तो इसके बनाने में पैसा बड़ा खर्च होता है, दूसरे इसके साफ करने में बड़ी कठिनाई होता है और तीसरे अध्यापक इसकी ठीक से देख भाल भी नहीं कर सकता।

जहां तक सीटों का सम्बन्ध है दोहरे मेज और कुर्सियां होनी चाहियें—२० मेज़ें और ४० कुर्सियां। दोहरा मेज ३ फुट ६ इंच लंबा

१ फुट ६ इंच चौड़ा और २ फुट ऊँचा होना चाहिए।

एक 18"×12"×6" का हौज़ भी विज्ञान के कमरे के लिये बहुत जरूरी है।

प्रयोग के कमरे के लिये ६ मेज होने चाहियें। ये मेज़ साफ़ और देवदार की लकड़ी से बने होने चाहिये। हर मेज में एक शैल्फ (Shelf) होना चाहिए जिसमें पुस्तकें और दूसरा जरूरी सामान रखा जा सके। यह मेज़ ६ फुट लंबे, ३'६" चौड़े और ३ फुट ऊंचे होने चाहियें।

हर मेज़ पर चार लड़के एक साथ प्रयोग कर सकें। हर मेज़ के बीच ३ फुट ६ इंच का फासला होना चाहिए।

पानी के लिए 4'×4'×4' का लोहे का एक हौज़ होना चाहिए। हौज़ कमरे के एक कोने में होना चाहिए। यह हौज़ हर रोज़ भरा जाना चाहिए। इसी हौज़ में से नल के द्वारा पानी दूसरे छोटे हौजों में पहुंचाया जा सकेगा।

आवश्यक वस्तुओं के रखने के लिए अलमारियों का होना भी अति आवश्यक है।

दीवार के एक भाग पर विद्यार्थियों को दिया जाने वाला काम और उसका परिणाम आदि नोट करने के लिए नोटिस बोर्ड होने चाहियें।

विज्ञान के कमरे में विज्ञान संबन्धित एक अपनी ही अलग अलमारी होनी चाहिए।

दस्तकारी का कमरा

बीसवीं शताब्दी में कला और दस्तकारी को शिक्षा का एक

आवश्यक अंग समझा गया है । इस लिए हर स्कूल में कला और दस्तकारी के लिए अलग कमरा होना बहुत जरूरी है ।

कमरे का आकार विद्यार्थियों की संख्या के अनुसार होगा। कमरा खुला और हवादार होना चाहिए । प्रकाश इसमें उत्तर की ओर से आना चाहिए । यदि अधिक प्रकाश की आवश्यकता हो तो छत में से प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है ।

डैक्स इस प्रकार रखे होने चाहियें कि उनका मुंह खिड़कियों की ओर हो । हर बैंच के बीच तीन फुट चौड़ा फ़ासला होना चाहिए। अध्यापक और विद्यार्थी के बैंच के बीच आठ फुट का फासला होना चाहिए । ड्राइंग डैस्क, अध्यापक के डैस्क और काले तख़ते के लिए भी उचित स्थान होना चाहिए ।

दस्तकारी के लिए जरूरी सामान, माडल और विद्यार्थी के किए हुये काम का संभाल कर रखने के लिये कमरे में आलमारियां होनी चाहियें । कुछ अलमारियों में शीशे लगे होने चाहियें ताकि पूरे काम के नमूने उनमें सजाए जा सकें । चित्रों को दीवारों पर लटकाया जा सकता है ।

दस्तकारी के कमरे में एक नल और एक हौज होना चाहिए । बर्तनों के रखने के लिए एक शैल्फ भी हो जाए तो बहुत अच्छा है । नलके का होना इस लिए जरूरी है ताकि विद्यार्थी माडल बनाने से पहले और ड्राइंग का काम आरंभ करने से पहले अपने हाथों को धो लें ।

बैंच बड़े मज़बूत बने होने चाहिएं । दोहरा बैंच ५'—६" लंबा और ३'—६" चौड़ा होना चाहिए । ऊंचाई का जहाँ तक सम्बन्ध है २'—४" से ले कर २'—७" तक जरूरत अनुसार रखी जा सकती है ।

यदि हों सके तो उनमें खाने बने होने चाहियें ताकि विद्यार्थी उन में अपने बनाये हुए चित्र या अधूरे काम को संभाल कर रख सके।

टूल रैकों का होना भी अति आवश्यक है क्योंकि इस प्रकार विद्यार्थी टूलों तक जल्दी पहुंच जायेंगे। अध्यापक भी इस तरह देखभाल बड़े अच्छे ढंग से कर सकेगा। टूलों (Tools) का भी एक दम पता लग जाएगा। इस प्रकार समय की बचत के साथ २ किसी प्रकार की गड़बड़ी भी नहीं होगी। टूल रैंक इतने बड़ें होने चाहिए कि उन में चार विद्यार्थियों के टूल आसानी से आ सकें।

दस्तकारी के कमरे में कई अलमाँरियां होनी चाचिए। हर एक अलमारी को शीशे लगे होने चाहिएं ताकि पूरे किए हुए काम के नमूने दिखाए जा सकें। हर एक अलमारी इस प्रकार की बनी होनी चाहिए जिसमें विशेष हथ्यार संभाल कर रखे जा सकें।

चित्र बनाने वाले डैस्कों के ढकने कबज़े वाले होने चाहिएं ताकि उन में चित्र बनाने वाले बोर्ड, टी (T) और सैट-स्कवायर (Set Square) रखे जा सकें। डैस्क दो फुट दस इंच ऊंचे होने चाहिएं और ऊपर के भाग की ढलान होनी चाहिए।

हर दस्तकारी के कमरे में कुछ मरहम पट्टी का प्रबंध (First-Aid-Outfit) भी होना चाहिए। इस में रूई, ऊन, पट्टियां, टिंकचर आयोडीन मैथिलेटिड स्पिर्ट, कारबालक तेल की बोतल होनी चाहिए, ताकि किसी दुर्घटना के समय की जलदी ही ज़रूरी मरहम पट्टी की जा सके।

पुस्तकालय

आज के विद्वानों का मत है कि बच्चों को पूरी २ शिक्षा दी

जाए और स्कूल में नियुक्त पुस्तकों के अतिरिक्त उन्हें और भी बहुत सी पुस्तकें पढ़ने को देनी चाहिएं। स्कूल की इस आवश्यकता को पुस्तकालय पूरा करता है। पर साधारणतः देखा जाता है कि हमारे पुस्तकालय न तो वास्तव में वह हैं जो उन्हें होना चाहिए और न ही हम उनका ठीक और पूरा पूरा प्रयोग करते हैं। यदि मुख्याध्यापक इस को वास्तव में बालोपयोगी बनाना चाहता है तो वह इस को इतना सुंदर और चित्ताकर्षक बनावे जितना वह बना सकता है। हर आयु के बच्चे पुस्तकालय की ओर जबरदस्ती धकेले न जाएं अपितु स्वयं ही उसके आकर्षण से खिंचे चले जाएं। शिक्षाप्रद होने से अधिक एक पुस्तकालय का आकर्षक और मनोरम होना अतिआवश्यक है। शिक्षा आदि चीज़ें तो उसे क्लास में भी मिल जाती हैं—उसे कल्पना, विचार और चरित्र निर्माण के लिए कुछ पुस्तकालय से खोज लेने देना चाहिए। पुस्तकालय में उसे कुछ ऐसी चीज मिलने का विश्वास होना चाहिए जिससे कि वह बिना पुस्तकालय का अध्ययन किए बिना रह न सके। स्कूल के पुस्तकालय में हर आयु के बच्चे के लिए हर प्रकार की अच्छी पुस्तकें होनी चाहिए। क्लास में पढ़े हर विषय पर अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए बच्चों को पुस्तकें पुस्तकालय से मिल जानी चाहिएं।

पुस्तकालय की पुस्तकें केवल अक्षरों के क्रम से ही नहीं रखी जानी चाहिएं अपितु पुस्तकों का सूचिपत्र इस तरह तय्यार किया जाना चाहिए कि पुस्तकें पढ़ने वालों को बुलाभेजा जाय और आने वालों को उन के जी पसंद का मसाला भी दिया जा सके। वही पुस्तकालय अच्छा कहा जा सकता है जिसमें दूसरों को स्वाध्याय करने की प्रेरणाशक्ति हो। पुस्तकालय केवल आकार से ही बड़े नहीं कहे जा सकते अपितु यह प्रेरणा शक्ति ही है जो उसे छोटा और बड़ा

बनाती है । पुस्तकों के शौकीन पुस्तकालय बनाते हैं–यह बात ठीक हैं । पर यह बात भी गलत नहीं है कि पुस्तकालय भी स्वाध्याय करने वाले व्यक्तियों को पैदा करते हैं । इस लिए यह अत्यन्त उत्तम रहेगा यदि इसे स्कूल के स्तर के अनुसार ही निमित किया जाएगा ।

पुस्तकें केवल घर पर पढ़ने के लिये नहीं देनीं चाहियें अपितु पुस्तकालय में भी पढ़ने का प्रबन्ध होना चाहिये ताकि पुस्तकालय में जाना मन बहलावे का कारण बन सके ।

पुस्तकालय के लिये पुस्तकों का चुनाव अध्यापकों की सम्मति से करना चाहिये—स्कूल में पढ़ाये जा रहे सब विषयों पर पूरा २ ध्यान देना चाहिये । कुछ अच्छी पुस्तकों की कई कापियां पुस्तकालय में होनी चाहियें ताकि विद्यार्थि एक साथ पढ़ कर फिर उस पर विचार कर सकें। विद्यार्थी विभाग में कोई ऐसी पुस्तक नहीं रखनी चाहिये जो अध्यापक मे स्वयं पढ़ी न हो या उसकी किसी भी ऐजूकेशनल कमेटी (शिक्षा समिती) ने सिफारिश न की हो ।

जहाँ तक हो सके बच्चों के लिये पुस्तकें छोटे आकार की, दरमयानी लंबाई की, सुन्दर २ चित्रों से भरी हुई और सुन्दर और मज़बूत जिल्द में बंधी होनी चाहियें । अध्यापकों के सैकशन में स्टैंडर्ड और हवाले लेने वाली; सरकारी रिपोर्ट और शिक्षा सम्बन्धित पुस्तकें ही होनी चाहियें । एक बात ध्यान देने योग्य है कि सारे फंड अध्यापकों के लिए पुस्तकें खरीदने में ही नहीं खर्च कर देते चाहिये और न ही एक विषय की पुस्तकों पर अधिक व्यय कर देना चाहिये ।

पुस्तकालय के लिये पुस्तकें किसी क्रम अनुसार होनी चाहिये और क्रम अलमारी की एक ओर लेबल लगा कर दिखाया जा सकता हैं । क्रम से पुस्तकें रखने का उदेश्य यह होता है कि विद्यार्थियों को पुस्तकों के चुनाव में कोई कठिनाई न हो ।

पुस्तकालय के लिये स्थान ऐसा होना चाहिये जहां विद्यार्थी बड़ी आसानी से पहुंच सकें।

पुस्तकालय को सर्वप्रिय बनाने का हर प्रयत्न करना चाहिये। टैगोर–शैक्सपीयर, बरनार्डशा स्कूल में पढ़ाई गई पुस्तकों मात्र से बड़े नहीं बन गये–अपितु पुस्तकालय ने उन्हें महान बनाने में बड़ी सहायता की है। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि बच्चों में अन्य अच्छी पुस्तकें पढ़ने की जिज्ञासा नत्पन्न करे। पुस्तकालय के स्वाध्याय के लिये एक घंटा (period) होना चाहिये। पर यह एक यांत्रिक क्रम बन कर नहीं रह जाना चाहिये। वहां विद्यार्थी को पूरी २ स्वतंत्रता होनी चाहिये। स्कूल का पुस्तकालय स्कूल को प्रसिद्ध और बच्चों को बोधिक भोजन देने का साधन होना चाहिये।

खेल के मैदान
(play-Grounds)

स्कूल में खेल के मैदान का होना उतना ही आवश्यक है जितना श्रेणियों के लिये कमरों आदि का होना। खेलों के मैदान तो लोक-राज के पालने हैं। जिस स्कूल में खेलों का मैदान नहीं है उस स्कूल को उठा देना चाहिये। आज के युग में शिक्षा खेलों द्वारा दी जा रही है। आज कमरों–सीटों और डैस्कों से कहीं अधिक महत्ता खेलों आदि को दी जाती है। इस लिए खुले स्थान बग़ीचे खेल के मैदान और छाया देने वाले वृक्षों का स्कूल में होना अतिआवश्यक है।

फ़र्नीचर
(Furniture)

विद्यार्थी की शारीरिक, नैतिक और मानसिक भलाई के लिये

फर्नीचर का अच्छा होना जरूरी है। स्कूल की हर एक चीज़ का बच्चे के अस्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, इस लिये स्कूल का यह पूरा पूरा प्रयत्न होना चाहिये कि बच्चे पर हर चीज़ का प्रभाव अच्छा पड़े। एक अच्छा करीगर तभी अच्छा काम कर सकेगा यदि हम उसे अच्छे औज़ार देंगे। इस बात में कोई संदेह नहीं कि थोड़े फ़र्नीचर के साथ अच्छा और अधिक फ़र्नीचर के साथ बुरा भी पढ़ाया जा सकता है। अगर अधिक और बढ़िया फ़र्नीचर एक योग्य अध्यापक को सौंपा जाए तो उस का प्रभाव अपेक्षित अच्छा रहेगा।

स्कूल को अच्छे ढंग से चलाने के लिये आवश्यक फ़र्नीचर का होना बहुत ज़रूरी हैं। सीटों का अनुचित फ़र्नीचर कई बार शरीरिक बेढ़ब्बापन और कुरूपता पैदा कर देता है और यह विद्यार्थी के स्वास्थ का सत्यानाश कर के रख देता है। डैस्कों का खराब होना या उनकी जगह बैंचों का प्रयोग करना भी बच्चों के स्वास्थ पर बहुत प्रभाव डालता है। बैंचों के प्रयोग से रीढ़ की हड्डी का झुकना, छाती का सुकड़ना, कंधों का गोल होना, कुबड़ा हो जाना आदि ऐसे ही कई रोग लाग जाने का भय लगा रहता है। इस के बाद शरीर को आराम से न रखने के कारण कई मानसिक नुक्स भी पड़ सकते हैं। सीटों का अच्छा होना स्कूल की आवश्यकताओं में से एक है। किसी कमरे में सीटें लगवाते समय कई बातों का ध्यान रखना चाहिये। स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँ प्रकाश पहुंच सके, जहां बड़ी सुविधा से पहुंचा जा सके और आवश्यकता पड़ने पर उसे अपनी इच्छा अनुसार इस्तेमाल भी किया जा सके। सीटें इस प्रकार बनाई होनी चाहियें कि विद्यार्थी को उसमें बैठने और उठने में कोई कठिनाई न उठानी पड़े। अध्यापक का मेज एक ऊंचे मंच पर होना चाहिये।

जहाँ पैसा और स्थान काफ़ी हो वहाँ हर विद्यार्थी के लिए अलग अलग डैस्क होना चाहिये। उसमें विद्यार्थी बड़ी आसानी से बैठ सके। सीट के पीछे पीठ के सहारे के लिये ढाडस (Backs) होनी चाहियें। सीटें दीवार की खिड़की के दायं ओर रखी होनी चाहिएँ। सीटें विद्यार्थी के क़द और आयु के अनुसार होनी चाहिये! हर विद्यार्थी के लिए कम से कम १८" जगह बैठने के लिये होनी चाहिये। कमरे में डैस्कों की छः से अधिक पंक्तियाँ नहीं होनी चाहिये और हर पंक्ति के बीच थोड़ा सा फ़ासला होना चाहिये ताकि अध्यापक बड़ी आसानी से उसमें से गुज़र सके। डैस्क के ऊपर के भाग नीचे की ओर १५° कोन की ढलवान लिये हुए हों।

डैस्क के ऊपर के भाग का भीतरी किनारा सीट के भीतरी किनारे से सीधा खड़ा होना चाहिये।

एक आदर्श डैस्क
(An Ideal Desk)

स्कूल में आदर्श डैस्क वही हो सकता है जो ज़्यादा से ज़्यादा विद्यार्थी को आराम पहुंचा सके और स्कूल का काम भी अच्छी तरह हो सकें। यह बहुत भारी नहीं होना चाहिये ताकि कमरे को साफ़ करते समय इसे उठाने में कोई असुविधा न हो।

इस आदर्श डैस्क की ऊंचाई इतनी होनी चाहिये कि बैठते समय टाँगों का ऊपरी भाग सीधा रखा जा सके और टाँगों का निचला भाग फ़र्श या पाँव रखने के स्थान पर ठीक तरह से रखा जा सके। सीट से लिखने वाले स्थान की उंचाई इतनी होनी चाहिए कि लिखने के समय विद्यार्थी आसानी से बैठ और लिख सके। सीट इस प्रकार की होनी चाहिये कि विद्यार्थी को उठते या बैठते समय किसी प्रकार

की कोई असुविधा न हो। सीटों के दोनों और बाज़ू (Arms) होने चाहिये ताकि यदि आवश्यकता हो तो विद्यार्थी उस में पूरी तरह आराम कर सके। लिखने का भाग एक सीधा बोर्ड हो जो १५" का सीधा कोन बनाए। सीट से संबधित लिखने वाले बोर्ड की तीन हालतें हो सकती हैं—जमा हालत (Plus Position), नफ़ी हालत (Minus Position) और जीरो हालत (Zero Pasition) जमां की हालत में डैस्क और सीट के बीच कुछ फ़ासला होना चाहिये—ज़ीरो की हालत में दोनों एक ही लाईन में होते हैं और नफ़ी की हालत में सीट का किनारा लिखने वाले बोर्ड के किनारे के नीचे होता है। डैस्क को इन तीनों हालतों के अनुसार करने के लिए यह आवश्यक है कि डैस्क का ऊपरी भाग दिलाया जा सके।

बलैक बोर्ड
(Black-Board)

श्रेणियों के कमरों के ज़रूरी सामानों में बलैक बोर्ड एक आवश्यक चीज़ है, और योग्य आध्यापक के लिए सब से अधिकोपयोगी हथ्यार है। जो अध्यापक बलैक बोर्ड का प्रयोग नहीं करता वह अध्यापक कहे जाने योग्य नहीं है। बलैक बोर्ड कई प्रकार के हो सकते हैं। दीवार को काला कर के—रोल करने वाले बलैक-बोर्ड, लकड़ी के फ्रेम वाले बलैक बोर्ड आदि कई प्रकार के बलैक बोर्ड प्रयोग में लाए जाते हैं। इन सब में से वह बलैक बोर्ड जो स्टैंड (Stand) पर खड़ा किया जा सकता है अच्छा रहता है। क्योंकि इसे कलासज़ में कहीं भी रखा जा सकता है और आवश्यकता अनुसार इसे ऊंचा नीचा भी किया जा सकता है। ज़रूरत पड़ने पर सामने का भाग उलटा कर छिपाया भी जा सकता है क्योंकि ऐसे बलैक बोर्ड के दोनों भाग प्रयोग में लाए जा सकते हैं।

बल्कि बोर्ड चमकदार नहीं होना चाहिये क्योंकि चमक आँखों को चुंधिया देगी और इससे विद्यार्थी की नेत्र-ज्योति पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

क्योंकि विद्यार्थी ने दिन के छः घण्टे स्कूल में गुज़ारते होते हैं, इस लिये कमरों और फ़र्नीचर को जितना साफ़ रखा जा सकें रखना चाहिये। स्कूल की दीवारों पर स्याही के धब्बों का होना बड़ा गंदा लगता है। सफ़ाई का होना सकूल और घर पर ही नहीं अपितु हर जगह होना अत्यंत आवश्यक है। कभी कभी विद्यार्थियों को भी कमरों की सफाई के लिए लगाया जा सकता है। इस तरह वह एक स्वच्छ सुन्दर और मनोरम स्कूल पर गर्व कर सकेंगे।

१. अनुशासन का उद्देश्य

अनुशासन का अर्थ है किसी को शिष्य बनाना। इस प्रकार जो व्यक्ति अनुशासन में होगा, वह कुछ सीख रहा होगा। पर क्या सीख रहा होगा ? इस बारे में विद्वान एक मत नहीं हैं। यदि हम मिलटरी अथवा एक राज्य के अनुशासन को लें, तो वहां बिना किसी प्रश्नोत्तर के आज्ञा-पालन करना ही सीखा जा रहा होगा, क्योंकि वहां न तो किसी प्रकार के तर्क के लिए अवकाश होता है और न ही किसी प्रकार का जवाब देना होता है। परन्तु याद रखना चाहिए कि इस प्रकार का कठिन और औपचारिक अनुशासन तो किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक मार्ग होता है। हमारा उद्देश्य बालक का नैतिक विकास करना होता है, ताकि वह समाज का एक सुन्दर अंग बन सके। सो अनुशासन के दो उद्देश्य होते हैं—बालक का विकास करना, और उसके द्वारा समाज का कल्याण करना। स्कूल, उनके सलेबस, टाईमटेबल आदि की तरह किसी उद्देश्य को प्राप्त करने का यह अनुशासन भी एक मार्ग होता है। जिस प्रकार फ़ौज, नेवी अथवा राज्य के लिए

अनुशासन का होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार एक स्कूल के लिए भी अनुशासन का होना अतीव आवश्यक है । बच्चों को शिक्षित करने और कुछ सिखाने के लिए यह आवश्यक है कि वे किसी व्यवस्था, नियम, क्रम अथवा अनुशासन में हों। सो अनुशासन का उद्देश्य ज्ञान के लिए बच्चों की सहायता करना है, ताकि उसका, उसके साथियों का और समस्त समाज का कल्याण हो सके।

२. अनुशासन के सिद्धांत

अनुशासन को यदि रचनात्मक और समाज के कल्याण के लिए होना है, तो उसे निषेधात्मक न हो कर सच्चा, सीधा और वास्तविक होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि सच्चा अनुशासन होना चाहिए तो इस का अर्थ यह है कि स्वशासन होना चाहिए। अध्यापक श्रेणी का सर्वेसर्वा है, परन्तु उसे अपने सारे अधिकार विद्यार्थियों की उन्नति के लिए ही प्रयोग में लाने चाहिए। डब्ल्यू. एम. रायबर्न के शब्दों में —'सच्चा अनुशासन सदैव सीधा एवं रचनात्मक होना चाहिए, निषेधात्मक, झूठा एवं भयात्मक नहीं होना चाहिए। उसे निश्चय ही रचनात्मक होना चाहिए, कुछ मिटाने के स्थान पर कुछ बनाने वाला होना चाहिए। कामनाओं एवं भावनाओं पर नियंत्रण रखने का प्रयोजन चरित्र-निर्माण होता है, और चरित्र-निर्माण एक रचनात्मक कार्य है। इसलिए प्रतिबन्ध और दबाव आवश्यक नहीं हैं, बल्कि अपने आप को व्यक्त करना ही आवश्यक है, इसलिए समझदारी के साथ नियंत्रण करना ही वास्तविक अनुशासन है। रोब और दबाव डालने वाली प्रणाली का प्रयोग न करते हुए, सूझ-बूझ के साथ अनुशासन स्थापित करना चाहिए।

(१) डंडे के ज़ोर से अनुशासन स्थापित करना एक ग़लत

ढंग है। क्योंकि सजा बेशक एक चीज़ को कुछ समय के लिये रोक लेती हैं, परन्तु किसी नवीन वस्तु के निर्माण में सहायक सिद्ध नहीं होती। एक बुरी आदत को रोकने के लिए चाहे इसे प्रयोग में ले आया जावे, परन्तु एक अच्छी आदत डालने के लिए यह बिल्कुल सहायता नहीं पहुंचा सकती। एक बालक को दण्ड दे कर हम उसे झूठ बोलने से रोक सकते हैं परन्तु उसके मन में दण्ड के द्वारा सच्च के प्रति प्यार नहीं पैदा किया जा सकता। अतएव हम कभी अपने आप को ऐसे धोखे में नहीं रखना चाहिए कि हम एक बालक को दण्ड दे कर उसे अनुशासन में ला रहे हैं। हम केवल वास्तविक कार्य के लिए धरती तैयार कर रहे होते हैं। दण्ड के साथ-साथ कुछ सच्चे और रचनात्मक ढंगों का प्रयोग भी वाँछित है।

(२) वास्तविक अनुशासन की नींव भय के बजाए प्यार होनी चाहिए। बालक के ऊपर सदैव 'यह नहीं करना' 'यह नहीं करना चाहिए' आदि की बौछार ही नहीं लगाते रहना चाहिए।

(३) अनुशासन के लिये विद्यार्थियों का पारस्परिक-मिलन प्राप्त करना भी अति आवश्यक है। अनुशासन में स्वशासन का जितना अधिक हाथ होगा, और इसकी आवश्यकता के लाभ विद्यार्थियों ने जितने अधिक अनुभव किये होंगे, उतना ही हम अपने उद्देश्य के निकट पहुंच जावेंगे। आज के विद्वानों का विचार है कि सच्चा अनुशासन स्थापित करने के लिए बालकों की हकूमत (Self-Government) चालू की जाए।

(४) बालक, आम तौर से, संरक्षण चाहता है। सो इसके लिये हमें ध्यान रखना चाहिए कि उसे कक्षा में और कक्षा के बाहर संरक्षण मिले। यदि बालक हमेशा एक भय से ग्रस्त है तो उसके व्यक्तित्व पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। बच्चा सुधार की आवश्यकता

अनुभव करता है, वह न्याय चाहता है, वह यह अनुभव करना चाहता है कि जो व्यक्ति उसकी सहायता करते हैं, वह उन पर निर्भर रह सकता है।

सो हमें इस प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता है जिससे हमें यह चीज़ें प्राप्त हों और जो इन शर्तों को पूरा करे।

३. अनुशासन स्थापन के साधन

अनुशाशन स्थापित करने के लिए दो प्रकार के साधन प्रयोग में लाए जा सकते हैं। निषेधात्मक (Negative) तथा सच्चे तथा सीधे (Positive)। पहले हम निषेधात्मक ढंग के बारे में विचार करेगें जो आज तक प्रयोग में लाया जाता रहा है।

दण्ड देने का उद्देश्य साधारणतया यह होता है कि किसी कटु अनुभव के साथ-साथ सम्बन्धित होने के कारण, एक बार की हुई गलती को बालक फिर नहीं करेगा।

अपराध कई प्रकार के हो सकते हैं, इसी प्रकार दण्ड भी कई प्रकार के हो सकते हैं। हम पहले दण्ड के प्रयोजन के बारे में विचार करेंगे।

दण्ड के प्रयोजन

(Purposes of Punishment)

(अ) नुक़सान पहुंचाना (Offensive)—अध्यापकों का यह विचार है कि यदि एक बालक शरारत करता है अथवा किसी के काम में दखल देता है, तो उसे इस प्रकार सजा दी जानी चाहिए कि वह यह अनुभव कर सके कि नियम और क़ानून तोड़े नहीं जा सकते। परन्तु यहां यह ख्याल रखना चाहिए कि दण्ड अपराध से अधिक न

हो। यदि यह बुरा प्रभाव डालता है, तो इस प्रकार के दण्ड को ठीक नहीं कहा जा सकता।

(आ) आदर्श—स्थापना (Exemplary) इस प्रकार का दण्ड सारी श्रेणी को बुरे काम से रोकने के लिए अपराध करने वाले को दिया जाता है। एक लेखक लिखता है कि स्कूल की सजा का प्रयोजन बदला लेना नहीं, बल्कि इसका वास्तविक प्रजोजन तो बालकों को शिक्षित करना होता है, पहले अपराध करने वाले को शिक्षित करना, फिर उसके आदर्श द्वारा बाकी के बालकों को। इसका वास्तविक प्रयोजन उसको तथा बाकियों को दोबारा ग़लती करने से रोकना होता है। अध्यापक सारी कक्षा को सीधे रास्ते पर लाने के लिये, दण्ड द्वारा बाकियों के संमुख आदर्श उपस्थित किया करता है।

नित्य के अपराध—देर से स्कूल आना, आज्ञा न मानना आदि को दूर करने के लिये इस प्रकार की सजा दी जा सकती है—इस बारे में तो सब एकमत हैं और इसे उचित ही मानते हैं। इसका अच्छा प्रभाव पड़ सकता है, और बाकियों के साथ साथ 'सुरेन्द्र' को सचेत किया जाये, तो वह इसे अनुचित नहीं अनुभव करेगा। यदि बाकियों के लिये आदर्श स्थापित करने के लिये केवल उसे ही चुन लिया गया है, तो उस पर तथा बाकियों पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। यहां एक बात और स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि इस प्रकार का दण्ड गलती करने से तो रोक सकता है, परन्तु अच्छी आदतों का भाव मन में नहीं पैदा कर सकता।

प्रतिशोधात्मक—(Vindictory) गलती का बदला लेने के लिये भी दण्ड दिया जा सकता है। 'बदले का बदला' वाले सिद्धांत का अनुसरण किया जाता है। परन्तु स्कूलों में इस प्रकार का दण्ड

बिलकुल नहीं होना चाहिये।

सुधारात्मक—(Reformatory—कई बार सुधार करने के लिए भी सजा दी जा सकती है। अपराधी के भावुक प्रभाह और उसके दिल को बदलने के लिए, उसके व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है। गलती को फिर दुहराने से रोका जाता है। यहां पर यह ख्याल रखना चाहिए कि दण्ड अपराध एवं अपराधी के अनुकूल होना चाहिए, नहीं तो दण्ड का वास्तविक प्रयोजन ही निष्फल सिद्ध होगा।

४. दण्ड-सिद्धांत

(Principles of Punishment)

यदि दण्ड किसी न किसी रूप में देना आवश्यक ही है, तो दण्ड देते समय कई बातों का ख्याल रखना चाहिए।

(अ) दण्ड अपराध और अपराधी दोनों के ही अनुकूल होना चाहिए। जो दण्ड 'सुरेन्द्र' के लिए ठीक साबित हुआ था, वही 'महेन्द्र' के लिये उपयुक्त नहीं होता। सो एक ही प्रकार का दण्ड सबके लिए ठीक नहीं।

(आ) दण्ड देने में किसी प्रकार का अविश्वास नहीं होना चाहिए और न ही दण्ड देने के विचार को अगले दिन पर छोड़ देना चाहिए। यदि दण्ड देने का विचार कर ही लिया गया है तो उसे एकदम कार्यान्वित कर देना चाहिए, और बच्चों को भी यह पता होना चाहिए कि किसी विशेष अपराध के लिए विशेष प्रकार का दण्ठ अवश्य मिलेगा।

(इ) दण्ड देने का उद्देश्य तब ही पूर्ण हुआ समझना चाहिए

जव अपराधी अपनी गलती को जान जाता है, उसे अनुभव करता है,

अपनी गलती के लिए उसे लज्जा अनुभव होती है और जब वह यह इरादा करता है कि यह गलती वह फिर दुबारा नहीं करेगा। जब अपराधी यह अनुभव करने लग जाता है कि वह अपने किए के लिए दण्ड का अधिकारी है, तब दण्ड उसके लिए अनावश्यक होता जाता है।

(ई) दण्ड जितना कम से कम हो, उतना देना चाहिए। आवश्यकता से अधिक दण्ड दिए जाने पर बच्चे बिल्कुल लापरवाह हो जाते हैं। यदि दण्ड कभी-कभी दिया जाए तो उसका प्रभाव चिर-स्थायी होता है।

५. दण्ड के रूप

(Forms of Punishment)

१. भर्त्सना, व्यंग्य एवं दोष लगाना

(Reproof, Sarcasm, blame)

वाणी अध्यापक के पास एक बहुत बड़ा अस्त्र है, और इसका प्रयोग हल्की सी फटकार से लेकर अपशब्दों तक के लिए किया जा सकता है। अध्यापक को इन अपशब्दों का प्रयोग जितना कम हो सके उतना करना चाहिए, क्योंकि अगर इनका प्रयोग आवश्यकता से अधिक किया जाएगा, तो विद्यार्थी यह समझने लग जाते हैं कि अध्यापक तो हर समय बुड़बुड़ ही करता रहता है। इस प्रकार कुछ बालक तो उसके 'बुड़ बुड़' की परवाह नहीं करेंगे इस प्रकार कुछ हीनता की भावना से पूर्ण रूप से ग्रस्त हो जायेंगे। जब भर्त्सना आदि की वास्तविक आवश्यकता होगी, तो अध्यापक यह अनुभव करेगा कि बालक उसकी भर्त्सना, फटकर आदि की कुछ परवाह ही नहीं करता है। इसके

अतिरिक्त यह [illegible] विद्यार्थी के [illegible] को तोड़ते हैं। बालकों के स्वाभिमान को ठेस लगती है, वे अध्यापक को प्यार की दृष्टि से नहीं देख सकेंगे। स्कूल में व्यंग्य और अपशब्दों के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

२. स्कूल समय के पश्चात रोक लेना (Detention)

इस प्रकार का दण्ड साधारणतया देर से आने वाले छात्रों अथवा शरारत करने वालों को दिया जाता है। परन्तु इस प्रकार का दण्ड बड़े ध्यान-पूर्वक देना चाहिए, ऐसा न हो कि विद्यार्थी स्कूल के साथ अरुचिकर स्मृतियों को सम्बन्धित कर लें, और उस समय किया हुआ काम उसके लिए 'हऊआ' बन जाए। स्कूल समय के पश्चात् रोक लेना दण्ड के रूप में उसी समय लाभप्रद हो सकता है, जबकि विद्यार्थी को खेल तथा अन्य दिलचस्प कामों में अपने साथियों के साथ न शामल होने दिया जाए, और एकांत में उसे अपने दोष पर विचार करने दिया जाये। इस प्रकार बेकार रहना विद्यार्थी को बेहतर बना सकता है।

३. स्कूल से बहिष्कार (Expulsion)—

कुछ अध्यापक, जो कि विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड देने के हक में नहीं हैं, विद्यार्थियों को स्कूल से निकाल देना पसन्द करते हैं। कई विशेष परिस्थितियों को छोड़ कर इस प्रकार का दण्ड देना, अपने उत्तरदायित्व से मुंह मोड़ लेने के समान है, अपनी कमज़ोरियों के प्रति स्पष्ट स्वीकृति है, अपराधी विद्यार्थी की जीत का ऐलान करना है, और स्कूल के शिक्षा प्रदान करने के कार्य में असफलता को स्वीकार करना है। स्कूल से निकालना, निकाले जाने वाले विद्यार्थी की भलाई के लिए होना चाहिए, इसलिए इस प्रकार का दण्ड उसी समय देना चाहिए जब कि शेष सभी ढंग असफल सिद्ध हो चुके हों, और

उस विद्यार्थी विशेष की उपस्थिति स्कूल के नैतिक कल्याण के लिए हानिकारक हो।

४. विशेष अधिकारों से वंचित करना

(Deprivation of a privilege)—इस प्रकार का दण्ड लाभप्रद हो सकता है। स्थान का छीन लिया जाना, स्कूल के खेलने के मैदान में खेलने न देना—आदि दोषी को सुधारने के लिए फलप्रद साबित हो सकते हैं।

(५) कई बार नैतिक दण्ड, जैसे कि क्षमा-याचना करवानी ऊंचे स्थान से गिराना आदि भी दिया जाता है। इस प्रकार के दण्ड बड़े सोच-विचार के बाद देने चाहिएं ताकि छात्र के स्वाभिमान को धक्का न पहुंचे।

(६) कई बार जब कि विद्यार्थी घर से काम करके न लाए, तो उसे कुछ पंक्तियाँ, सजा के तौर पर लिखने को दी जाती हैं, परन्तु इस प्रकार का दण्ड कोई विशेष लाभ नहीं पहुंचाता, बल्कि उसके लेख को ही गंदा कर देता है।

७. शारीरिक दण्ड (Corporal-Punishment)

नवीन युग की परिवर्तित आवश्यकताओं के साथ आज यह अनुभव किया जा रहा है कि स्कूल में शारीरिक दण्ड के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। आज के विद्वानों का विचार है कि इस प्रकार का दंड अमानुषिक एवं कठोर है। जिसे यह दंड दिया जाता है उस पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है, और जो इस प्रकार का दंड देता है उसका स्वभाव वहशी हो जाता है तथा दण्ड देने और लेने वाले को नीच बनाता है। अनुशासन स्थापित करने का यह एक भद्दा ढंग है। मुंह पर थप्पड़ मारना, डंडे से मारना, अंगुलियों के मध्य पेंसिल रख के दबाना आदि दण्ड ऐसे हैं जो कि बहुत बुरे हैं।

यह कहा जाता है कि जब किसी काम में विद्यार्थी की दिलचस्पी हो विद्यार्थी तथा अध्यापक के अच्छे सम्बन्ध हों तब इस प्रकार का दंड बिल्कुल अनावश्यक है।

शारीरिक दंड नफ़रत से उत्पन्न होता है और वह नफ़रत ही उपजाता है। एक ताक़त तथा रौब के नशे में जब हर अध्यापक यह दण्ड देता है तो वह दोष के कारण को सहानुभूतिपूर्वक देखने का प्रयत्न नहीं करता। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी बाह्य रूप से शायद आज्ञा-पालन करे, परन्तु उसके आन्तरिक मन में विद्रोह के भाव पल रहे होंगे। इसके अतिरिक्त दण्ड देने की सफलता, जैसे कि पहिले भी कहा जा चुका हैं, यह हैं कि वह न केवल दोष के अनुसार हो बल्कि दोषी के अनुकूल भी होनी चाहिए। परन्तु जब एक पाग़ल अध्यापक यह दण्ड देता है तब वह इसका ध्यान नहीं रखता है। वह दोषियों को ठीक करने के स्थान पर कई बार और अधिक दोष के लिए प्रेरित कर देता है।

इस प्रकार का दण्ड घृणा उत्पन्न करता है और यह घृणा कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक और शारीरिक कष्टों को उत्पन्न कर देती है। बालक अपनी परिस्थितियों के अनुसार विकास नहीं कर सकेगा, वह झगड़ालू और लड़ाका बनेगा, समाज के विरुद्ध कई काम करेगा। वह अभागा बालक जिसे मारपीट ही पड़ती रही हो वह विद्या प्राप्त नहीं कर सकेगा क्योंकि शारीरिक दण्ड अपने आप मानसिक विकास के लिए प्रेरक सिद्ध नहीं हो सकता।

जो विषय विद्यार्थी को डंडे के ज़ोर से एक सख्त अध्यापक पढ़ाएगा वह उसे भली प्रकार याद तो क्या करेगा, बल्कि उस विषय के प्रति विद्यार्थी के मन में नफ़रत पैदा हो जाएगी। विद्यार्थी कभी भी विवेकी नहीं बन सकेगा; विद्या का उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा।

दंड वह ही अच्छा कहा जा सकता है, जो कि दंड दिये जाने वाले की रज़ामंदी के साथ दिया जाए। अडमज का विचार है—'शारीरिक दण्ड दोषी की मर्ज़ी के साथ ही दिया जा सकता है। जब तक उसकी मर्ज़ी न हो, तब तक वह एक लड़ाई है।'

शारीरिक रूप से भी इस दण्ड को अच्छा नहीं कहा जा सकता। बदहज़मी, सिर दुखना, खून का दबाव (Blo d Pressure) आदि कई प्रकार की बिमारियों का शिकार विद्यार्थी बन जाते हैं।

इसके अतिरिक्त जैसे कि पहले भी बताया जा चुका है कि स्कूल में दिये जाने वाले दंड का उद्देश्य बदला लेना नहीं है। इसका वास्तविक उद्देश्य तो शिक्षित करना है, ग़लती करने वाले को कुछ सिखाना है, और उसके उदाहरण द्वारा बाक़ियों को सिखाना। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि वह शारीरिक दंड उदाहरण प्रस्तुत करने का काम तो शायद कर सके, परन्तु ग़लती करने वाले को कुछ नहीं सिखा सकेगा। सो ऐसा दण्ड जो शिक्षित नहीं करता, वह लाभप्रद नहीं, और क्योंकि लाभदायक नहीं इसलिए ग़लत है।

सो शारीरिक दंड एक अपराध है और इसे स्कूलों में बिल्कुल बंद कर देना चाहिए।

यहां तक हमने अनुशासन स्थापित करने के निशेधात्मक ढँगों पर विचार किया है। अब हम कुछ ऐसे नवीन, सीधे और सच्चे साधनों पर विचार करेंगे और देखेंगे कि किस प्रकार स्कूलों में अनुशासन बनाए रखने के लिए यह साधन लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं।

६. अनुशासन स्थापन के सच्चे ढंग

(Positive Measures to keep discipline)

१. प्रशंसा (Praise)

अध्यापक के पास वाणी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अस्त्र है। विद्यार्थी को परिश्रम के लिए प्रेरित कर सकती है। परन्तु यहाँ यह ख्याल रखना

चाहिए कि बहुत अधिक प्रशंसा भी उचित नहीं, क्योंकि सोने और हीरे-मोतियों की इस प्रशंसा का मूल्य भी उसी समय अधिक होता है, जब कि वह कम और कभी कभी मिलें। बहुतायत से यदि बालकों की प्रंशसा की जाए तो उन में से कुछ तो लापरवाह हो जायेगें, और कुछ अपने आप को बहुत बड़ा या योग्य व्यक्ति अनुभव करने लग जायेंगे।

२. पुरस्कार (Rewards)

पुरस्कार के विषय में अध्यापकों में बहुत बड़ा मतभेद है। कुछ अध्यापकों का विचार है कि पुरस्कार न केवल होने ही चाहिएँ, बल्कि इस के बिना तो गुज़ारा ही नहीं हो सकता। अच्छे प्रयत्न का अवश्य कुछ बदला मिलना चाहिए, ताकि विद्यार्थी अच्छे कामों के लिए, परिश्रम के लिऐ प्रेरित होता चले। कुछ विद्यार्थी अच्छे पुरस्कार नहीं प्राप्त कर सकेंगे और स्वाभाविक रूच से कुछ पुरस्कार से वंचित रह जायेगें। इसके विपरीत कुछ अध्यापकों का विचार है कि विद्या एक गंदी और नीच लड़ाई नहीं है बल्कि प्रफुल्लता प्रदान करने वाली एक प्रणाली है। सो इस के लिए इसका अपना ही पुरस्कार होता है, और विद्या ही में किसी प्रकार का मुकाबला होना चाहिए।

परन्तु पुरस्कार केवल मुकाबले के लिए नहीं होने चाहिएं। कई हालतों में पुरस्कार जहां कि पुरस्कार विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं, दिए जाने चाहिएं। पुरस्कार इस प्रकार के होने चाहिए कि वे विद्यार्थियों में उच्च भावों को जागृत करें। कम मूल्य के, संख्या में कम और जिन्हें प्राप्त करना कठिन हो—ऐसे पुरस्कार लाभ पहुंचा सकते हैं।

उपस्थिति के लिए, सुन्दर आचरण के लिए, पढ़ाई की उन्नति के लिए, और खेलों के लिए पुरस्कार दिए जा सकते हैं। प्रमाण-पत्र और

बैज (Badges) पुरस्कार के रूप में दिये जा सकते हैं। अलग अलग

विद्यार्थी को अलग अलग पुरस्कार देने के स्थान पर यदि ग्रुप-पुरस्कार या क्लास-पुरस्कार दिये जायें तो अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

३. खेल (Games)

जो अनुशासन खेलों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है उसे आत्म-अनुशासन कहा जाता है। खिलाड़ी अपनी इच्छा से ही खेल के नियमों को स्वीकार कर लेता है, खेल में विजय प्राप्त करने के लिये नियमों का पालन करता है और इस प्रकार वह अपने आप का किसी अनुशासन में रखता है। खेलों के द्वारा ही वह मेल–मिलाप का एक अमूल्य सबक सीख पाता है। अपने स्वार्थों को दूसरों के लिए बलिदान कर देता है। इस प्रकार वह समाज का एक सुन्दर स्वस्थ अंग बन सकता है।

४. विद्यार्थी का स्वशासन
(Students' Self-Government in Schools)

आजकल यह अनुभव किया जाने लगा है कि लोकतंत्र को भली प्रचार से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को आरम्भ से ही उत्तरदायित्व संभालना सिखाया जाए। केवल मात्र बने-बनाए नियमों को ही विद्यार्थियों पर ठोंसना ठीक नहीं, बल्कि नियम बनाने और उन्हें लागू करने के लिए, विद्यार्थियों के पूरे सहयोग की आवश्यकता है। स्कूलों की महती आवश्यकता इस बात के लिए भी है कि अच्छे नागरिकता के लिए वह पथप्रदर्शन करें। इसलिए स्कूलों में विद्यार्थियों के लिए विद्यार्थियों की ओर से ही शासन चलाने पर जोर दिया जा रहा है।

किस सीमा तक हमारे स्कूलों में विद्यार्थियों का शासन आरम्भ किया

जा सकता है—यह बात विचारणीय है। यह साधारणतया स्कूल के नैतिक स्तर और विद्यर्थियों ने किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है— इस बात पर निर्भर करेगा। एक दम से विद्यार्थियों का शासन स्थापित नहीं किया जा सकता। यदि हम चाहते हैं कि इस प्रकार की प्रणाली सफल हो, तो इस प्रणाली को धीरे धीरे कार्यान्वित करना होगा, और इसे पूरी तरह से स्थापित करने के लिए पांच-छ: साल लगें गें। छोटे-छोटे कामों से इसे आरम्भ करना होगा-जैसे कि नोटिस बोर्ड की देख भाल, पढ़ने वाले कमरे की देख भाल, स्कूल की चीजों की देख भाल, अध्यापकों के विवेकी पथ प्रदर्शन में विद्यार्थी काम करें। प्रधान प्रणाली और अन्य कामों के लिए समितियां बनाई जा सकती हैं। अध्यापक एक मित्र अथवा परामर्श-दाता हो। भर्त्सना या फटकार देने वाला एक सख्त शासक नही; विद्यार्थियों के बीच घुल-मिल कर रहने वाला हो, आँखों में मिट्टी डालने वाला नहीं, और नाहीं कई प्रकार के प्रतिबन्ध विद्यार्थियों पर लगाने चाहियें कि विद्यार्थियों का यह शासन मजाक बन कर ही रह जाए। डबल्यू. एस. रायबर्न लिखते हैं–'जब' उत्तरदायित्व दिया जाता है तो वह सचमुच दे ही दिया जाना चाहिए। कोई व्यर्थ बहाना नहीं होना चाहिए। यह एक तमाशा मात्र ही हो, तो विद्यार्थी बहुत देर तक इस जाल में फँसे नहीं रह सकेगें। सो यदि हम चाहते हैं कि विद्यार्थियों का शासन सफल हो और सुन्दर परिणाम दर्शाये, तो विद्यार्थियों को अधिक से अधिक सहायता करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

विद्यार्थियों द्वारा शासन के कई लाभ हो सकते हैं:—

(१) विद्यार्थी वास्तविक ढंग से नागरिकता की शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। वे समझ जायेगें कि किस प्रकार गलत चुनाव करने से कई प्रकार की हानियां हो सकती हैं। वे उत्तरदायित्व को संभालना सीख

जायेंगे, और एक सफल जीवन-यापन के लिए कई ज़रूरी सबक सीख सकेंगे।

(२) जब उत्तरदायित्व विद्यार्थियों के ऊपर आ पड़ेगा, तो विद्यार्थी स्कूल के अनुशासन अच्छा बनाने के लिए कई उपाय करेंगे, और फिर शरारतों के लिए अवकाश कम हो जाएगा।

(३) विद्यार्थियों में नेता बनने के तथा निर्णय करने के गुण आ जायेंगे। इस प्रकार के गुण अध्यापकों द्वारा प्रदान नहीं किये जा सकते बल्कि प्रयोगों द्वारा विकसित किये जा सकते हैं। पढ़ाने से केवल सैद्धांतिक योग्यता तो बढ़ जाती है, परन्तु सामाजिक आवश्यकताओं के संमुख ऐसे विद्यार्थी घबड़ा जाते हैं। जहां तक विद्यार्थियों, द्वारा शासन स्कूल के अनुशासन को बहुत नीचे ले नहीं जाता, वहां तक यह बहुत लाभदायक है।

(४) जब स्कूल का शासन विद्यार्थियों के हाथों में होगा, तो स्कूल की छोटी से छोटी बात भी उनकी आंखों से ओझल नहीं हो सकेगी। इस प्रकार असैंबली हाल और पढ़ने के हाल तथा खेलों के मैदान में एक बहुत बड़ा अनुशासन स्थापित हो सकेगा।

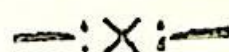
(५) अध्यापक और विद्यार्थियों के परस्पर सम्बन्ध बहुत अच्छे हो जायेंगे। अध्यापक को जासूस के कर्त्तव्यों से छुट्टी मिल जाएगी। और विद्यार्थी अध्यापक को एक मित्र अथवा एक नेक परामर्श-दाता समझ कर उस से प्रेम तथा उसका सम्मान करेंगे। जब अध्यापक व्यर्थ रोब डालने के भाव से मुक्त हो जाएगा, तो वह अपना समय विद्यार्थी के कल्याण के लिए भली प्रकार लगा सके गा।

(६) विद्यार्थी के मन में 'अपने स्कूल' के लिए भाव उत्पन्न होते हैं। वह अपने स्कूल को प्यार करने लग जाये गा। वह अपनी तथा

अपने आप की दलचस्पियों को सारे स्कूल के भले के लिए बलिदान करना सीखेगा। स्कूल के काम को सुचारू ढंग से चलाने के लिए वे एक दूसरे से मेल-मिलाप के साथ रहना सीख सकेगा।

(७) वे अनुशासन के लाभ को समझ जाते हैं। जब वे स्वयं नियम बनाते हैं, तो नियमों की आवश्यकताओं को वे अनुभव करने लग जाते हैं।

अनुशासन स्थापित करने का यह सबसे अच्छा ढंग है।



कांड ६

समय विभाग चक्र

Time Table

समय विभाग चक्र द्वारा विषयों, खेलों और श्रेणियों के अनुसार समय को विभिन्न भागों में विभक्त किया जाता है।

१. समय विभाग चक्र की आवश्यकता

स्कूल को भली प्रकार चलाने के लिए समय विभाग चक्र एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। जितनी सुदृढ़ता और योग्यता के साथ यह समय विभाग चक्र बनाया जायगा, उतने ही सुचारू रूप से वह स्कूल चलेगा। प्रबन्धकों के लिए इस को सोच विचार कर बनाना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि यह एक प्रकार से स्कूल का दर्पण ही होता है। स्कूल के आन्तरिक प्रबन्ध में से यह एक बहुत आश्यक विषय है, क्यों कि इसी के द्वारा अध्यापक का ध्यान एक समय में, एक विशेष विषय पर केन्द्रित रहता है। अध्यापक और विद्यार्थी एक व्यवस्था में बन्धे रहते हैं। और काम एक क्रम से, एक व्यवस्था से, और एक नियम से चलता रहता है। हर एक विषय को

उतना ही ध्यान दिया जाता है, जितना कि उसे मिलना चाहिए। और विद्यार्थियों को भी पता रहता है कि विशेष समय भीतर उन्हें कितना काम करना है। सारांश यह है कि स्कूल का समय विभाग चक्र तो स्कूल की दूसरी घड़ी है। इसके बिना अध्यापकों और विद्यार्थियों का गुजारा नहीं हो सकता।

२. समय-विभाग चक्र निर्माण सम्बन्धी सिद्धांत

समय विभाग चक्र बनाना कोई बच्चों का खेल नहीं। इसका बनाना कुछ कठिन सा काम है। स्कूल द्वारा प्रदत्त विद्या तथा उसके उद्देश्य, खेल तथा उसके प्रयोजन, तथा पढ़ाने के ढंग—इस प्रकार की कई बातें हैं, जिनको विचारना अति आवश्यक है। एक ही प्रकार का समय विभाग चक्र समस्त स्कूलों के लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। सो कोई विशेष नियम नहीं दिये जा सकते, फिर निम्न-लिखित सूचनाएं काफी सहायता कर सकती है—

१. समय की अवधि Amount of Time Available

समय विभाग चक्र बनाने के लिए सबसे पहले यह सोचना है कि हमारे पास समय कितना है। यह देखना चाहिये कि स्कूल साल में कितने महीने, और दिन में कितने घण्टे लगता है, क्योंकि इसी के अनुसार हर विषय को उतना समय दिया जा सकेगा जितनी उच्च श्रेणियों वाला स्कूल होगा, उतना ही अधिक वह लगे गा, और जितना छोटा स्कूल होगा, उतने ही कम घण्टे स्कूल लेगा।

२. विषयों का अपेक्षताया महत्त्व तथा कठिनता

(Relative importance and difficuity of Subjects)

हर विषय की महत्ता, उस की सरलता और कठिनता को ध्यान में रखना पड़ता है। कई विषय ऐसे हैं जिन्हें कठिन गिना जाता है, उनके लिए दिन का सब से अच्छा समय-सुबह के व्यायाम के बाद का समय रखना चाहिए। ऐसे विषय जिन पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता होती है, इन के लिए छुट्टी के बाद का समय सबसे उत्तम है। न केवल विषयों का ही ध्यान रखना चाहिए, बल्कि अध्यापक की विधियों और उद्देश्यों का भी ख्याल रखना चाहिये। किसी विषय विशेष की स्थानिक विशेषताओं का भी ख्याल रखना चाहिये। कई विषय शहरों के विद्यार्थियों के लिए ऐच्छिक हो सकने हैं, और वे ही विषय गांव के विद्यार्थियों के लिए वैकल्पिक हो सकते हैं अथवा इस से विपरीत।

३. थकान के विचार से

(Incidence of Fatigue)

समय विभाग चक्र बनाने के लिए थकान का विचार भी कर लेना चाहिए। जो विषय शुष्क हों उन के लिए घण्टियों की लम्बाई कम और जहां तीन-तीन विषय आ रहे हों उन की लम्बाई अधिक की जा सकती है। बालकों की आयु, उन का किसी विषय के लिए शौक, उन की शारीरिक अवस्था, साल का मौसम, हफ्ते का दिन, दिन का समय यह सब बातें ध्यान योग्य हैं। उनके अनुसार ही लम्बाई और अलग-अलग घण्टियों का एक दूसरे बाद स्थान रखा जा सकता है। ऐसे काम जिसमें लिखना और विचार करना पड़ता हो, शारीरिक काम खेलों के बाद कभी भी नहीं रखने चाहिए। सख्त के बाद नर्म और नर्म के बाद सख्त काम, शारीरिक के बाद मानसिक और मानसिक

शारीरिक, मन-बहलावे के बाद पढ़ाई और पढ़ाई के बाद मन-बहलाव—इस प्रकार बदल-बदल कर काम होने चाहिएं ताकि बालक थकावट अनुभव न करें। प्राइमरी श्रेणियों के लिए गाना और खेलना आदि सारे समय में एक दो बार अवश्य रखे जाने चाहिएं, ताकि बालक थक न जाएं।

४. विभिन्नता

(Variety)

यह अकसर कहा जाता है कि एक काम से दूसरे काम पर जाना ही आराम है। अध्यापक और विद्यार्थी दोनों के लिए यह असूल लागू हो सकता है। एक ही विषय अथवा एक ही प्रकार के विषयों पर लगातार काम करते रहने से बड़ी थकावट महसूस होने लगती है। एक ही विषय पर कई घण्टियाँ नहीं लगानी चाहिएं। यह नहीं होना चाहिए कि एक भाषा के अध्यापक की, मौखिक पाठों की ही कई घण्टियां चलती रहें, बल्कि पढ़ने, लिखने की मिश्रित घण्टियां चाहिएं।

५. घटियों की अवधि

(Length of the Periods)

घण्टियों की लम्बाई का फैसला करना कुछ कठिन काम है। हर एक विषय के लिए घण्टियों की लम्बाई अलग अलग हो जाए तो बहुत ही अच्छा है। ऐसे विषय जो अधिक थका देने वाले हैं, उनके लिए घण्टियों की संख्या बेशक अधिक कर दी जाए, परन्तु लम्बाई कम होनी चाहिए। जो विषय कम थकाने वाले हैं, उनके लिए घण्टियों की लम्बाई ज़्यादा होनी चाहिए। परन्तु इस सिद्धांत को कार्यानित करना वास्तव में कठिन है। प्राइमरी श्रेणियों के लिए घण्टियां ३० मिनट की और मिडिल क्लासों के लिए ३५ मिनटों की होनी चाहिएं।

६. अध्यापक, स्कूल का सामान और ईमारत

(Staff, Equipment and Building)

समय विभाग चक्र बनाते समय अध्यापकों की संख्या और उनके गुण, श्रेणियों तथा उनका आकार तथा श्रेणियों के कमरों का भी ख्याल रखना चाहिए। एक ऐसे प्राइमरी अथवा मिडिल स्कूल के लिये, जहां हर श्रेणी के लिए अलग-अलग अध्यापक है, समय विभाग चक्र पृथक बनेगा, और ऐसे स्कूल का अलग जिस में एक ही अध्यापक को कई श्रेणियों को पढ़ाना पड़ता है। एक ऐसे स्कूल में जिस में कि एक ही कमरे में दो श्रेणियों को इकट्ठा पढ़ाना होगा, उसके लिए इस प्रकार का समय विभाग चक्र होना चाहिए कि एक खामोशी से काम कर सके और दूसरा बोलने वाला। फर्नीचर तथा अन्य आवश्यक सामानों का भी ध्यान रखना बहुत जरूरी है, क्योंकि यदि स्कूल में दस्तकारी (Handwork and craft) का एक ही कमरा है तो श्रेणियां एक ही समय में काम नहीं कर सकेंगी भले ही दिन का खास इस काम के लिए ठीक हो।

परन्तु यहां यह याद रखने की जरूरत है कि उपरलिखत सब सूचनाएं बिल्कुल ही अमल में लानी चाहिएं। कई और ऐसी बातें हैं, जिनकी ओर से हमें सचेत रहना चाहिए।

(अ) एक ही प्रकार का समय विभाग चक्र सभी बालकों के लिए ठीक नहीं हो सकता। एक ही प्रकार का समय विभाग चक्र बनाने का तो यही प्रयोजन होगा कि सब बालक एक सी ही उन्निति करते हैं और अध्यापक ने एक बार जो कुछ पढ़ाया है, वह बालक 'पचा' लेते हैं। पर यहां यह स्पष्ठ कर देना चाहिए कि कुछ बच्चे तो इस विद्या प्राप्त करने की यात्रा में मालगाड़ियों की तरह होते हैं और कुछ फलाईंग ऐक्सप्रैस की तरह। सो एक ही प्रकार का समय विभाग चक्र

विद्यार्थियों के लिए ठीक नहीं । आज कल के विद्वान तो बच्चों को समय विभाग चक्र की कठोर शृंखलाओं से मुक्त करना चाहते हैं। इसलिए उनका विचार है कि किसी प्रकार के समय विभाग की आवश्यकता नहीं। वे बच्चे को अपनी इच्छा और अपनी आवश्यकता अनुसार अपने समय का उपयोग करने की छूट देना चाहते हैं। वे समय विभाग चक्र की कठोरता को दूर करने के लिए डलटन योजना (Dalton Plan) और बर्ताव-प्रणाली का समर्थन करते हैं (इन योजनाओं के बारे में आगे पूरा प्रकाश डाला जाएगा)। जौन डीऊवी (Johan Dewey) तो इस से भी आगे जाते हैं। उनका विचार है कि पढ़ाई का सलेबस केवल विषयों का एकीकरण ही नहीं होना चाहिये बल्कि यह तो बच्चे का खेलों और कार्यों का एकीकरण होना चाहिये और इन खेल और कार्य का बच्चे के आत्म-अनुभूत आवश्यकताओं में से, उद्‌गम होना चाहिए। अगर हम सलेबस को इस प्रकार समझें तो हम इसको भिन्न-भिन्न विषयों में विभक्त नहीं कर सकेंगे, बल्कि बच्चे की दिलचस्पी के केन्द्रों का अनसंधान करना पड़ेगा और बच्चे को उसके अनुसार काम करने की छूट देना पड़ेगी।

(आ) यह भी याद रखने की आवश्यकता है कि समय विभाग चक्र केवल मात्र एक साधन है इसके द्वारा हमें बच्चे को विकसित करना है, केवल अंधविश्वासी होकर इसे मानना ही नहीं। जहां तक हो सके, समय विभाग चक्र में परिवर्तन का अवकाश होना चाहिए।

(इ समय विभाग चक्र पर कभी-कभी अवश्य विचार करना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिये कि एक बार समय विभाग चक्र बन गया, और हमेशा के लिए इसे अपना लिया गया। यह तो केवल मात्र एक साधन है, जिस प्रकार की परिस्थितियां हों, उस

प्रकार ही [illegible] चाहिये । एक समझदार अध्यापक इसे स्वामी नहीं, बल्कि नौकर समझेगा, और कई रचनात्मक और मौलिक कामों के लिए इसको बदल भी लेगा । बालकों को भी यह पता लग सकेगा कि किस प्रकार काम के अनुसार समय विभाग चक्र को इधर उधर किया गया है ।

कांड ७

घर का काम

१. घर का काम देने के सम्बन्ध में विभिन्न मत

(Different views on value of Home-task)

विद्यार्थियों को घर का काम देने के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों का विचार हैं कि स्वाभाविक परिस्थियों में दोपहर तक एक बच्चा पर्याप्त काम कर चुका होता है। इस लिए घर का काम जो कि हमारे स्कूलों में साधारणतया दिया जाता है, लाभ से कहीं अधिक हानिकारक होता है। केवल एक लाभ अवश्य हो जाता है, वह है परीक्षा में सफलता। कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि जो एक बालक दिन के पांच छः घण्टे पढ़ता, लिखता, और सोचता रहता हैं, तो उसे शाम का समय खेलों, मन-बहलाने और गप्पों के लिए छोड़ देना चाहिए।

परन्तु इसके विपरीत कुछ विद्वाम ऐसे हैं जिनके विचार यह हैं कि बालक में आत्म विश्वास और आत्म-निर्भरता उत्पन्न करने के

लिए, घर का काम देना अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। थरिंग (Thring) लिखता हैं—'काम का बाहुल्य एक आरोग्य एवं सुन्दर जीवन का एक भेद है।'

२. घर का काम आवश्यक क्यों ?
(Why Home-task necessary)

कई विद्या-सम्बन्धी लाभों के कारण घर का काम अत्यन्त आवश्यक एवं लाभदायक है। ऐसे घर के काम का बहुत मूल्य है जो भली प्रकार से समझाया जाये, होशयारी और समझदारी के साथ दिया जाये। विद्यार्थियों में अध्यापक की सहायता बिना काम करने की आदत पैदा होती है। स्कूल के किसी प्रकार के भी प्रतिबन्ध से मुक्त हो कर काम करने का यह सुन्दर मार्ग है, और स्कूल में जो कुछ पढ़ा गया है, उसको ठीक तरह से याद करने और समझने के लिए उसे कई बार दुहराने की आवश्यकता होती है, और घर के काम द्वारा यह मतलब ठीक तरह से पूरा हो जाता है। जो विषय विद्यार्थी को बहुत प्रिय होंगे, उन में अधिक से अधिक काम करके वह उस विषय की वास्तविक जानकारी प्राप्त कर सकेगा।

इसके अतिरिक्त एक बात और है, वह यह कि भिन्न-भिन्न विषयों का भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लिए सलेबस इतना अधिक है कि घर के लिये काम दिये बगैर वह समाप्त नहीं हो सकता। और माता-पिता भी बच्चे के काम की जांच पड़ताल कर सकेंगे, और अध्यापकों के मेल मिलाप के साथ बच्चों की भलाई के लिये नये उपाये सोच सकेंगे। सो इस प्रकार घर के लिये दिया हुआ काम बच्चे के संरक्षक और अध्यापक में एक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

इसके अतिरिक्त यह बच्चों में नियम-बध हो कर नियम-पूर्वक पढ़ने की आदत डाल सकता है, और यह ही आदत बच्चे के आगामी जीवन के लिये काफी सहायक हो सकती है।

परन्तु यदि बहुत सोच-विचार के बिना ही काम दे दिया जाये, तो घर के लिये दिया हुआ काम कई प्रकार की हानियां पहुंचा सकता है, और जो प्रयोजन हम पूरा करना चाहते हैं वह अपूर्ण ही रहेगा ।

३. घर का काम किस प्रकार का होना चाहिए (Types of Home works.)

जहां तक हो सके घर का काम उन पुस्तकों के वाहर से होना चाहिये, जो कि क्लास में पढ़ाई गई हों, और उन वातों को पूर्ण विवरण सहित पढ़ना चाहिए जिन पर कि क्लासमें केवल मात्र थोड़ा सा ही प्रकाश डाला गया हो । केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए ही, घर का काम नहीं देना चाहिए । बच्चे के नवोदित व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए, घर के लिए दिया हुआ काम सब से उत्तम साधन है । इसके लिए जो विषय या विषव के जो भाग बच्चें को अच्छे लगें, उसमें गम्भीर अध्ययन करने के लिए बच्चे को उत्साहित किया जाना चाहिए । पुस्तकालय की पुस्तकों को इस काम के लिए प्रयोग में लाया जा लकता है । घर के लिए दिया हुआ काम कुछ इस प्रकार का होना चाहिए कि बच्चा माँ-बाप अथवा अध्यापिक की सहायता बिना काम कर सके । कुछ कठिन और ऐसी सम्याएं घर के काम के लिए देनी चाहिए, जिन पर कि बच्चे कुछ अपना दिमाग खर्च कर सकें । परसीवल रैन (Percival Wren का विचार है—"जहाँ तक हो सके घर के लिये दिये हुआ काम, श्रेणी में कराये हुए काम से भिन्न, और उससे अधिक होना चाहिए । व्यर्थ सी पाठों की दोहराई नहीं होना चाहिए, बल्कि स्कूल की किताबों से अधिक एक मौलिक अन्वेषण के रूप में होना चाहिए, जिस प्रकार कि एक मौलिक लेख होता है । घर के लिए दिया हुआ काम मन और शरीर-दोनों के

लिए लाभदायक होना चाहिए। केवल 'घोटा' और 'रटे' का एक अम्बार ही नहीं होना चाहिए, जो कि मानसिक और शारीरिक हानियां पहूंचाते हैं।"

डकवर्थ लिखना है--"घर के लिए दिया हुआ काम बच्चें को इस योग्य बनाए कि जब बालक स्कूल छोड़े तो वह पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त कर सके।" क्योंकि यह एक आम कहावत सुनी जाती है कि —"जो कुछ बच्चे जानते हैं, उसका कोई विशेष महत्व नहीं; किस प्रकार के मनुष्य बनेंगे इस का कहीं अधिक महत्व है।"

घर के लिए दिया हुआ काम सदैव लिखाई के लिए ही नहीं होना चाहिए। कभी-कभी मौखिक काम भी देना चाहिए। कक्षा में हफ्ते में एक बार कोई विवाद (Debate) रखी जाए, ऐसा करने से बच्चे बोलने वाले विषय पर घर में पढ़ेंगे। पिछले काम की दोहराई और अगले सबक की तैयारी भी घर के काम के रूप में की जा सकती है। कुछ कठिन सी समस्याएं भी घर के काम के तौर पर दी जा सकती हैं, इस प्रकार बच्चे कठिन समस्याओं को सुलझाने में आनन्द प्राप्त कर केंगेस।

घर के काम की सिखलाई, भले ही एक कठिन सा काम है, परन्तु यह भली प्रकार से करनी चाहिए।

घर के काम की मात्रा
(Amount of Home-work)

घर का काम इतना नहीं देना चाहिए कि बालकों की सेहत पर बुरा प्रभाव पड़े, और बच्चे लापरवाह हो जायें। काम देते समय बच्चे की घर की हालत का पूरा-पूरा ख्याल रखना चाहिये। मुख्य-अध्यापक को चाहिये कि इस ओर वह पूरा ध्यान दे, क्योंकि यदि सारे अध्यापक ही अपने विषय को विशेष महत्व प्रदान करने लग जाए, तो बेचारे विद्यार्थी

के लिए तो यह कठिन समस्या बन जाएगी। यदि घर के काम का एक चार्ट बना लिया जाए, तो बहुत ही अच्छा है। मिडिल क्लासों के लिए घण्टे से ले कर दो घण्टे तक काम देना चाहिए। बच्चों की आयु और कक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रख लेना चाहिए।

घर का काम और माँ-बाप

(Home-work and Parents)

जिस प्रकार स्कूल जाते हर बच्चे के हर मामले में मां-बाप का सहयोग अति आवश्यक है, इसी प्रकार मां-बाप का सहयोग घर के लिये दिये काम के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है। इसका कारण यह है कि घर में उचित हालत न होने पर, बच्चा घर का काम भली प्रकार नहीं कर सकता। अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह माँ-बाप को यह अनुभव कराये कि बच्चे की भलाई के लिये अच्छे वातावरण की आवश्यकता है, और उनके आगे निवेदन करे कि वे देखें कि घर के लिए दिया हुआ काम पूरा हो गया है कि नहीं, यदि हो सके तो घर के काम के चार्ट की नक्लें माँ-बाप को भेज दी जायें।

कान्ड ८

स्कूल का सलेबस

(Curriculum)

भले ही आज की बीसवीं शताब्दी में विद्या को सलेबस और पाठय-पुस्तकों की कठिन-कठोर शृंखलाओं से मुक्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है, फिर भी सलेबस और पाठय-पुस्तकों से छुटकारा पाना कुछ कठिन-सा है। हमारा उद्देश्य विद्यार्थी के ज्ञान के घेरे को पर्याप्त विशाल बनाना होता है, और यह उद्देश्य एक अच्छे सलेबस द्वारा पूरा किया जा सकता है। सलेबस द्वारा ही बच्चे के व्यक्तित्व का विकास हो सकता है, और उस की आन्तरिक शक्तियों को विकसित किया जा सकता है।

१. वर्तमान सलेबस के दोष

हिन्दुस्तान में सलेबस और पाठय-पुस्तकों के बारे में बहुत कम ध्यान दिया गया है। जहां पर भी पढ़ाने, लिखाने की आवश्यकता अनुभव की गया है, वहाँ केवल पढ़ाना, लिखाना कौर हिसाब (3 R's) पर ही ज़ोर दिया जाता है। मिडल और हाई स्कूल में तो दसवीं की

परीक्षा के कारण किसी प्रकार के परिवर्तन करने की बड़ी कम गुंजाइश होती है। सलेबस ही बौद्धिक व्यायाम का एक मार्ग समझा जाता है, और बालक भूगोल, इतिहास अथवा अलिजबरा सीखने वाला एक खास अंग। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास पर बहुत कम जोर दिया जाता है, और उसे सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने के लिए कोई शिक्षा नहीं दी जाती।

सलेबस तथा पाठय-पुस्तकों का सबसे बड़ा उद्देश्य यह होना चाहिए कि परम्परा का अक्षषण रखते हुए, सामाजिक उद्देश्यों को पूरा किया जाए। सलेबस तो समाज के अध्यात्मिक एवं सात्विक आचरण का न केवल प्रकटी करण होता है, बल्कि सभ्यता-संस्कृति किस प्रकार की बने इस को भी वह सचित्र रूप में उपस्थित करता है। इसलिए जब तक इस की जड़ें अतीत सभ्यता तक नहीं पहुची हुई होगी तब तक यह सीखने वालों के मन के स्तरों का स्पर्श नहीं करेगा। और इसकी अपील केवल बौद्धिक ही होगी। हमारे स्कूलों के सलेबस में यह एक बहुत बड़ी त्रुटि है। यदि हम एक-सुन्दर ढंग की विद्या का प्रसार करना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि सलेबस को भारतवर्ष की सभ्यता का ख्याल रख कर बनाया जाये। हमें अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि भारत के लिए जिस विद्या को सलेबस बनाया गया है उसमें हिन्दुस्तानी गांव और लोक गीत, धर्म, पुरानी कथाएँ संगीत और शिल्प कला को कोई विशेष स्थान नहीं दिया जाता। परन्तु आज के विद्वान इस ओर अपना पूरा ध्यान दे रहे हैं।

सलेबस सम्बन्धी देश की साँझी भाषा का सवाल भी बहुत महत्व रखता है। भाषा न केवल विचारों को व्यक्त करने का साधन है, बल्कि एक ऐसा साधन भी है जिसके द्वारा मन की उमंगें एवं प्रेरणाएँ भी सुन्दर बनती हैं। सर परसीनन (Sir Percy Nunn) का

विचार हैं— 'शिक्षा निश्चय ही एक बातचीत करने का ढंग है, यदि यह अपने देश की भाषा के द्वारा हो।' मातृ भाषा का स्थान कभी भी एक विदेशी भाषा नहीं ले सकता है। विदेशी भाषा के द्वारा विद्यार्थी अपनी सृजनात्मक शक्तियों का विकास भली प्रकार नहीं कर सकेगा। वह रट्टा लगाने का यत्न करेगा, और विद्या का वास्तविक प्रयोजन ही ओझल हो जाएगा। स्कूल केवल समाज के दर्पण ही नहीं होने चाहिए, बल्कि उन्हें समाज का दीपक भी बनना है। इस में समाज की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के यत्नों का समावेश भी होना चाहिए। ऐसे विद्यार्थी जो केवल किताबी विद्या ही प्राप्त करते हैं, उस समय घबरा जाते हैं जब उन्हें ठोस सच्चाइयों का सामना करना पड़ता है। हमारे स्कूलों की पढ़ाई, इस समय, केवल एक लम्बी संख्या में क्लर्क ही पैदा करती है। सो आवश्यक है इस प्रकार की शिक्षा की, जो ज़िन्दगी से कोई दूर-परे की चीज़ न हो।

स्कूल की परीक्षाओं का डर, स्कूल के काम को एक 'हऊआ' बना छोड़ता है। सचमुच, टैगोर के शब्दों में एक महान सच्चाई निहित है कि इतनी देर से हम ने पिंजरे को ही सजाने में लगा दी, परन्तु पिंजरे में पड़ा तोता भूखा ही मरता रहा। स्कूल के सलेबसों ने ऐसे बच्चों को जन्म दिया है, जो अनेक विकृतियों से ग्रस्त है, और हम ने कभी बच्चे के बारे में ध्यान नहीं दिया।

इस के अतिरिक्त स्कूल के हैडमास्टरों को किसी प्रकार की छूट नहीं दी जाती, एक बना-बनाया सलेबस एवं पाठ्य पुस्तकें उनके हाथों में रख दी जाती हैं। इन सलेबसों के अनुसार विषय पढ़ाने होते हैं, और इस में वे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकते। सारांश है कि उन्हें गले पड़ा ढोल बजाना पड़ता है।

२. सलेबस बनाने के लिए ध्यान योग्य सूचनाएं

सलेबस बनाते समय निम्नलिखित सूचनाओं को ध्यान से रखना चाहिए---

१. काम और खेल का सिद्धान्त (The Activity Principle)

यदि हम चाहते हैं कि हमारी शिक्षा के विभिन्न विषयों मात्र एकीकरण ही न हो, तब इस में काम और खेल का होना आवश्यक है। विद्यार्थी तब ही भली प्रकार से सीख सकेगा यदि वह कुछ काम करता हो। हैडो-रोर्पोट (Hadow Report) अनुसार शिक्षा खेल और काम के रूप में ही समझी जानी चाहिए, क्योंकि बच्चा पढ़ाई से अधिक प्रयोग चाहता है। यहां हम प्रयोग प्रणाली के ऋणी हैं, जो कि गांव की शिक्षा के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहा है। सलेबस बनाने के लिए प्रयोग प्रणाली काफी सहायता कर सकती है। इस में किसी विशेष काम को सलेबस का केन्द्र समझा लिया जाता है और सिलेबस के सारे विश्व इस काम के द्वारा पढ़ाए जाते हैं। वार्धा-योजना (Wardha Scheme) में भी एक काम के द्वारा बच्चे के व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। काम की अपेक्षा बच्चे के व्यक्तित्व को अधिक महत्ता प्रदान की जाती है। सामान बनाने की अपेक्षा व्यक्तित्य की भलाई की ओर अधिक ध्यान रखा जाता है। सर परसीनन (Sir Percy Nunn) लिखाता है—"स्कूल को एक ज्ञान प्रदान करने वाली दुकान नहीं समझना चाहिए, बल्कि एक ऐसा स्थान जहाँ कि बच्चों को कई कामों में सिद्धहस्त

किया जाता है।" स्कूल का यह कर्तव्य है कि बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा दे कि बच्चे भली प्रकार पढ़ना, सोचना, दूसरों के साथ रहना और काम करना सीख सकें।

२. ज़िन्दगी के लिए तैयारी का सिद्धांत

(Principle of Preparation for life)

कुछ विद्वानों का विचार है कि सलेबस ऐसा होना चाहिए जो हमें एक अच्छी जिन्दगी के लिए तैयार करे। परन्तु इस सिद्धांत के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वानों का विचार है कि बच्चे को बालिग समझने से पहले यह समझना जरूरी है कि बच्चे को किसी खास पेशे की अपेक्षा पहिले एक सुन्दर ज़िन्दगी के लिए तैयार किया जाए। स्कूल जिसने कि बच्चे की बुद्धि को तीव्र बनाया है, उस के सोचने और समझने की शक्तियों को भली प्रकार से शिक्षित किया है, एक प्रभावशाली चरित्र का निर्मान है, और एक अरोग्य शरीर बनाना हैं, उसने उसे अपनी इच्छानुसार हर काम करने के योग्य बनाया है। सो सलेबस का उद्देश्य किसी विशेष प्रकार की नौकरी प्राप्त करना नहीं होना चाहिए, और न ही छोटे बच्चे को बालिगों वाली शिक्षा देनी चाहिए--भले ही स्कूल का उद्देश्य यह होगा, परन्तु सलेबस बनाते समय हमें इस सिद्धांत को दृष्टि में रखने की आवश्यकता नहीं। बच्चा प्रौढ़ होने से पहले बचपन को ही भली प्रकार व्यतीत करे। सो सलेबस बनाते समय बच्चे की पढ़ाई की आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। सलेबस का केन्द्र बच्चा होना चाहिए।

३. बचा रखने वाला सिद्धान्त

(Conservative Principle)

अब यह विचार किया जा रहा है कि सलेबस के भिन्न-भिन्न

विषयों में इस ढंग से काम होना चाहिए जो कि समाज और देश के अच्छे प्रयोगों को सम्भाल कर रख सके ताकि वह आने वाली पीढ़ियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। यहां पर यह विशेष ध्यान रखना है कि विशेष विचारों एवं कार्यों को ही सुरक्षित रखा जाए। सो पढ़ना लिखना, और गिनती करनी सलेबस में रखने ज़रूरी हैं।

दूर दर्शिता का सिद्धांत

(Forward-looking Principle)

जो कुछ बालक स्कूल में सीखे, वह उसको नित्य नवीन बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार ढालने के अतिरिक्त ज़रूरत पड़ने पर परिस्थितियों को तोड़ना–मरोड़ना भी सिखाये। आज का बालक कल का नागरिक होता है। स्कूल का सलेबस ऐसा होना चाहिये कि विद्यार्थी दूरदर्शी बने; न कि वह केवल, जो कुछ उसे मिला है उसे ही सुरक्षित रखे, बल्कि उसमें कुछ अपना योगदान देकर, आने वाली पीढ़ियों को कुछ प्रदान करें। इस प्रकार उन्हें पढ़ाया जाए कि अवकाश का समय उसके लिए भार स्वरूप न हो जाए। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हुनर, संगीत, दस्तकारी, नाटक, साहित्य आदि रचनात्मक कार्यों की ओर ज़ोर देना चाहिए।

५. रचनात्मक सिद्धान्त

(Creative principle)

सलेबस में वे सब खेलें और काम आने चाहिए जोकि बालक के विकास में सहायक हों। इसलिए सलेबस में ऐसे विषय होने चाहिएं जो बच्चे को कुछ करके दिखाने की खूबी को संतुष्ट कर सकें, और वह अपनी मनोकामनाओं एवं रूचियों को अच्छी ओर लगा सकें। प्रत्येक बालक की विशेश रूचियों और प्रवृतियों की खोज कर उनको

विकसित करना चाहिए। जो सलेबस वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करना चाहता है, उस में आवश्य कुछ रचनात्मक कार्यों को स्थान मिलना चाहिए।

६. स्थानिक आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्नता (Variations according to Local needs)

सलेबस बनाते समय स्थानिक आवश्यकताओं का ध्यान रखना भी बहुत जरूरी है। भारत जैसे गांव-प्रधान देश के लिए तो यह और भी जरूरी है। क्योंकि नगरों और गाँवों की आवश्यकताओं में महान अन्तर होता है इस बारे में 'घर स्कूल और समाज' वाले अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है।

७. शरीर मन और मस्तिष्क के विकास का सिद्धांत (Principle of all round-development of body, mind and spirit)

स्कूल के सलेबस में ऐसे विषय होने चाहिएं जिन से बच्चे के शरीर, मन और मस्तिष्क तीनों का विकास हो सके। स्कूल न केवल बच्चों को अच्छे ढंग से जीना, बल्कि दूसरों के साथ मिल कर रहना भी सिखाए। सारांश यह कि बच्चे के समग्र व्यक्तित्व का विकास किया जाए।

आजकल सख्त और कठोर सलेबस के स्थान पर लचकदार सलेबस का प्रचलन हो रहा है। यह भिन्न भिन्न स्कूलों में पृथक-पृथक हो सकता है, एक ही स्कूल में भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लिए अलग-अलग हो सकता है। सो एक बार किसी विशेष सिद्धांतों के अनुसार सलेबस नहीं बनाया जा सकता। यह निर्जीव न हो कर सजीव

होना चाहिए; कठिन और कठोर न होकर उसमें परिवर्तन के लिए अवकाश होना चाहिए।

यहा पर हम कुछ ऐसे विषयो पर विचार करेंगे कि स्कूलों में उन्हें कौन-सा स्थान दिया जाना चाहिए, और उन विषयों का सलेबस में होना क्यों आवश्यक है ?

१. इतिहास

इतिहास, जैसा कि कुछ विद्वानों का विचार है नाम और तिथियों का ही एक लेखा-जोखा नहीं है, और न ही यह लड़ाइयों और जरनैलों की एक सूची मात्र है। यह तो एक ऐसा प्रभावशाली साधन है जिसके द्वारा बच्चे को मनुष्यता के क्रमिक विकास से परिचित कराया जा सकता है। अनेकों का यह एक भ्रान्तिपूर्ण विचार है कि इतिहास अतीत की बातों की एक व्यर्थ पुनावृत्ति है; निस्संदेह इतिहास अतीत की बातों का एक रिकॉड रखता है, परन्तु कोई ऐसा कारण नहीं है जो कि इतिहास को वर्तमान बातों का रिकारर्ड रखने से रोके। वास्तविक सत्य तो यह है कि इतिहास बर्तमान परिस्थितियों को अतीत की परिस्थितियों के प्रकाश में देखता है। जो इतिहास को एक शुष्क-सा व्यर्थ विषय समझते हैं वे इस विषय की महानता से परिचित नहीं हैं। इतिहास को तिथियों के अनुक्रम से लिखा एक ब्यौरा मानना गलत है। बल्कि यह विषय हमें कई प्रकार के जरूरी सबक, जो कि जीवन के लिऐ आवश्यक हैं, सिखाता है। अतीत के मनुष्यो की सफलताएं भविष्य के लिए काफी लाभदायक शिक्षाएं प्रदान कर सकती हैं। एक मनुष्य होने के नाते, भानव बुद्धि की सीमांए बहुत सीमित हैं, और हम इस दुनिया में चिरकाल तक जीवित रहना चाहते हैं। हमारे पास समय भी बहुत कम होता है, पर कलाएं अनेक होती हैं। इतिहास हमारी बहुत सहायता कर सकता है।

अमर्सन (Emerson) लिखता है "मनुष्य का इतिहास वगैर वर्णन नहीं किया जा सकता—केवल मनुष्य के इतिहास ही नहीं, वरन सारे समाज के इतिहास द्वारा ही उस का वर्णन किया जा सकता है।"

कोल (Cole) का विचार है—"कोई भी चीज उसके इतिहास के वगैर नहीं जानीं जा सकती।"

इसलिए अतीत के ज्ञान से वंचित मनुष्य अन्धेरे में ही धक्के खाता रहेगा, क्योंकि मनुष्य का अतीत उसके वर्तमान की भूमिका होता है, और किस प्रकार का भविष्य होगा, इसका वह दर्पण होता है। सारांश यह कि मनुष्य की सभ्यता के समस्त नाटक–उस समय से लेकर जबकि मनुष्य नग्नावस्था में जंगलों में विचरा करता था, आज बीसवीं शताब्दी के नवीन युग तक–हमारे सम्मुख यदि कोई विषय उपस्थित कर सकता है, तो वह है इतिहास। यह विषय बतलाएगा कि किस प्रकार आज की जटिल सभ्यता, संसार की कई जातियों के परास्परिक मिलन के परिणाम–स्वरूप है। हमारी जिन्दगी एक अत्यन्त विशाल एव विस्तृत शाखाओं वाला वृक्ष है, जिस की जड़ें बहुत गहरी नीचे तक गयी हुई हैं, और इतिहास हमें उन जड़ों के दर्शन कराता है।

इतिहास हमें न केवल विवेक ही प्रदान करता है, वरन् वह हमें प्रेरणा और उत्साह भी प्रदान करता है। शिक्षा प्रदान करने के रूप में यह बहुत ही लाभदायक है। इतिहास के बिना कोई भी जाति उसी प्रकार है, जिस प्रकार की लकड़ी की तख्तियों के वगैर एक कश्ती। बच्चा साधारणतया महान पुरुषों की पूजा करता है। इस प्रकार गरीब से गरीब बालक भी अपना मनोवांछित नायक इतिहास के पृष्ठों में प्राप्त कर सकता है।

किसी देश की राजनीति को समझने के लिए भी इतिहास काफी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। यह बताएगा कि किस प्रकार विशेष–विशेष परिस्थितियों में हम भी वही कुछ कर सकते हैं, जोकि दूसरों ने

किया था। इस प्रकार जब देश पर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हों, तब यह प्रकाश स्तम्भ बन सकता है। इतिहास तो एक महान अध्यापक है, जो अपनी शिक्षाओं के लिए किसी प्रकार का मूल्य नहीं मांगता। हम इसे मानें चाहे न मानें, पर 'नुकसान' हमारा अपना ही होता है।

इतिहास सहयोग और राष्ट्रीय भावों को जन्म देता है। यह बताता है कि किस प्रकार एक जाति दूसरी जाति पर निर्भर करती है। इस प्रकार विद्यार्थी में विश्व-नागरिकता के भाव पैदा किए जा सकते हैं।

इतिहास कल्याणकारक शिक्षाएं देने के लिए भी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। बालिंग ब्रक (Bolingbrocke) का विचार है कि इतिहास तो उदाहरणों के रूप में प्रदान किया हुआ दर्शन (फिलासफी) ही है। इतिहास न केवल अच्छे गुणों का भली प्रकार से वर्णन करता है, बल्कि विद्यार्थियों को अच्छे गुण ग्रहण करने के लिए प्रेरित भी करता है। यदि अध्यापक भली प्रकार से इतिहास पढ़ाएं तो विद्यार्थियों में कई अच्छे गुण पैदा किए जा सकते हैं।

इतिहास को पढ़ाने के ढंग का काफी महत्व है। इतिहास तलवार के समान है, यदि हम इसे ध्यान से पकड़ें और होशियारी से इसका प्रयोग करें, तब हम अपने आप को दुश्मन से बचा सकते हैं; परन्तु यदि बुरी तरह से इसका प्रयोग करें तो अपने गलों को ही इस से काट सकते हैं। इतिहास को पढ़ाने के लिए नवीन विद्यार्थियों को अपनाया जाए, तो यह शुष्क-सा विषय नहीं रह जाएगा। अतीत को इतने सुन्दर ढंग से दर्शाना चाहिए कि अतीत का ज्ञान वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए सहायक सिद्ध हो सके। जिस प्रकार कीटिंग (Keatinge) ने बताया है 'वे कांड जो कि वर्तमान ज़िन्दगी पर कोई प्रकाश नहीं डालते और आज के नागरिक को कोई लाभ नहीं पहुंचाते, उनका इतिहास के सबकों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। अतीत

का केवल अतीत के कारण ही कोई मूल्य नहीं है। अतीत तो तभी लाभदायक हो सकता है, जबकि वह वर्तमान काल की समस्याओं को सुलझाने में सहायक सिद्ध हो सके। सो इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक अतीत का वर्तमान के साथ सम्बन्ध जोड़ते हुये बताए कि किस प्रकार अतीत के अनुभव आज हमारे लिए लाभदायक हो सकते हैं।

इतिहास अतीत काल के साथ सम्बन्ध रखता है। पर अब प्रश्न यह उठता है कि अतीत के किस हिस्से के साथ भिन्न २ पड़ावों में इतिहास का सम्बन्ध होना चाहिए।

मझले पड़ाव में इतिहास न ही केवल राजनीतिक होना चाहिये, और न ही केवल राष्ट्रीय। राजनीतिक के साथ समाजिक, नैतिक और कलात्मक सभी रूप सामने आने चाहिये। अपने देश की सभ्यता के ज्ञान के साथ थोड़ा अन्य देशों के बारे में भी ज्ञान प्रदान करना चाहिए। पहले दो वर्षों में विद्यार्थी को इतिहासिक कहानियाँ पढ़ानी चाहिएं। तीसरे साल में किसी क्रम से जीवनियों का अध्ययन कराना चाहिए, और अपने राष्ट्रीय इतिहास की ओर उसका ध्यान दिलाया जाए। छोटी श्रेणियों में अध्यापक का प्रयत्न यह होना चाहिये कि बच्चों में ऐतिहासिक कल्पना शक्ति जाग्रति की जाये, और उच्चश्रेणियों में ऐतिहासिक सूझ। जितनी ज़्यादा से ज़्यादा हो सके चित्र नक्शों और मौडल आदि के प्रयोग से अतीत को मनोरंजक बनाना चाहिए।

यहां एक बात स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि इतिहास को कभी भी सम्प्रदायिक विचारों के साथ नहीं पढ़ाना चाहिये। इतिहास तो समस्त मानवता की सफलताओं एवं असफलताओं, अभावों एवं प्रभावों का रिकार्ड होता है। यह तो सारे संसार का महा काव्य है। यदि यह इस प्रकार नहीं, तो यह कुछ भी नहीं। ऐसे अध्यापक जिन के

लिए इतिहास केवल योरुप या एशिया का इतिहास है, वे विद्यार्थियों के साथ बहुत अन्याय कर रहे होंगे, जो इतिहास को इस प्रकार खण्ड-खण्ड में विभक्त कर पढ़ाते हैं। वे देश प्यार सिखाते-सिखाते मनुष्यता की जड़ों पर ही आघात कर रहे होंगे। अध्यापक का कर्तव्य तो केवल इतना ही है कि सच्चाई को विद्यार्थियों के सम्मुख खोल कर रख दे, और फिर विद्यार्थियों को उस अलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने की स्वतंत्रता दे। हमें नलुआ, गाँधी और नेहरू चाहिए, और यह इतिहास ही है, जो अगर भली प्रकार पढ़ाया जाए, तो ऐसे महान पुरुष दे सकता है।

२. भूगोल

स्कूल के सलेबस में भूगोल का भी अपना ही एक स्थान है। यह एक ऐसा विषय है जो कल के होने वाले नागरिक को, दुनियाँ की हालत से भली प्रकार परिचित करवा के दुनियाँ की राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए प्रेरिणा दे सकता है। इस का प्रयोजन धरती को मनुष्य के रूप में दिखाना है। भूगोल के द्वारा हम जान सकते हैं कि कुछ प्रकार सब मानव सूत्र में बन्धे हुए हैं। विद्यार्थी अपनी दुनिया को समझ सकता है।

भूगोल एक ऐसा विषय है, जो सारी दुनिया से सम्बन्ध रखता है। इसको अगर भली प्रकार से पढ़ाया जाए, तो बच्चा एक विश्व का नागरिक बन सकता है। आज जब कि दुनियाँ कई बार की लड़ाई का अखाड़ा बना हुई है इस विषय का महत्व और भी अधिक हो जाता है।

भूगोल बहुत से विषयों का निचोड़ है। यह कई विज्ञान एवं कलाओं की क्रीम है। यह एक ऐसा विषय है जिसके पार्थिव लाभ भी हैं।

रोजी कमाना भूगोल की सहायता से सहज हो सकता है। फेअर गरेव (Fairgrieve) के शब्दों में—भूगोल की महत्ता इस बात में है कि यह मनुष्यों को जीवन-यापन में सहायता करता है। दुनिया में अपना स्थान ढूंढ़ने में, और अपने कर्तव्य जानने में भूगोल सहायता करता है।" फेअरगरेव के विचारनुसार किसी देश की सामाजिक एवं राष्ट्रीय उन्नति के लिए कोई एक ऐसी चीज़ नहीं है जो रोड़ा अटका सके, जितना कि भूगोल के ज्ञान का अभाव। संसार में भ्रातृप्रेम उत्पन्न करने के लिए भूगोल सब से उत्तम विषय है।

यदि हम चाहते हैं कि यह विषय लाभकारी सिद्ध हो, तो इसे भली प्रकार से पढ़ाना अति आवश्यक है। जहां तक हो सके यह सच्ची चीज़ों के साथ ही सम्बन्ध रखे। अगर कोई चीज़ देखी न जा सके, तो उसे चित्रों, नक्शों एवं मौडलों के द्वारा पढ़ाना चाहिए। भूगोल पढ़ाने का वास्तविक प्रयोजन तो कल्पना शक्ति को शिक्षित करना होता है। केवल नामों और संख्याओं के साथ मस्तिष्क को भरना नहीं होता।

भूगोल एक वास्तविक विषय है, इसलिए इसको बड़े दिलचस्प ढंग से पढ़ाना चाहिए। किसी देश का भूगोल पढ़ाते समय अध्यापक विद्यार्थी को मनुष्यों, घरों, दुकानों, मन्दिरों, सड़कों आदि के बारे में भली प्रकार परिचित कराए। जहां तक हो सके इस विषय को मनुष्यता के साथ सम्बन्धित करना चाहिए। अध्यापक को हमेशा जो कुछ विद्यार्थी जानता है से आरम्भ करके, जो कुछ नहीं जानता तक ले जाना चाहिए। भूगोल, क्योंकि यह एक वास्तविक विषय है, इसलिए इसकी एक अपनी ही प्रयोगशाला होनी चाहिए।

छोटी श्रेणियों को भूगोल खेलों और प्रयोगों के द्वारा पढ़ाना चाहिए। जो कुछ बच्चे अपने नित्य के व्यवहार में देखते हैं—सूरज, हवा, वर्षा आदि; इनका ज्ञान उन्हें देना चाहिए। ग्रामीणों के जीवन

के बारे में पहले कहानियां सुनाई जाएँ, और फिर खेलों के द्वारा रिझा कर असली भूगोल पढ़ाना चाहिए। हवा की दिशाओं को बताने के लिए मामूली मौसम के चार्ट, वारिश की मात्रा देखना, सूर्य की चमक या बादल देखने—बड़े दिलचस्प अभ्यास हो सकते हैं। बड़ी श्रेणियों के लिए स्कूल के आस-पास के स्थान, और गांव का नक्शा बनाने को दिया जा सकता है। जब खुराक, कपड़े और रहने के स्थान आदि की कहानी पढ़ाई जाएगी, तो साथ ही दूसरे देशों के लोगों की कहानियां भी आ जायेंगीं।

३. घरेलू विज्ञान और घरेलू अर्थ-विज्ञान

आज की शिक्षा में घर को बहुत महत्व दिया जा रहा है, क्योंकि घर ही ज़िन्दगी का केन्द्र हुआ करता है। घर ही समाज के सम्मुख एक विशेष आदेश उपस्थित किया करते हैं, और किसी देश की उन्नति अथवा अवनति इन्हीं आदर्शों पर निर्भर किया करती है। जब घर का हमारे जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है, तो फिर ऐसा कोई कारण नहीं कि स्कूल के लड़कों के लिए सलेबस में घरेलू विज्ञान और अर्थ-विज्ञान को कोई स्थान न दिया जाए। घर में ही मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और अध्यात्मिक विकास की नींव पड़ती है। इसलिए आवश्यक है कि घरेलू विज्ञान में विद्यार्थियों को परांगत किया जाए। पर यहाँ यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि घरेलू विज्ञान केवल यांत्रिक कार्यवाही न हो कर रह जाए। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि बच्चे के शुरू के सालों का बहुत महत्त्व होता है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि घर की जिन्दगी और वातावरण का विशेष ध्यान रखा जाए। इस काम के लिए घरेलू विज्ञान बहुत सहायता कर सकता है। इतना ही पर्य्याप्त नहीं होता कि भोजन ठीक

प्रकार से बना हो बल्कि उसमें विटामिनों एवं अच्छी खुराख के सभी गुणों का होना आवश्यक है, काफ़ी भली प्रकार से बना हुआ होना चाहिए, और सुन्दर ढंग से परोसा जाना चाहिए। निसेज़ हँसा मेहता का विचार है—'घरेलू विज्ञान का केन्द्र घर होना चाहिए, क्योंकि हमारे घरों को केवल मात्र जानवरों की तरह एक रहने का आसरा न हो कर, एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करना होगा कि एक महान जाति के रहने के वह योग्य हो सके।''

४. साहित्य

साहित्य देश का जीवन हुआ करता है। वह मनुष्य के ज्ञान के भण्डार को समृद्ध करता है। मन की रागात्मक वृत्ति को स्पर्श कर, मनुष्य के देवत्व को जागृत कर, उसमें पावन-पवित्र भावनाएं उत्पन्न कर, साहित्य मनुष्य को एक अच्छा नागरिक बनने में सहायता कर सकता है। पके हुए आम के टपकने की तरह, भावों में पक कर जब मनुष्य की प्रवृत्तियां मुखरित हो उठती हैं, तब वास्तविक साहित्य का सृजन हुआ करता है। साहित्य का जन्म उतना ही प्राकृतिक है, जितना कि वृक्षों पर पल्लवों का प्रस्फुटित होना। साहित्य का वास्तविक प्रयोजन तुच्छतम पदार्थों में भी महान सत्यों का अन्वेषण करना है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब हुआ करता है। साहित्य का प्रयोजन मानव जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण और अंकन भी है। कभी तो यह विश्लेषण और अंकन किसी सामाजिक विशेष का हुआ करता है, और कभी यह भूगोलिक विशेषता भी रखता है।

साहित्य में एक ऊष्णता और मनोरंजन होता है। कुछ समय के लिए तो पाठक जग की जटिलताओं से, अपने आस-पास की दुनियां को भूल कर, लेखक द्वारा रचित एक आलोकिक दुनियां में जा पहुंच

है। साहित्य की गिरिफ्त में आकर जीवन के नवीन मूल्यों से परिचित होता है। साहित्य की चाशनी द्वारा दुःख की कड़वाहट फीकी पड़ जाती है, और जीवन कुछ मिठास से भरा हुआ, और जीवित रहने के योग्य प्रतीत होता है। साहित्य द्वारा ही पाठक शहर के धुएं से भरे और घुटे हुए वातावरण में भी खेतों पर फैली हुई चांदनी में विचरण कर सकता है, और सरोद् से मीठी संगीत से पूर्ण कुएं की रीं-रीं की आवाज़ सुन सकता है। साहित्य के द्वारा ही तो वह गांव का मासूम हास्य सुनता है मीठा मीठा और रस-सिक्त जो अपने साथ चांदनी को भी हंसा देता है, और छप्पर पर टिके पानी को ढुलका देता है, सुरीला और शीतल जैसे चाँदनी रात में दूर कहीं से उठती हुई पायल की झंकार वायुमंडल में व्याप रही हो।

साहित्य जनता के मन-सागर की तली से विचार-मोती निकाल लाता है। सच्चा साहित्य केवल समाज की दुखती रगों को ही नहीं टटोलता, और न केवल उसके रिसते नासूरों पर नमक ही छिड़कता है बल्कि उसपर हमदर्दी की मरहम भी रखता है। वह केवल मनुष्य के अभावों और कमज़ोरियों का ढिंडोरा ही पीटता है, बल्कि साथ ही साथ पहले से घिरे हुये जीवन मार्ग को छोड़ कर, मनुष्य की उन्नति के लिये नवीन मार्ग भी दर्शाता है। मनुष्यता को अपने प्यार के ऊष्ण आंचल में ले, उसे इस कठोर जीवन-पथ पर निधड़क और निस्संग चलने की प्रेरणा भी देता है। साहित्य एक कला है, एक अत्यन्त कोमल कला। साहित्य एक घूंघट में है। पता नहीं इस घूंघट के पीछे क्या है। यह बात ही हमारे मन में एक ज्वारभाटा लाती है इसी लिए हमारे साहित्य के प्रत्येक अंग में एक लचक होती है। यह ढुलकते, फिसलते, नरम होते समय के प्रभाव को स्वीकार करते लोगों के साथ-साथ चलते रहते हैं। इनमें सदा जीवित रहने

... सम्बन्ध मनुष्य के साथ होता है।

हर अनहोनी, इस धरती पर, होती हो सकती है। हज़ारों वर्ष पुराने मार्ग बदल सकते हैं। सभ्यताएं मिट सकती हैं विचार निःशेष हो सकते हैं। दर्शन निष्प्राण हो सकते हैं। परन्तु साहित्य सदा जीवित रहेगा, क्योंकि मनुष्यता कभी मर नहीं सकती।

साहित्य जीवन है, और जीवन साहित्य। इसलिए आवश्यक है कि जीवन के आवश्यक अंग को सलेबस में यथायोग्य स्थान दिया जाए।

५. गणित (हिसाब)

हिसाब भी स्कूल के सलेबस के लिए जरूरी विषय है। हमें अपने नित-प्रतिदिन के जीवन में कई प्रकार की गिनती करनी पड़ती है, सो हिसाब का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियों में कल्पना शक्ति को विकसित कर, विवाद आदि करने के लिए भी काफी सहायक होता है। परिश्रम करने की आदत पैदा होती है। हिसाब जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए, और जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला भी होना चाहिए।

६. विज्ञान (साइंस)

बीसवीं शताब्दी का युग विज्ञान का युग है, इसलिए विज्ञान का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ते जाने के कारण स्कूलों के सलेबस में भी इसका यथायोग्य स्थान दिया जा रहा है। विज्ञान के अध्ययन से कारण और प्रभाव के सम्बन्ध के बारे में पता चलता है और विद्यार्थी यह अनुभव करने लग जाएगा कि इन्हीं सिद्धांतों के मानने में आराम और खुशी है। इसके अतिरिक्त विज्ञान

का ज्ञान किसी एक देश की सम्पत्ति नहीं इस प्रकार बच्चा यह अनुभव करने लग जाएगा कि पारस्परिक आदान-प्रदान ही मनुष्य को एक सूत्र में बांधता है। बच्चे का मन और मस्तिष्क आलोकित होता है। वह कुछ करना चाहता है।

७. संगीत

संगीत को मन की उमंगों का वाणी-रूप कहा जाता है। इसकी अपील विश्व–व्यापी होती है। यह न केवल स्कूल में ही एकता का प्रचार करता है, वरन् समस्त विश्व को एकता के सूत्र में बाँधता है यह एक ऐसा मार्ग है, जिसके द्वारा भिन्न भिन्न-स्कूलों के भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक दूसरे के साथ अपने को सम्बन्धित अनुभव करते हैं। एक दूसरे के प्रीत सहानुभूति के भाव पैदा होते हैं, और आपस में भ्रतृ भाव की ग्रन्थिी दृढ़ से दढ़तर होती जाती हैं। आजकल कोई भी सिलेबस पूर्ण नहीं गिना जाता, अगर उसमें संगीत के लिए कोई स्थान न हो।

८. हाथ के काम

एक अच्छे सलेबस की आवश्यक विशेषता यह है कि उसमें हाथ के कामों को यथा योग्य स्थान दिया जाए, ताकि बालक कोई रचनात्मक काम कर सकें।

डबल्यू. एम. रायबर्न (W.M Ryburn) का विचार हैं कि स्कूल के सलेबस में दस्तकारी को यथा योग्य स्थान देने के लिए आवश्यक है कि सारे सलेबस को ही फिर से दुहाराया जाए। बच्चे की शक्तियों का पूर्ण विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि हाथों को खुला काम करने को दिया जाए। दस्तकारी स्कूल के काम का एक आवश्यक भाग होना चाहिए और सलेबस इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि दस्तकारी के बिना यह चल ही न सकता हो।

कई ऐसे कारण हैं जिनके कारण हाथ के काम को सलेबस में अवश्य स्थान दिया जाना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक तौर से इसका बड़ा लाभ है, क्योंकि बौद्धिक सिद्धांत और वास्ताविक कार्य साथ-साथ चलेगें। केवल मास्तिक के विकास के स्थान पर मस्तिष्क, मन और हाथ—सारे ही विकसित होंगे।

पी. बी बैलारड (P.B Ballard) का विचार है कि बच्चे के विचार हमेशा कुछ करने के विचार होते हैं, और काम के लिए हाथ का बहुत महत्व है। इस प्रकार यदि हम बच्चे के समस्त व्यक्तित्व का पूरा विकास चाहते हैं, तो हाथ का काम बहुत आवश्यक है। हाथ का काम बच्चे में ऐसा आत्म-विश्वास पैदा करता है जोकि वास्तविक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

बच्चे की कुछ बनाने की रुचि को भी पूर्ण संतुष्टि मिलती है। अब यह सिद्ध हो चुका कि हाथ का काम एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा बौद्धिक और नैतिक उन्नति हो सकती है। बच्चे के दबे भावों को व्यक्ति होने का एक अच्छा निकास मिल जाता है।

अवकाश के समय का सही प्रयोग करने के लिए भी यह एक सुन्दर ढग है। कई इस प्रकार के काम सिखाए जा सकते हैं जो कि अवकाश के समय के लिए शुगल का काम दे सकते हैं। बच्चे सुन्दरता की—काम की सुन्दरता, रूप की सुन्दरता, रंग की सुन्दरता आदि की महानता को पहचान सकेगें।

पढ़ाने की विधि के तौर पर यह स्कूल के सब विषयों, विशेष कर भूगोल और विज्ञान पढ़ाने के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता हैं।

अलग-अलग हाथ के कामों—लड़की का काम बागवानी, चित्र बनाने, रंगसाजी आदि के द्वारा बच्चे में मनुष्यता के गुणों का संचार किया जा सकता है।

हाथ के कामों के द्वारा आंखें भली प्रकार से देख सकती हैं, हाथ भली प्रकार से काम करते हैं, मन की शक्तियां विकसित होती हैं। बच्चों में सफाई और अनुशासन की आदत पैदा होती है, और यह आदतें जिन्दगी लिए के लाभकारी हो सकती हैं।

विद्यार्थी काम करने के महत्व को अनुभव करने लग जायेगा। भारत जैसे देश के लिए यह और भी आवश्यक है, जहां कि काम करने के प्रति लोगों की अरुचि है। विद्यार्थी इसको समाज की सेवा का एक साधन अनुभव करने लग जायेंगे, और अपने आप को स्वतंत्र अनुभव करेगें।

एक बार स्कूल में हाथ का काम आरम्भ कर दिया जाए, तो उसे भली प्रकारु से पढ़ाना चाहिए।

हाथ के कामों की किस्में

(अ) लकड़ी का काम

हाथ के कामों में लकड़ी का काम इसलिए उत्तम है कि इस में काम को बढ़ाने और फैलाने की काफी गुंजाइश होती है। आम हथियारों को पकड़ने से पट्ठे मजबूत होते हैं। इसके अतिरिक्त यह एक इज्जतदार और लाभदायक दस्तकारी है, जिसके-द्वारा विद्यार्थी अपने आप को समाज का एक लाभदायक अंग समझने लग जाता है। लकड़ी के काम को इतिहास भूगोल और साहित्य और हिसाब से सम्बन्धित करने से इन विषयों को अत्यन्त रोचक एवं वास्तविक बनाया जा सकता है।

(आ) बागबानी

बागबानी एक दिलचस्प एवं आनन्ददायक शुगल है, और यह अपने आप में एक विद्या भी है। शिक्षा की कला के साथ इसका

विशेष सम्बन्ध है, क्योंकि बच्चे और पौधे में कोई विशेष अन्तर नहीं-दोनों हर समय बढ़ने फलने और फूलने वाले होते हैं। सौन्दर्य एवं कलात्मक विचारों को भी पूरी वृति मिलती है। प्रकृति-निरीक्षण (Nature Study) बोटनी (Botany) और भूगोल (Geography) आदि के अध्ययन के लिए भी बागवानी अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती है। जब विद्यार्थी अपने लिए एक सुन्दर बाग बना सकते है, तो इस पर वे गर्व अनुभव कर सकेंगे और साथ ही प्रकृति की गोद में वास्तविक शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। इसी कारण महात्मा गांधी ने अपनी वार्धा-योजना में बागवानी को एक विशेष स्थान दिया हैं।

(इ) चित्रकारी और रंगसाज़ी

कई विद्यार्थियों के लिये चित्रकारी और रंगसाजी न केवल अच्छे शुगल सिद्ध हो सकते हैं, बल्कि ज़िन्दगी के लिये अच्छे पेशा का काम भी दे सकते हैं। चित्रकारी आन्तरिक भावों का व्यक्तीकरण है और क्योंकि बच्चे के विचार किसी हद तक सीमित होते हैं, इस प्रकार अध्यापक विद्यार्थी को समीप से जान सकेगा। इसके अतिरिक्त यह मनुष्य की एक विशेष रुचि—कुछ सुन्दर बनाने की रुचि—को संतुष्ट करती है; और इसके साथ ही उसके भावों को सुन्दर निखार प्रदान करती है।

(ई) कागज़ या गत्ते का काम

यह भी आंतरिक भावों को व्यक्त करने का एक सुन्दर साधन है। पैंसल, कागज, रंग, चाक और गत्तें की सहायता के साथ बच्चा सहज ही अपने भावों को व्यक्त कर सकेगा, और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का विकास हो सकेगा।

स्कूल में हाथ के कामों का आरम्भ शुरू की श्रेणियों से ही आरम्भ किया जाना चाहिए। प्रो. हार्न (Prof. Horn) का विचार है कि कला

की शुरू श्रेणियों के लिये भी उतना ही महात्त्व है, जितना कि बाद की श्रेणियों लिये। परन्तु दुःख तो इस बात का है कि कला ऐसे अध्यापकों की ओर से सिखाई जा रही है, जिन्हें पहले तो किसी कला का ज्ञान ही नहीं; दूसरे अगर कुछ ज्ञान है भी तो उसे प्रदान नहीं कर सकता, और कला को 'सिर आ पड़ी बला को गले लगाने' की तरह ही सिखाने का प्रयत्न करता है। कला तो एक ऐसा सुकोमल विषय है, जो कि बहुत ही समझदार अध्यापक के द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए।

सरांश यह कि दस्तकारी को उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए, जितना कि उसका महत्त्व जीवन में है। हाथ का काम एक सनक नहीं, यह तो रोटी का प्रश्न है, जिसका हरेक समाज में रोटी का ही इनाम है।

—:X:—

कांड ६

पाठान्तर क्रियाएं

१. पाठान्तर क्रियाओं का महत्त्व

आज यह अनुभव किया जा रहा है कि स्कूल केवल पढ़ाने, लिखाने एवं हिसाब सिखाने के ही केन्द्र न हों, बल्कि कल बनने वाले नागरिकों को भी उत्तम शिक्षा प्रदान करने वाले हों। केवल पुस्तकों तक सीमित पढ़ाई व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए पर्याप्त नहीं है, आज इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि बच्चे के पूर्ण विकास के लिए उसके मन मस्तिष्क और शरीर तीनों के विकास का पूरा ख्याल रखा जाए। केवल किताबी पढ़ाई ने किस प्रकार के मनुष्य पैदा किए हैं—आँखें अन्दर धसी हुई, दुनिया का कुछ भी पता नहीं; अपनी पुस्तकों के ज्ञान का वे हर रोज़ की जिन्दगी में व्यवहार नहीं कर सकते, अपनी चीज़ें स्वयं सम्भाल कर उठा नहीं सकते, अपने कमरे को सुन्दर बना नहीं सकते, हर काम में किसी का आश्रय तालाश करते हैं, कुछ करने के लिए उनके मन में उत्साह नहीं होता। अपने हाथों से काम करना

उन्होंने सीखा नहीं होता। उनके व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने दिया जाता। सो वे अर्धविकसित अवस्था में ही संसार में पदार्पण करते हैं। सो अच्छे नागरिक पैदा करने के लिए आज यह माँग की जा रही है है कि स्कूल सलेबस को विस्तृत करके, बच्चे के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित होने का अवसर प्रदान किया जाए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चे की सामाजिक रुचियों को भली प्रकार से विकसित करने के लिए स्कूल सब से उत्तम साधन है। जब बच्चे को उन्मुक्त छोड़ दिया जाता है, तब उन्हें अपने आप को व्यक्त करने और अपने आपको जानने के मौके मिल जाते हैं। इस प्रकार वह वास्तविक विद्या प्राप्त कर सकता है। बच्चों में सामाजिक रुचियाँ अत्यन्त प्रबल होती हैं, इसके लिए कई प्रकार की सभाएं बना लेगें, जिनका कि उनकी जिन्दगी पर अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार की खेलें और बच्चों के स्वयं-अविष्कृत काम स्कूल के सलेबल को शुष्क और नीरस होने से बचायेगा, और कई प्रकार के नैतिक गुण-जैसे कि मेल-मिलाप, आत्म-बलिदान, आत्म-विश्वास-पैदा करेंगे। इस प्रकार सलेबस से अधिक खेलों और कामों को उसी प्रकार सलेबस में स्थान देना पड़ेगा, जिस प्रकार कि जमैट्री या इतिहास को। वास्तविक सत्य तो यह है कि ऐसे कामों को सलेबस से अधिक कहना ही गलत है, यह तो सलेबस के आवश्यक अंक हैं, इनके बगैर तो सलेबस अर्थ-हीन सा हो जाता है।

२. पाठान्तर क्रियाओं के लाभ

अब हमें यह पता चल गया है कि सलेबस से अधिक खेलों और काम की महत्ती आवश्यकता है। अब यहां हम यह विचार करेंगें कि इनके खास-खास क्या लाभ है—

१. सामाजिक शिक्षा

बच्चे को अच्छा सामाजिक व्यक्ति बनाने के लिए, यह खेल और काम बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दे सकते हैं। वुड्रों विल्सन (Woodrow Wilson) ने एक बार कहा था–"बच्चे की सामाजिक ज़िन्दगी को विकसित करना ही विद्या का विशेष उद्देश्य है।' सामाजिक योग्यता जीवन के शिक्षण का एक बहुमूल्य रूप है। आवश्यकता है कि बच्चा दुनिया को समझ और जाँच सके, और दुनया में सुन्दर ढग से जीवन यापन कर सके। सलेबस से अधिक खेलों और कामों में विद्या के वास्तविक उद्देश्य को पूरा करने के काफी मौके मिलते हैं। स्वार्थरहित सेवा, भ्रतृ--भाव, सच्चा लोक-राज और मनुष्य पर विश्वास—ऐसे उद्देश्य हैं, जिन के प्रति बच्चों को उत्साहित करना चाहिए। भलो प्रकार से बच्चा तब ही समाज की सेवा कर सकता है, जब कि स्कूल में उसे सेवा के अवसर दिये जायें। दूसरे के विचारों को सहन करने का गुण, जो समाज में भली प्रकार से रहने के लिए अति आवश्यक है बच्चों में पैदा होगा। बच्चा अपनी दिलचस्पियों को दूसरो पर कुरबान कर सकेगा। सो इस प्रकार पाठान्तर क्रियाएं सामाजिक शिक्षा के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

(२) नागरिकता की शिक्षा

बच्चे को अच्छे नागरिक के कर्तव्य और उत्तरदायित्व की अच्छी शिक्षा देने के लिए इससे उत्तम और कोई ढंग नहीं हो सकता। अच्छे सामाचार बना कर, मेल-मिला के भाव पैदा करके बच्चे को अच्छा नागरिक बनने के लिए तैयार किया जाता हैं। यदि स्कूल का कुछ इस प्रकार का प्रबन्ध किया जाए जिस प्रकार से देश के राज्यों का किया जाता हैं, तब भविष्य के उत्तरदायित्वों को सम्भालने की बड़ी अच्छी शिक्षा दी जा सकती है। वह मेल मिलाप की बहुत बातें करते हैं। परन्तु

मेल मिलाप 'करनी' से ही आता है–'करनी' ही किसी चीज़ को पूर्णता प्रदान करती है। किसी विद्यार्थियों की कौंसिल या किसी खेल की टीम या क्लब का मैम्बर होना मेल मिलाप सिखाता है, क्योंकि अपने स्थान को बनाए रखने के लिए मेल मिलाप के इलावा और चारा ही नहीं होता। यह सामूहिक कार्य होते है, जहां विद्यार्थी के काम करने और प्रबन्ध करने की योग्यता की परीक्षा होती है, और यह काम अच्छी नागरिकता के लिए अच्छे भाव पैदा करते हैं। प्रबन्ध करने और प्रबन्ध कराने के लिए विद्यार्थी बहुमूल्य सबक सीखता है। उसकी कमजोरियों का नाश होता है। इस प्रकार वह एक अच्छे देश का निर्माण करने वाला एक अच्छा नागरिक बन सकता हैं।

(३) नैतिक शिक्षा

पाठान्तर क्रियाएं कई प्रकार के नैतिक आदर्शों को विद्यार्थियों के सन्मुख रखती है। यह विद्यार्थी की ज़िन्दगी के ऐसे पहलू है, जहां ज्ञान से अधिक चरित्र और व्यवहार को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें भी कोई सदेह नहीं कि इन खेलों के द्वारा भी कई प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो है, परन्तु इनका बौद्धिक की अपेक्षा नैतिक मूल्य अधिक होता है। ईमानदारी, सच्चाई, न्याय और पवित्रता जैसे गुणों की परीक्षा की जाती है, और इन्हीं गुणों से बहुत काम लिया जाता है। इन खेलों के द्वारा ही विद्यार्थी मतलब का काम करने और निर्णय करने के अवसर प्राप्त करता है; और आत्म-संयम के महत्व को अनुभव करता है। एक लेखक ने लिखा है—'विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा देने का सबसे उत्तम ढंग यह है कि उसको वास्विक जीवन में भाग लेना सिखाया जाए, क्योंकि नैतिक प्रयोगों के एक औंस का मूल्य, नैतिक शिक्षण अथवा नेकी सम्बन्धी एक पौंड के बराबर है। बच्चे में आत्म-संयम के भाव पैदा करना अत्यन्त आवश्यक है –और यह खेलों, स्कूल की सोसायटियो और बाहर से कई प्रकार भ्रमणों से पैदा किया जा सकता।

(४) अवकाश के समय के सदुपयोग की शिक्षा

इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि मनुष्य के समय समय के विचारों का वड़ा महत्व होता है। सो यदि अवकाश के समय के विचारों का इतना महत्व है, सो इस अवकाश के समय को सदुपयोग में लाने की शिक्षा देना भी अत्यन्त जरूरी है। जिस प्रकार काम के लिये अवकाश के समय का सदुपयोग करने के लिये भी शिक्षा की आवश्यकता है। यह शिक्षण सलेबस से अधिक खेलों और कामों से प्राप्त होता है। स्कूल के बाद की जिन्दगी के लिये अवकाश का समय एक भार नहीं रहेगा। वाक्तित्व का भली प्रकार से विकास करने के लिये भी यह काफी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। किताबी कीड़े कभी भी एक अच्छी सभ्यता के स्वामी नहीं हो सकते। बड़े-बड़े नेता इन श्रेणियों के कमरों का फल नहीं हैं, बल्कि खेलों के मैदानो के। सो इस लिये बच्चों में अच्छे और दिलचस्प शुगलों के लिये शौक पैदा करना चाहिए।

(५) नेतृत्व की शिक्षा

जैसे कि पहले बताया जा चुका है कि पुराने स्कूलों में अध्यापक का रौविला स्थान होने के कारण विद्यार्थी की कोई परवाह नहीं की जाती थी, परन्तु अब नेता पैदा करना भी स्कूलों के आवश्यक कर्तव्यों में से एक समझा जाता है। आज का अध्यापक सख्त भर्त्सना देने के स्थान पर एक नेक परामर्श दाता बनना पसंद करता है। वह विद्यार्थियों के लिये काम करके खुश होने के स्थान पर उसके साथ काम करके खुश होना चाहता है। अच्छी लीडरशिप के गुण —अपने आपको मौके के अनुसार ढालना, आत्म-विश्वास, दूरदर्शिता, चालाकी काम करके खुश होना, संतोष, बर्दाशत कर सकना, जोश; हौसला स्कूलों के सकीर्ण सलेबसों के द्वारा नहीं पैदा किए जा सकते। ऐसे

गुणों को पैदा करने के लिए हमें कक्षा से बाहर आना होगा। जब विद्यार्थी अपनी मर्ज़ी का काम चुनकर अपनी मर्ज़ी के साथियों के साथ काम कर रहा होगा, और अपने इच्छित परिणामों पर पहुंचेगा, तब उसमें नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण विकसित होंगे।

६. स्कूल में दिलचस्पी का बढ़ना

स्कूल के लिए भी पाठान्तर क्रियाओं के कई लाभ हैं। यह बच्चों में स्कूल के लिए प्यार पैदा करने में सहायक हो सकता है क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस की कोई सेवा करता है, उसको वह प्यार भी करने लग जाता है। यदि विद्यार्थी स्कूल के लिए कुरबानी करना सीख जायेंगे तो वह उसे प्यार करना भी सीख जायेंगे; और उसकी सफलताओं पर गर्व अनुभव करने लग जायेंगे। इसके अतिरिक्त, जितना ज्यादा विद्यार्थी स्कूल की भलाई में दिलचस्पी लेंगे, उतनी ही सहज अनुशासन स्थापित करने की समस्या हो हायेगी। यदि इन खेलों का भली प्रकार से प्रबन्ध किया जाए, तो स्कूल एक डरावनी जगह और अध्यापक 'हऊए' नहीं रह जायेंगे। यह खेलें अध्यापकों की विद्यार्थियों में दिलचस्पी बढ़ायेंगी, और इसलिए विद्यार्थी स्कूल में दिलचस्पी ले सकेंगे।

७. युवकों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति

इस प्रकार की खेलें और काम युवकों की स्वाभाविक रुचियों की तृप्ति का अवसर प्रदान करती हैं, उनकी नित प्रति दिन की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूर्ण करती हैं। बच्चे की अपने आपको बड़ा समझने की इच्छा पूरी होती है, और कई प्रकार की रुचियां इकट्ठा करने की, रोब डालने की, प्रश्न पूछने की, आदि को भी प्रकट होने के अच्छे अवसर मिलते हैं। युवकों के जीवन से सम्बन्धित कई प्रकार की

जटिलताओं को व्यक्त होने के लिए भी उचित निकास मिल सकता है।

पाठान्तर क्रियायों का चरित्र निर्माण में भी इतना भाग है कि इसे 'पाठान्तर' नहीं समझना चाहिए। बालक के व्यक्तित्व और मानसिक विकास के लिए यह बहुत अच्छा काम कर सकते हैं। इसलिए सलेबस के साथ-साथ इस प्रकार की कई खेलों को स्थान दिया जाना चाहिए, जिस में हर विद्यार्थी कुछ न कुछ भाग ले सके, ताकि वह मेल-मिलाप के साथ रहना, ठीक तरह से सोचना, उत्तरदायित्व को सम्भालसा, मन को दृढ़ करके शरीर को मज़बूत बनाना सीख सकें।

यहाँ पर एक यह बात भी स्पष्ट कर देनी चाहिये कि बहुत से ऐसे अध्यापक हैं, जोकि इस विचार के हैं कि यदि स्कूल खेलों के अखाड़े ही बन गए, तो पाय्ठ-पुस्तकों एवं सलेबस की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जा सकेगा। परन्तु यह लोग यह बिल्कुल भूल जाते हैं कि सलेबस सम्बन्धी कामों में पूर्णता लाने के लिए ही इन खेलों द्वारा पृष्ठभूमि तैयार की जाती है। इन पाठान्तर क्रियाओं के द्वारा पढ़ाई की शुष्कता कम हो जायेगी और पढ़ाई में किसी प्रकार की रुकावट आने की अपेक्षा उसमें उन्नति की ही अधिक सम्भावना हो जाती है।

इसके इलावा यह भी विचार है कि ये अतिरिक्त खेलें और काम, पहले से ही एक भार के नीचे दबे और अल्प वेतन पाने वाले अध्यापकों के सिर पर आवश्यकता से अधिक उत्तरदायित्व आ पड़ेगा। वे पढ़ाने के लिए आवश्यक तैयारी नहीं कर सकेंगे। परन्तु यह कठिनाई इस प्रकार से दूर की जा सकती है कि हरेक अध्यापक के लिए काम का हिस्सा कम कर दिया जाए, और अध्यापकों की संख्या भी बढ़ा दी जाए। यदि स्कूल केवल ज्ञान बेचने वाली दुकान ही नहीं बनना चाहती, तो यह कठिनाई बड़े सहज ढंग से दूर की जा सकती है।

अब हम कुछ ऐसी सभाएं, खेलों और कामों के बारे में विचार

करेगें, जोकि स्कूल में आरम्भ किए जा सकते हैं। कितनी पाठान्तर क्रियाएं स्कूल में आरम्भ की जा सकती हैं, और उन्हें किस प्रकार चलाया जाए—यह विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, अध्यापकों की दिलचस्पी और स्थानिक आवश्यकताओं पर निर्भर करेगा।

१. विद्यार्थियों की सभा

(Students Ccuncil)

विद्यार्थियों की सभा का प्रयोजन

विद्यार्थियों की सभा एक ऐसी सभा है, जोकि स्कूल की भलाई से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिए बनाई जाती है। इसका उद्देश्य स्कूल में नैतिक और विद्या-सम्बन्धी आदर्शों को उपस्थित कर, ऐसे साधन प्रस्तुत करने हैं जिनके द्वारा विद्यार्थी अपनी-अपनी आवश्यकताओं को पूरा करवा सकें, और स्कूल में एक ऐसा वातावरण पैदा हो सके, जिसमें कि स्कूल का हर खेल और काम सहज रूप से चल सके।

सभा का कार्यक्षेत्र

विद्यार्थियों की सभा के काम स्कूल में स्थापित किए हुए नैतिक आदर्शों पर निर्भर करेंगे। इस सभा को समस्त पाठान्तर क्रियाओं का निरिक्षण करना चाहिये। आरम्भ में छोटे छोटे कामों से लेकर बड़े २ काम सम्भालने को सामर्थ्य पैदा करना चाहिये।

प्रबन्ध

साधारणतया विद्यार्थियों की सभा में श्रेणियों और क्लबों की ओर से निर्वाचित किये हुए सदस्य होते हैं। इसका निर्वाचन बिल्कुल लोक राज के सिद्धांतों के अनुसार होना चाहिए। हाऊस सिस्टम (House

System) भी आरम्भ किया जा सकता है। इस सभा के अधिकार, कार्य और प्रतिबन्धों आदि का सदस्यों को भली प्रकार से पता होना चाहिए। हरेक स्कूल की सभा का अपना ही विधान होना चाहिए, और इस प्रयोजन के लिए अलग-अलग समितियां बनाई जानी चाहिएं।

विद्यार्थियों की सभा का महत्व

विद्यार्थी आत्म-संयम एवं स्वशासन सीखते हैं। वे काम करना सीखते हैं, क्योंकि वास्तविक परिस्थितियों के प्रयोग ही सब से योग्य अध्यापक हुआ करते हैं। विद्यार्थियों और अध्यापकों के सम्बन्ध अच्छे बनते है। मुख्य अध्यापक बड़े सहज रूप से जान सकता है कि भोले-भाले विद्यार्थियों के मन में क्या है। स्कूल वास्तव में समाज का प्रतिबिम्ब बन जाते हैं।

२. स्कूल की सभा

(The School Assembly)

स्कूल की सभा के प्रयोजन

डबल्यू. आर. स्मिथ (W. R. Smith) लिखता है कि स्कूल की सभा हर प्रकार के कार्यों का केन्द्र बन सकती है। यह मेल मिलाप भाव पैदा करती है, और सामूहिक रूप से रहना सिखाती हैं। सारे विद्यार्थियों और अध्यापकों के कभी कभी मिलते रहने से स्कूल के प्रति वफ़ादारी के भाव पैदा होते हैं।

स्कूल के प्रवन्ध के लिए भी यह सभा काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती है। मुख्य अध्यापक सारे स्कूल को एक ही बार सम्बोधन कर सकता है। आवश्यक सूचनाएं एवं नियमों को एक बार बता कर स्कूल को कस सूत्र में बाँधा जा सकता है। स्कूल की पत्रिका के बारे में स्कूल के विशेष उत्सवों (Functions) पर अच्छे व्यवहार के लिए

अपीलें ऐसी सभाओं में की जा सकती है। हाल में घटित विशेष घटनाओं के बारे में जिक्र किया जा सकता है। परन्तु ऐसी सभाओं में प्रबन्ध सम्बन्धी पहलूओं पर विशेष बल नहीं देना चाहिए। और न ही अनुशासन की समस्याओं अथवा विद्यार्थियों की त्रुटियों और कमजोरियों के बारे में विवाद करना चाहिए।

ऐसी सभाओं के अन्य अनेक लाभ हैं। विद्यार्थी पब्लिक जलसों में बैठना और ठीक व्यवहार करना सीखते हैं। विद्यार्थियों को आलोचना करने वाले स्रोताओं के सम्मुख विचार प्रकट करने आते हैं। कई प्रकार के गुण विद्यार्थियों में पैदा होते हैं, जो कि महज़ भाषण और उददेश देने से विद्यार्थियों में नहीं आ सकते। यह सभा अच्छे आचरण के लिए आदर्श स्थापित करती है। स्कूल की अस्त-व्यस्त ज़िन्दगी को एकता के सूत्र में बांधती है, और युवकों को जनतंत्र के अनुसार ढालती है। इसलिए इसे स्कूल के समय विभाग चक्र में यथायोग्य स्थान दिया जाना चाहिए।

स्कूल को सभा कौन बनाए ?

यदि स्कूल की सभा को लाभकारी एवं सफल होना है, तो अध्यापक और विद्यार्थियों को मेल-मिलाप से काम लेना चाहिए। एक समित बनाई जा सकती है जिसमें बहुत से विद्यार्थी हों और दो-एक अध्यापक। इस समिति को समस्त कार्यवाही का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है।

सभा का कार्यक्रम

सभा का कार्यक्रम अधिकतर स्कूल और उसके कामों से सम्बन्धित होना चाहिए। यदि कभी-कभी बाहर से भाषण देने वाले, गवैयों और नाटक खेलने वालों को बुला लिया जाए तो अच्छा है। अलग-अलग श्रेणियों की प्रतियोगताएं रखी जा सकती हैं। परन्तु यहां यह बात

स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि इन सभाओं के कार्यक्रमों का संचालन बड़ी अच्छी तरह से करना चाहिए। ऐसी सभाएं यदि हफ़्ते में एक बार हो जाएं तो अच्छा है।

३. भ्रमण तथा विहार

(Excursions and Parties)

नवीन अध्यापकों का कहना है कि यदि हम विद्यार्थियों को वास्तविक शिक्षा देना चाहते हैं, तो उसे अनुभवों और प्रयोगों के द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिए। केवल पुस्तक अध्यापन को ही सब कुछ नहीं समझाना चाहिए। इसलिए पूर्ण शिक्षा देने के लिए कई और साधनों की सहायता लेनी होगी। श्रेणियों के कमरों से बाहर खुले वातावरण में बहुत कुछ है

भ्रमण तथा विहार के प्रयोजन

यह लोगों के साथ भली प्रकार गुजारा करने के लिए कई प्रकार के सामाजिक गुण विकसित करता है। कुछ गुण ऐसे हैं—जैसे कि वफादारी, नेतृत्व की शक्ति, दूसरे की भावनाओं का ख्याल रखना, मेल मिलाप आदि—जिस की कि श्रेणी के कमरे, खेल के मैदान और सब जगह ही आवश्यकता है—परन्तु यह सारे गुण कभी भी पुस्तकों द्वारा प्राप्त नहीं किए जा सकते। यह गुण तो वास्तविक परिस्थितियों में पड़ कर ही सीखे जा सकते हैं। सच तो यह है कि परिस्थितियां ही ऐसी शिक्षा का साधन हो सकती हैं। बच्चा काम करना काम करके सीखता है। शिष्टचार के सिद्धांतों के बारे में क्लासों में चाहे कितना ही कुछ बताया जाए, पर इन सिद्धांतों के साथ अपने आप को सम्बन्धित करने पर ही यह भावना विकसित हो सकती है।

यह भ्रमण तथा विहार हमारे शरीर को भी पुष्ट करते है। पुस्तकें

हमें आरोग्यता के नियमों के बारे में बता सकती हैं, परन्तु एक आरोग्य शरीर को प्राप्त करने का सब से उत्तम ढंग यह है कि शरीर को प्रयोगों में से गुज़ारा जाए। इस प्रकार से भ्रमण और विहार शरीर को अच्छा बनाने के उत्तम अवसर प्रदान करते हैं।

इस के अतिरिक्त, यह विद्यार्थियों की दिलचस्पियों के क्षेत्र को विस्तृत करते हैं। चिड़ियाघर; आजायबघर और पुस्तकालयों का भ्रमण, नवीन दिलचस्पियों को जन्म देती हैं।

इन भ्रमण और विहार के कई लाभ हो सकते हैं यदि इनका ठीक प्रकार से प्रबन्ध किया जाए, यदि इसे श्रेणी के काम के साथ सम्बन्धित किया जाए, तो न केवल श्रेणी के काम में ही दिलचस्पी होगी, बल्कि वास्तविक कार्य जिसका कि सलेबस सम्बन्धी कार्यों में अभाव होता है वह भी प्राप्त हो सकेगा। कई चीज़ें, जैसे कि बैंकिंग; वाटर-सप्लाई आदि सीधे अपने प्रयोगों के द्वारा भली प्रकार से सीखे जा सकते हैं। कला का अध्यापक विद्यार्थियों को अद्वितीय सुन्दर कलात्मक भवनों झरने और चाँद की चाँदनी दिखाने ले जा सकता है। इतिहास का अध्यापक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों, एतिहासिक चलचित्रों और नाटकों को देखने के लिए ले जा सकता है। भूगोल का अध्यापक नदियों, झीलों फैक्टरियों, रेलवे स्टेशन आदि देखने के लिए ले जा सकता है। ऐसे विद्यार्थी जो प्रकृति-निरीक्षन के शौकीन हों, वे इर्द-गिर्द के खेत देखकर भिन्न-भिन्न दृश्यों से परिचित हो सकते हैं, भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधों को एकत्र कर सकते हैं, और पक्षियों तथा पशुओं के जीवन से परिचित हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, बच्चों के भ्रमण करने की रूचि को तृप्ति मिलती है। इस मनोवैज्ञानिक सत्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि बच्चा नवीन वस्तुओं एवं नवीन स्थानों को जानना चाहता है। इस प्रकार इस रूचि को भलि ओर प्रवृत किया जा सकता है।

भ्रमण के कार्यक्रम

भ्रमण का पहिले से ही भली प्रकार से कार्यक्रम बना लेना चाहिए, ताकि इसके द्वारा शिक्षा और खुशी-दोनों को ही प्राप्त किया जा सके। भ्रमण के लिए ही भ्रमण का कोई विशेष लाभ नहीं। अध्यापक के सम्मुख प्रयोजन बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए। किसी समय विशेष में स्थान विशेष पर क्या मिल सकता है, अध्यापक के लिए इतना जानना ही पर्याप्त नहीं; बल्कि भ्रमण के पूर्व के आरम्भिक कार्यों (Preliminary works) ने विद्यार्थियों को भली प्रकार तैयार किया होना चाहिए, और उनके सम्मुख कठिन समस्याओं को सुलझाने का दृष्टिकोण होना चाहिए। ऐसा विद्यार्थी जिन चीज़ों को देखने की उम्मीद करता है, यदि उनके बारे में कुछ जानना है, जिसने उस बारे में अपने दिल में अपने दिल में तस्वीर बना ली है, वह जिज्ञासा का भाव लेकर उसको देखने जाएगा। यदि विद्यार्थी को पहले से ही तैयार न किया जाए तो कई व्यर्थ और मामूली चीजें ही उसका ध्यान आकर्षित कर लेगी। सो इसके लिए यह बहुत अच्छा होगा कि बच्चों को कापियों में इसके बारे में पहिले ही लिखा दिया जाए।

जब विद्यार्थी देख रहे हों, तब भी उन्हें मार्ग पर डालने की जरूरत होती है। जरूरी नहीं कि सब से दिलचस्प चीज सब से ज्यादा महत्वपूर्ण हो। कई बार ऐसा होता है कि किसी विशेष वस्तु की ओर देखने के बावजूद ज़रूरी चीज पर अपेक्षित ध्यान नहीं जाता। इसके अतिरिक्त बेपरवाही और गफलत के साथ देखने से जो भ्रान्त धारण एं बन जाती हैं, उसे दूर करना बहुत कठिन हो जाया करता है। इसलिए आवश्यक है कि विशेष चीज़ों को देखने के लिए बच्चों को पहले तैयार किया जाए।

प्रबन्ध

भ्रमण के प्रबन्ध के लिए एक समिति बना ली जाए जोकि देखने

योग्य चीज़ों का निश्चय करें, प्रश्न बनाएं और पार्टी की दिलचस्पी को बढ़ाए। अध्यापक केवल एक पथ-प्रदर्शक ही रहे। समिति को यह ख्याल रखना चाहिए कि कितने विद्यार्थी जा रहे हैं, कितना समय लगेगा, किस स्थान पर ठहरना होगा, और कौन-कौन से स्थान देखने होंगे, भ्रमण का क्या प्रयोजन है, और इसका क्या फल होगा, हर विद्यार्थी पर कितना खर्च आएगा, किस-किस का धन्यवाद करना है, भोजन आदि का क्या प्रबन्ध है इत्यादि।

सरांश यह कि अगर भ्रमण की योजना ठीक प्रकार से बनाई जाए और भली प्रकार से प्रबन्ध किया जाए, तब यह विद्यार्थियों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

४. शुगल

(Hobbies)

लार्ड बरौमैन (Lord Broughman) ने एक जगह कहा है "वह मनुष्य बड़ा खुशकिस्मत है, जिसके कई शुगल हैं।" शुगल में समय व्यर्थ नहीं जाता, बल्कि यह तो उस समय को भली प्रकार उपयोग में लाता है, जोकि गप्पें हांकने में व्यर्थ जाता था। जिस काम में किसी की दिलचस्पी हो, उसको करने से एक प्रकार की मानसिक संतुष्टि मिलती है। इस में कोई शक नहीं कि किसी न किसी शुगल में पड़ना मनुष्य की कमज़ोरी है, परन्तु यह शुगल बिल्कुल हानीकारक नहीं, बल्कि इसके कई लाभ हैं। बेकार बने रहने से किसी न किसी शुगल में मस्त रहना हज़ार गुना अच्छा है। बेकार समय के, कम से मनुष्य के चरित्र का पता लगाया जा सकता है।

स्कूल में कई प्रकार के शुगल आरम्भ किए जा सकते हैं—जैसे कि टिकट इकट्ठे करना, फोटोग्राफी, पुराने सिक्के इकट्ठे करना, बागबाना

आदि। जिस विद्यार्थी को फोटोग्राफी में दिलचस्पी हो वह भूगोल में काफी उन्नति कर सकता है। बागबानी का शुगल भी बहुत लाभ-दायक है—विद्यार्थी काम करके काम करना सीखेगा। प्रकृति-निरीक्षण भूगोल और बनस्पति का ज्ञान प्रदान करने के लिये बागबानी पर्याप्त सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इसीलिये वार्धा योजना में बागबानी को विशेष स्थान दिया गया है। सच तो यह है कि शुगल हमारे अवकाश के समय को खुशी से भरते हैं, और साथ ही हमारे ज्ञान से वृद्धि करते हैं।

५. स्कूल-पत्रिका

(School Magazine)

स्कूल पत्रिका विद्यार्थियों और अध्यापकों, बच्चों के सरक्षित और अध्यापक को जोड़ने का बहुत अच्छा साधन है। अलग–ललग स्कूलों के सम्बन्ध भी अच्छे बनते हैं। स्कूल की प्रसिद्धि होती है। कुछ को लिखने और लीडरशिप की बहुत अच्छी शिक्षा मिलती है, अन्य को कई और लाभ होते हैं। इसका सम्बन्ध अधिकतर कका और सहित्य से होता है, इसलिए अलग अलग रूचि वाले विद्यार्थियों को अपनी रूचि तृप्त करने के कई अवसर मिलते हैं।

सम्पादक-मण्डल का निर्वाचन बड़े ध्यान से करना चाहिए। स्कूल-पात्रिका के लिए अध्यापकों का पथ-प्रदंशस अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इस बात का रुयाल रहना चाहिए कि पत्रिका स्कूल की होनी चाहिए, स्टाफ़ की नहीं। श्रेणी की हर प्रकार की रूचियों क ।पत्रिका में पूरा स्थान मिलना चाहिए !

६. खेलें

(Athletics and games)

खेलों के प्रयोजन.

खेलों को मनुष्य की शिक्षा का एक बहुत आवश्यक अंग समझा जाता है। क्योंकि यह खेलें बच्चों में उन गुणों का संचार करती हैं जो केवल पुस्तकों से कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह बच्चे को शारीरिक और नैतिक अनुशासन में रहने के अवसर देकर उनमें उत्साह, आत्मसयंम और वफ़ादारी को गुण पैदा करती हैं। खेल के मैदान को जन-तन्त्र का पालन कहा गया है। इसीलिए कहा गया था कि वाटरलू की लड़ाई इटन (Eton) के मैदानों में जीती गयी। इन का मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व के विधान के लिए खेलें काफी सहायक सिद्ध होती है। तो हम कह सकते हैं कि खेलों के कई शारीरिक सामाजिक और विद्यासम्बन्धी लाभ हैं।

खेलों का प्रबंध और नीरक्षण

यदि हम चाहते है कि खेलों के लाभ हमें प्राप्त हो सकें तो अध्यापक के निरक्षण की बहुत आवश्यकता है। अध्यापक को चाहिए कि शिक्षा के स्थान और समय, दूसरी टीमों के साथ मुकाबले, पैसा इकट्ठा करने के ढंग और नियम बनाने में पूरी सहायता करे।

स्कूलों का यह कर्तव्य है की हर एक विद्यार्थी की रीति अनुसार हर बच्चे को खुले अवसर प्रदान करे। शारीरिक शिक्षण के लिए एक योग्य अध्यापक का होना अति आवश्यक है। (इस बारे में शारीरिक शिक्षण वाले अध्यय में पर्यप्त प्रकाश डाला जा चुका है)

७. स्काउटिंग और गर्लगाइडिंग

(Scouting and Girl Guiding)

प्रयोजन.

पाठान्तर क्रियाओं में स्काउटिंग और गर्लगाइडिंग बड़ा महत्त्व रखते हैं। नवयुवकों और नवयुवतियों को अच्छा बनाने का यह सब से उत्तम ढंग है कि उन्हें अच्छे कामों के लिए प्रेरित किया जाये। यह बच्चों में वफादारी, सम्मान और सेवा के भाव का संचार कर सकते हैं। और बच्चों को अचानक आ पड़ी जरूरतों के लिए तैयार करते हैं। युवकों की भ्रमण करने की रुचि भी सन्तुष्ट होती है। डाक्टर एल० डी० काफमैन (Dr. L. D. Coffman) का विचार है कि बेशक स्काउटिंग की जो कोई पेशा तलाश करने में सहायक सिद्ध नहीं होती, फिर भी यह सक्रियता की भावना को पैदा करती है। यह किसी प्रकार की बैर की भावना को पैदा नहीं करती, बल्कि जगत के साथ चलना सिखती है। इस में किसी प्रकार का बन्धन नहीं, पर आत्म सयम करना सिखाती है। यह कोई लम्बे चौड़े लकच रनहीं झाड़ती, पर किसी प्रयोजन के लिए वफादारी के साथ काम में जुटना सिखती है। इस में कोई धार्मिक सिद्धांत नहीं, फिर भी धर्म की महनता पर जोर दिया गया है।

बेशक स्काउटिंग और गर्लगार्डिंग परीक्षा के विषय नहीं फिर भा स्कूलों के प्रबन्धकों को चाहिए कि इस ओर पूरा ध्यान दें

—:x:—

कांड १०

श्रेणियों का वर्गीकरण

(Classification and Promotion of Pupils)

१. श्रेणियों का वर्गीकरण आवश्यक क्यों ?

एक स्कूल के अच्छे प्रबन्ध का केन्द्र श्रेणियों का अच्छा वर्गीकरण होता है। एक अच्छी श्रेणी केवल अपनी मर्जी से एकत्र किये हुए बच्चों का समूह नहीं होती, बल्कि श्रेणी के सदस्यों की योग्यता के मानदण्डों का लगभग एक होना बहुत जरूरी है। बच्चों की बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक, एवं भावत्मक रूचियों और आवश्यकताओं में एक रूपता होती भी आवश्यक है।

श्रेणियों का वर्गीकरण एक बहुत आवश्य और कठिन-सी समस्य है। कठिन इसलिए कि कई प्रकार के जटिल प्रवृत्ति के बच्चों को एक विशेष श्रेणी में भरती नहीं किया जा सकता। विशेष कर आज की दुनिया में, जब कि शिक्षा को अधिक से अधिक मनोवैज्ञानिक बनाने के यत्न किए जा रहे हैं और बच्चें के व्यक्तित्व को पर्याप्त महत्व प्रदान किया जाता है।

परन्तु भले ही इस वर्गीकरण में अनेकानिक दोष है और भले ही शिक्षा प्रदान करने के लिए इसे उड़ा दिया जाए, परन्तु प्रबन्ध-सम्बन्धी कामों के लिए इसे उतनी देर के लिए रखना पड़ेगा, जब तक कि कोई और इस से अच्छा सिस्टम नहीं मिलता।

२. वर्गीकरण के लाभ

(१) जैसे कि ऊपर भी बतामा जा चुका है कि श्रणी केवल बच्चों का समूह नहीं होती, बल्कि बच्चों की दिलचस्पियां भी साँझी होती हैं। दिलचस्पियों के सांझी होने से ही उन्हें काम करने का उत्साह मिलता है। हरेक बच्चा अपने काम को दूसरे काम से जांचता हैं। इस प्रकार मेल मिलाप और प्रतियोगिता के कारण से काम अच्छी तरह से करने की प्रेरण मिलती है। स्कूल की अपनी ही एक समाजिक जिन्दगी होती है और यह बच्चों को बहुत अच्छी शिक्षा दे सकती है। और श्रेणी इस समाज में एक सभा होता है; जब बच्चा इस छोटी सी सभा में मेल-मिलाप के साथ नहीं रह सकता, तब वह अनेक जटिलताओं से भरी दुनियां में जहां कि मेल-मिलाप से रहना अत्यन्त आवश्यक है, किस प्रकार रह सकेगा। सो इस श्रेणी में रहने से बच्चा एक सामाजिक जीव बन सकेगा। वह अपनी दिलचस्पियों को श्रेणी के लिए कुरबान करना सीखेगा और इस प्रकार समाज, देश और जाति के लिए कुरबानियां देने के लिए तैयार हो सकेगा।

(२) सामूहिक शिक्षण में एक ही तरह की गलतियो को इकट्ठे ही दूर किया जा सकता है। इस प्रकार समय की बच्चत हो सकती है।

(३) कक्षा शिक्षणविधि द्वार पैसे और समय की बच्चत हो जाती है। यदि विद्यार्थियों को अलग अलग पढ़ाने की विधि अपनाई जाए तो पढ़ाई बहुत महगी पड़ेगी और कई अच्छे कामों की ओर ध्या नहीं दिया जा सकेगा। परन्तु कक्षा शिक्षणाविधि द्वारा एक अध्यापक एक

समय में लगभग बीस विद्यार्थियों को पढ़ा सकता है। इस प्रकार समय और पैसे की बहुत बच्चत हो सकती है।

(४) कुछ ऐसे विषय हैं—जैसे कि इतिहास, संगीत और धार्मिक शिक्षा —जिनमें जितने ज्यादा विद्यार्थी हों, उतने ही अच्छे पढ़ाए जाते हैं। सो इस प्रकार के विषयों के लिए कक्षा शिक्षणाविधि बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

(५) इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि विद्यार्थी अपने अध्यापकों से अधिक अपने साथियों से सीखते हैं। कक्षा शिक्षण-विधि में विद्यार्थियों को खुली तरह से मिलने के अवसर मिलते हैं। इस प्रकार वह अपने साथियों से बहुत कुछ सीख सकता है।

३. वर्गीकरण के दोष

( ) कक्षा शिक्षणपद्धति इस विचार से आरम्भ की जाती है कि कक्षा के कामों में विद्यार्थियों की पारस्परिक भिन्नता कोई अर्थ नहीं रखती और किसी एक परिस्थिति में सारे विद्यार्थी एक सा ही काम करेंगें और एक ही रफ्तार से उन्नति करेंगें। परन्तु यह बात सच्चाई पर पूरी नहीं उतरती। एक ही श्रेणी में अनेक प्रकार के विद्यार्थी होते हैं उनमें से कोई गणित में होशियार होता है, कोई विज्ञान में; कोई कला में सिद्धहस्त हो चाहेगा, तो कोई साहित्य में कोई चुस्त होगा, तो कोई कमजोर और सुस्त; कोई समझदार होगा तो कोई बुद्धू। सो कक्षा शिक्षणाविधि में बच्चे के व्यक्तित्व की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया जा सकेगा। बच्चों को अलग-अलग पढ़ाने से बच्चों के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित किया जा सकता है। इकट्ठी पढ़ाई में केवल रट्टे पर ही जोर दिया जाएगा, परन्तु हरेक बिद्यार्थी को अलग-अलग पढ़ाने से उनमें सोचने, अनुभव करने और काम करने के गुण पैदा किए जा

सकते हैं, और बिना किसी कारण के अपनी दिलचस्पियों को बहुतों के लिए कुरबान करने के लिए वह विवश नहीं होगा।

(२) कक्षा में अध्यापक अपनी पढ़ाने की विधि को साधारण विद्यार्थी के लिए उपयोगी बनाने का यत्न करता है। परन्तु कोई भी बालक सब ओर से साधारण नहीं हुआ करता चाहे सारी क्लास एक सी ही क्यों न हो, उसमें कोई साधारण विद्यार्थी नहीं होता। सच तो यह है कि कोई दो बालक बुद्धि, योग्यता, शक्ति, रूचि एवं प्रवृत्तियों में एक से नहीं होते। इस प्रकार अध्यापक जो साधारण बौद्धिक भोजन हरेक विद्यार्थी को होता है, वह किसी को भी ठीक नहीं बैठती। इसी कारण से योग्य विद्यार्थियों को पीछे रहने के लिए विवश होना पड़ता है और अयोग्य विद्यार्थियों को व्यर्थ ही आगे खींचने का प्रयत्न किया जाता है। यदि अध्यापक अपना ध्यान योग्य विद्यार्थियों की ओर दिए रहता हो, तो अयोग्य को अपने सामर्थ्य से अधिक काम करने के लिए विवश किया जाता है। इस प्रकार उन पर कई प्रकार का शारीरिक और बौद्धिक भार लद जाता है और यदि अध्यापक कमजोर और अयोग्य विद्यार्थियों की ओर ध्यान देता है, तो डर से कि थोड़ी देर बाद कहीं योग्य भी लालायिक न बन जाएं। बच्चों का अलग-अलग पढ़ाने पर इस प्रकार का कोई खतरा नहीं होता।

(३) कक्षा शिक्षण-पद्धति में अलग-अलग विद्यार्थी अध्यापक के यत्नों से पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकता, क्योंकि यह प्रयत्न अलग-अलग विद्यार्थियों के आवश्यकताओं के अनुसार तोड़-मरोड़ने पर बिल्कुल व्यर्थ हो जाते हैं। सुल्तान मुहितुद्दीन (Sultan Mohiyuddin) के शब्दों में—"यह तो बाल्टी से अलग अलग आकार के मुंह वाली बोतलों में पानी डालने के समान है, कुछ बोतलों से अधिक पड़ जाता है और कुछ में कम और बहुत-सा व्यर्थ ही जाता है।

परन्तु अलग-अलग पढ़ने की विधि में अध्यापक को अपने पढ़ाने के बदले में काफी तसल्ली मिल जाती है। पढ़ाते समय बच्चे की कठिनाइयों को समझ कर उसे दूर करने का यत्न करेगा, और उसे इस बात का यकीन हो सकेगा कि विद्यार्थी उसकी बातों को समझ रहा है कि नहीं। आवश्यकता अनुसार अपने पढ़ाने के ढंग बदल सकता है। कक्षा शिक्षण पद्धति की अपेक्षा अधिक विद्यार्थियों की सहायता कर सकेगा। अलग-अलग पढ़ाने की पद्धति में अध्यापक को काम तो काफ़ी करना पड़ेगा, परन्तु इस काम के कई लाभ भी हैं।

(४) कक्षा शिक्षण-पद्धति में विद्यार्थियों की पारस्परिक भिन्नता के बारे में कोई ख्याल नहीं रखा जाता और सब विद्यार्थियों को एक विशेष समय तक एक विषय-विशेष को पढ़ना पड़ता है। परन्तु ऐसा हो सकता है कि कई विद्यार्थियों को इतिहास के लिए कम समय की आवश्यकता हो और भूगोल के लिए ज्यादा और बहुतों को भूगोल के लिए कम समय की आवश्यकता हो और इतिहास के लिए ज्यादा, परन्तु कक्षा शिक्षण-पद्धति में सब को इकट्ठा ही चलना पड़ता है।

(४) श्रेणियों का आकार कितना हो ?

अब हमें यह पता लग गया कि कक्षा शिक्षण पद्धति और वैयक्तिक शिक्षण पद्धति के अपने अपने लाभ हैं। कक्षा शिक्षण पद्धति का इसलिए अधिक प्रचलन नहीं हैं कि इसमें कम खर्च होता है, बल्कि शिक्षण-पद्धति के साथ वैयक्तिक शिक्षण-पद्धति का भी समिश्रण किया जाए। अथवा श्रेणियां इतनी छोटी बना देना चाहिएं कि हर अध्यापक विद्यार्थियों को समीप से देख कर उन्हें जान सके, उनके स्वभाव, रुचियों और दिलचस्पियों से परिचित हो सके। सो होना ऐसा चाहिए कि दोनों का संमिश्रण करके दोनों के लाभ को प्राप्त किया जाए।

श्रेणियों का आकार निश्चित करने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

१. दर्जा

(Grade)

श्रेणी का आकार स्कूल के दर्जे पर निर्भर करेगा—कि यह प्रइमरी, मिडल या हाई स्कूल है। यदि प्राइमरी स्कूल हो तो श्रेणी के विद्यार्थियों की संख्या मिडल अथवा हाई स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या से कम होनी चाहिए, क्योंकि शुरु की श्रेणियों में हरेक बच्चों पर अलग-अलग ध्यान देने की आवश्यकता होती है। सो इसलिए २५ विद्यार्थियों से अधिक विद्यार्थी नहीं होने चाहिए। परन्तु मिडल और हाई स्कूल की श्रेणियों में ३० या ३५ तक संख्या जा सकती है।

२. शिक्षण के विषय

(Subject Taught)

श्रेणी का आकार पढ़ाए जाने वाले विषयों पर भी निर्भर करेगा। जिस प्रकार कि पहले भी बताया जा चुका है। कुछ ऐसे विषय हैं, जो भावनाओं को स्पर्श करते हैं; जैसे कि संगीत, कविता और धार्मिक शिक्षा। इन विषयों के लिए श्रेणियों का आकार बड़ा रखा जा सकता है। परन्तु ऐसे विषय जहां कि कुछ वास्तविक कार्य करना होता है, वहां छोटी श्रेणियों का होना आवश्यक है।

३. अध्यापक का व्यक्तित्व

(Personality of the Teacher)

शिक्षा में अध्यापक के व्यक्तित्व का भी अपना ही महत्त्व है। एक

अनुभवरहित अध्यापक को बड़ी श्रेणियां नहीं देनी चाहिए, वे विशेष योग्य अध्यापक को देनी चाहिए।

(४) श्रेणियों के कमरे का आकार

(Size of the class room)

श्रेणियों के कमरों के आकार का ख्याल रखना, हर हालत में आवश्यक है। यदि कमरे में ३५ विद्यार्थियों के बैठने के लिए स्थान ही न हो, तो फिर श्रेणी ३५ विद्यार्थियो की कैसे बनाई जा सकती है।

५ प्रयोजन

(Purpose)

किम प्रयोजन के लिए श्रेणियां बनाई गयी हैं—आकार निश्चित करते समय यह भी एक विचारणीय विषय है। यदि श्रेणियां पढ़ने के लिए बनाई गयी हैं तो संख्या स्वाभाविक रूप से कम होगी, यदि श्रेणी प्रबन्ध सम्बन्धी कामों के लिए बनाई गयी हो तो संख्या ज्यादा रखी जा सकती है।

५. (श्रेणियों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाय)

श्रेणियों के वर्गीकरण के लिए कई प्रकार की बातों का ख्याल रखना आवश्यक है—

१. आयु

(Age)

कई बच्चों की आयु के अनुसार श्रेणियों के वर्गीकरण के हक में हैं। परन्तु कई प्रकार के बच्चे होते हैं-योग्य और अयोग्य भी; होनहार भी और पिछड़े हुए भी, आयु अपने आप से कुछ भी नहीं बताती कि

बच्चे ने स्कूल के पाठ में कितनी उन्नति की है, और भविष्य में क्या उन्नति कर सकता है । कई बच्चे पढ़ाई में अपनी आयु की अपेक्षा अधिक होशियार होते हैं और कई पिछड़े हुए । सो आयु के अनुसार श्रेणियों का वर्गीकरण करने में कई कठिनाइयां हैं ।

२. मानसिक आयु

(Mental Age)

श्रेणियों के वर्गीकरण के लिए कई बार मानसिक आयु का भी ख्याल रखा जाता है ! स्कूल में प्रविष्ट होते समय बालकों की मानसिक आयु का विचार करना, विशेष रूप से लाभकारी है। प्राइमरी स्कूल में प्रविष्ट करते समय तो इसका महत्व असंदिग्ध ही है, क्योंकि इस समय बालक के पहले से ही प्राप्त ज्ञान की परीक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता और इस प्रकार की बेसिक परीक्षाएं (Intelligence Test) बालक की वास्तविक प्रतिभा की जांच करती हैं, और प्राप्त किए हुए ज्ञान को विशेष महत्व नहीं देती, परन्तु प्राइमरी क्लासों से ऊपर, केवल बेसिक की श्रेणियो के वर्गीकरण के लिए पर्याप्त नहीं हैं । प्राइमरी क्लासों में तो प्राप्त किए हुए ज्ञान की अपेक्षा साधारण-बुद्धि को अधिक महत्व दिया जाता है, और उच्च श्रेणियों में प्राप्त किये ज्ञान और साधारण बुद्धि दोनों की महत्व देना चाहिए ।

(३) स्कूल के विषयों में प्राप्त की हुई योग्यता के अनुसार भी श्रेणियों का वर्गीकरण लाभकारी सिद्ध हो सकता हैं । विद्यार्थी की हर विषय में परीक्षा ले ली जाए—और इसी प्रकार श्रेणियों का वर्गीकरण किया जाय । बहुत ही अच्छा हो अगर इन परीक्षाओं के साथ-साथ बौद्धिक परीक्षाएं भी ली जाएँ ।

(४) श्रेणियों के वर्गीकरण में लचक का होना अत्यन्त आवश्यक है । यह पहले भी बताया जा चुका है कि कोई भी दो बालक एक स्वभाव

के नहीं हो सकते। इस प्रकार दो मार्ग अपनाये जा सकते हैं–पढ़ाई के दो-दो या चार से अधिक कोर्स रखे जाएं, परन्तु काम आवश्यकता-अनुकूल विद्यार्थियों की शक्ति अनसार किया जाए; या एक ही कोर्स रख लिया जाए, परन्तु योग्य विद्यार्थियों को तो जल्दी–जल्दी काम कराया जाए, और सुस्त तथा कमज़ोर को समय ले कर। इंगलैंड में पहला मार्ग अपनाया जाता है। वहां ग्यारह साल के बच्चों को तीन हिस्सों में बांट लिया जाता है, और वास्तविक प्रतिभा और प्राप्त किए हुए ज्ञान के अनुसार उन्हें तीन भिन्न प्रकार के स्कूलों में बांट दिया जाता है। और उन तीनों स्कूलों में अलग-अलग प्रकार की शिक्षा दी जाती है। योग्य विद्यार्थियों के लिए पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है, और ऐसे विद्यार्थी जो साधारण स्तर से भी नीचे हैं उनके लिए वास्तविक काम पर ज़ोर दिया जाता है। ज्यों-ज्यों बच्चे उन्नति करते जाते हैं त्यों-त्यों उन्हें एक स्कूल से निकाल कर दूसरे स्कूल में डाल दिया जाता हैं। इस ढंग को अपनाने से अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों की संख्या भी कम हो जाती है, और सबके लिए एक ही मानदण्ड रखने की हानियाँ भी दूर हो जाती हैं। अनेकों का विचार है कि अयोग्य निद्यार्थियों को योग्य विद्यार्थियों से पृथक कर देने पर अयोग्यों को योग्य बनने की प्रेरणा ही नहीं मिल सकेगी। परन्तु यह साधाणतया देखा गया है कि साधारण स्तर से नीचे के बच्चे अपने से बहुत से उच्च विद्यार्थियों से कभी प्रेरणा नहीं ले सकते। वह अपने से कुछ आगे विद्यार्थी के ही अनुरूप बनने का प्रयत्न करता हैं, जिसे अगर वह चाहे तो पछाड़ भी सकता है। सो यह ढंग बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है परन्तु साथ ही थोड़े-थोड़े समय के बाद परीक्षाएं होनी चाहिएं और फिर नये सिरे से श्रेणियों का वर्गीकरण होना चाहिए।

(अ) श्रेणियों की उन्नति

(Promotion)

अब प्रश्न यह उठता है कि विद्यार्थियों को एक कक्षा से दूसरी कक्षा में कैसे चढ़ाया जाए। कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें कक्षा चढ़ाते समय ध्यान में रखना चाहिए।

१. श्रेणियों की उन्नति के लिए ध्यान-योग्य सूचनाएं

(१) केवल एक परीक्षा के परिणामों से ही विद्यार्थियों को अगला कक्षा में नहीं चढ़ा देना चाहिए, वल्कि विद्यार्थी के सारे वर्ष के काम की जाँच करके ऐसा करना चाहिए।

(२) बच्चे के सम्मुख विशेष मानदण्ड स्थिर कर देने चाहिएं, जिनके द्वारा बच्चा अपने रोज़ के कार्य को जाँच सके। बच्चे से उसके अपने काम की आलोचना कराई जाए, उससे अपने काम की कमज़ोरियां पूछी जाएँ, और इन सब चीजों का ख्याल करके उसे अपनी प्राप्त की हुई योग्यता का रिकार्ड रखने के लिए कहा जाए।

(३) बच्चे के सरक्षकों को ऐसी रिपोर्टें भेजी जानी चाहिएँ कि उन्हें बच्चे की उन्नति के बारे में पूरा परिचय दिया जाए और साथ ही पीछे रहने से बचने के लिए उपाय भी सुझाए जाएं। कक्षा चढ़ाने के सम्बन्ध में सरक्षकों और अध्यापकों में किसी प्रकार का झगड़ा नहीं होना चाहिए। सरक्षकों और अध्यापकों में कुछ इस प्रकार के सम्बन्ध होने चाहिए कि कक्षा चढ़ाने को कभी भी लिहाज़ का मामला न समझा जाए। सच्ची बात तो यह है कि दोनों के मध्य बच्चे के बारे में एक ही सम्मति का होना आवश्यक है।

(४) अध्यापक का केवल इतना ही काम नहीं कि वह बच्चे के कामों की आलोचना ही करे, बलिक उसे चाहिए कि त्रुटियों को तलाश

कर विद्यार्थी को उन्हें दूर करने के ढंग बताए। ऐसा अध्यापक जो वर्ष भर में बच्चों की ग़लतियों को नहीं तलाश कर सकता, और उनके साथ मिल कर उन्हें दूर नहीं कर लेता, और जो अन्त में यही कहने के लिए विवश हो जाता है कि बच्चे का काम उन्नति के योग्य नहीं—ऐसे अध्यापक पर निर्णय की समस्या बिल्कुल नहीं छोड़नी चाहिए।

कक्षा चढ़ाने के मामले में बच्चे को संदेह में रखना बिल्कुल ठीक नहीं। वह भली प्रकार काम करने के स्थान पर केवल रट्टे ही लगाएगा। किए हुए काम के लिए पुरस्कार इतना निश्चित, और इतनी शीघ्र मिलना चाहिए कि बच्चा संदेह की स्थिति में न रहने पाए। सांराश यह कि सख्त नियमों के स्थान पर लचकदार नियम होने चाहिएं और कक्षा चढ़ाते समय सहानुभूति से काम लेना चाहिए।

२. श्रेणियों की उन्नति के लिये परीक्षाएं

यद्यपि पुरानी परीक्षाओं के कई लाभ हैं, परन्तु निम्नलिखित कारणों से इन्हें कक्षा चढ़ाने के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता—

(१) यह योग्यता को नापने के लिए कोई विश्वासनीय ढंग नहीं। इसमें बच्चे की उस समय की शारीरिक और मानसिक स्थिति का कोई ख्याल नहीं किया जाता। और परीक्षा के मापदण्डों में भी पर्याप्त मतभेद रहता है।

( ) यह परीक्षाएं वास्तविक ज्ञान को जाँचने की अपेक्षा ऊपरी ज्ञान को ही, जो कि रट्टे द्वारा प्राप्त किया जाता है जांचती हैं। यह तो केवल एक आँखमिचौली की सी खेल होती है, जिसमें विद्यार्थी की यही कोशिश रहती है कि अध्यापक द्वारा दिए हुए प्रश्नों को तैयार किया जाए। सो इस प्रकार वास्तविक तथा सच्चे ज्ञान के लिए प्यार नहीं पैदा किया जा सकता।

(३) यह परीक्षाएं काम करने की प्रेरणा भी विद्यार्थियों को नहीं।

देती जिसकी कि विद्यार्थियों को बहुत आवश्यकता होती है।

(४) शरीर पर भी इन परीक्षाओं का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

श्रेणियों की उन्नति के प्रकार

कक्षा चढ़ाने की छः क़िस्में हैं—वार्षिक, षष्मासिक, त्रैमासिक। वार्षिक के साथ-साथ निश्चित समय से पूर्व उन्नति देना, विषयों की उन्नति के अनुसार उन्निति देना, और शर्त लगा कर कक्षा चढ़ाना।

१. वार्षिक उन्नति और उसके लाभ

आज तक एक वर्ष बाद ही कक्षाएं चढ़ाने का रिवाज़ प्रचलित है। इन पर न केवल कम ही खर्च होता है बल्कि इनका प्रबन्ध करना भी सहज है। इनके लिए न ही उच्च श्रेणियों के कमरों की आवश्यकता पड़ती है; और ना ही बहुत से अध्यापकों की। पढ़ाने वाले विषयों का भी भली प्रकार से प्रबन्ध किया जा सकता है। अध्यापक के पास एक ही विद्यार्थियों का समूह काफी देर तक रहता है, इस प्रकार वह उन की आवश्यकताओं से भली प्रकार परिचित होकर, आवश्यकताओं के अनुसार ही अपने काम करने के ढंग को तोड़ मरोड़ सकेगा।

वार्षिक उन्नति की हानियाँ

वार्षिक उन्नति की सब से बड़ी हानि यह है कि यदि कोई विद्यार्थी एक विषय में फेल हो जाता है तो उसे व्यर्थ ही सारे विषयों को फिर से दुहराना पड़ता है। फिर से दुहराने पर विषय रूखा-सा हो जाता है और फल यह होता है कि अंत में उस विषय के लिए नफ़रत पैदा हो जाती है। इस के अतिरिक्त कक्षा में रोक रखना, अपने काम में उन्नति करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं करता।

२. षष्मासिक उन्नति

थोड़े समय बाद उन्नति देने पर, बच्चों को अधिक काम करने के

लिए अधिक प्रेरणा मिल सकती है। सलेबस को भी बच्चों की आवश्यकताओं के अनुकूल किया जा सकता है। यह उन्हें उन्नति के अवसर प्रदान करता है, क्योंकि थोड़े-थोड़े समय बाद उन की उन्नति का मूल्यांकन किया जाता है। यह शिक्षणपद्धति अमरीका के लग-भग चालीस प्रतिशत नगरों के लिए अपनाया गया है।

३. त्रैमासिक उन्नति

कुछ विद्वानों का विचार है कि त्रैमासिक उन्नति बहुत लाभदायक हो सकती है। वर्ष को चार भागों में बांटा जा सकता है, और जो बच्चे किसी विशेष भाग में संतोषजनक काम करें, उन्हें अगली कक्षा में चढ़ा देना चाहिए। परन्तु जिन्होंने साल के उस भाग में भली प्रकार काम न किया हो, वे यही काम दुबारा करें। इस प्रकार सारे वर्ष के काम को दोहराने से विद्यार्थी बच सकता है।

४. वार्षिक के साथ-साथ निश्चित समय से पूर्व उन्नति देना

यह ढंग भी बड़ा लाभदायक हो सकता है। साधारण विद्यार्थी को साल बाद अगली श्रेणी में चढ़ाया जा सकता है। और योग्य विद्यार्थियों को थोड़े-थोड़े समय के बाद उन्नति दी जा सकती है। इस ढंग का यह लाभ होगा कि अयोग्य विद्यार्थी को यों ही उन्नति नहीं दी जाएगी; और योग्य विद्यार्थी को पीछे रहने के लिए विवश नहीं होना पड़ेगा। साधारण योग्यता वाले बालक को दुहराई का काफी समय मिल जाएगा, योग्य और परिश्रमी बालक भी अगले कक्षा में चढ़ाया जाने के कारण से उत्साहित होंगे।

५. विषयों को उन्नति के अनुसार कक्षा चढ़ाना

कई विद्वानों का विचार है कि कक्षा विषयों में उन्नति के आधार पर

चढ़ाई जानी चाहिए। जैसेकि, कोई विद्यार्थी इतिहास और भूगोल में बहुत योग्य है, उसे उस कक्षा में चढ़ाया जाए जिस के लिए उसे ठीक समझा जाए। और बाकी विषयों का कोई विशेष ख्याल न रखा जाए। इस प्रणाली के कई लाभ हो सकते हैं। विद्यार्थी जिस विषय में दिलचस्पी रखता है, उसमें पूर्णता प्राप्त करने का यत्न करेगा, और उसे एक या दो विषयों में कम ज्ञान रखने के कारण पीछे रहने के लिए विवश नहीं होना पड़ेगा। परन्तु इस ढंग की कई हानियां भी हैं। यदि अलग-अलग विषयों को बिल्कुल ही अलग-अलग पढ़ाया गया, तो अंत में बड़ा नुक्सान पहुंचेगा—विद्या अपने आप में एक पूर्ण वस्तु के साथ पर कुछ विषयों के रूपों में समझी जाने लगेगी।

प्रतिबन्ध लगा कर कक्षा चढ़ाना

इसके अनुसार कोई विशेष प्रतिबन्ध लगा कर बच्चे को अगली कक्षा में चढ़ाया जाता है कि यदि वह संतोषजनक उन्नति न करे तो उसे फिर पिछली कक्षा में कर दिया जाएगा। यों यह ढंग अच्छा है, क्योंकि काम के पुरस्कार देने का वादा किया जाता है, परन्तु जब बच्चा कमी पूरी नहीं कर सकता और जब उसे फिर पिछली कक्षा में धकेल दिया जाता है, तब बच्चे के मन में हीनता के भाव घट कर जाते हैं और वह कई प्रकार की विकृतियों में ग्रस्त हो सकता है।

—×—

कांड ११

परीक्षा

परीक्षाएं प्रत्येक विद्वान के ध्यान का केन्द्र बनी हुई हैं। यह एक ऐसा विषय है जिस पर हरेक अपने-अपने विचार रखता है—एक विद्वान, साधारण व्यक्ति अध्यापक और बच्चों के सरंक्षक, व्यापारी और विद्यार्थी—सब अपने आपको परीक्षाओं पर सम्मति देने के योग्य समझते हैं। कुछ इनमें कांफी परिवर्तन करना चाहिते हैं, और कुछ इन्हें बिल्कुल ही समाप्त कर देने के हक में हैं।

१. परीक्षा के दोष
(Shortcomings of Examinations)

परीक्षा को बड़े भद्दे विश्वेणों के साथ सम्बन्धित किया जाता है। कुछ इसे 'आवश्यक बुराई' समझते हैं, कुछ इसे 'एक बला', 'वास्तविक शिक्षा की शत्रु', 'खून चूसने वाली', आपस में 'शत्रुता उत्पन्न करने वाली' समझते हैं।

(१) परीक्षा-पद्धति के विरुद्ध जो सबसे बड़ी शिकायत है, वह

यह कि यह विद्यार्थी की योग्यता को जांचने का एक वैज्ञानिक ढंग नहीं। यह पद्धति भेड़ों को बकरियों से अलग नहीं कर सकती, और न ही योग्य विद्यार्थियों को अयोग्य विद्यार्थियों से। इस पद्धति की कृपा से एक अयोग्य विद्यार्थी भी बड़े सुन्दर नम्बर ले कर पास हो सकता है; और एक योग्य विद्यार्थी के लिए अच्छे नम्बर लेना तो दूर रहा, पास भी नहीं हो सकता। आइनस्टाईन—संसार का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक–गणित में फेल हो गया था। कई ऐसे अध्यापक हैं जो अध्यापक के रूप में तो बहुत प्रसिद्ध हैं, परन्तु विद्यार्थी के रूप में आयोग्य थे। इस पद्धति की कृपा से एक शेर पर बिल्ली का निशान लगाया जा सकता है और बिल्ली पर शेर का। और सच्चाई तो यह है कि परीक्षा में संयोग का बहुत बड़ा हाथ होता है।

इस के अतिरिक्त पढ़ाई का सारा कोर्स परीक्षा में आए दो एक प्रश्नों के साथ नहीं जांचा जा सकता। यह प्रश्न तो प्राप्त किए हुए ज्ञान के नमूने की ही जांच कर सकते हैं, और बहुत बरी यह नमून सम्पूर्ण ज्ञान के परिचायक नहीं होते हैं। इस प्रकार परीक्षाओं में ईमानदारी का अभाव होता है, और जो कुछ यह नापना या जानना और पहिचानना चाहता है, वह नहीं पता लगा सकता। परीक्षा में आए प्रश्न कई बार ठीक शब्दों में अंकित नहीं किए जाते और इस प्रकार विद्यार्थी उन प्रश्नों को ठीक प्रकार से न समझ पाने के कारण उन प्रश्नों के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर सकते, भले ही उन प्रश्नों के बारे में उन्हें पूर्ण ज्ञान हो।

(२) परीक्षा के भय के कारण अच्छी पढ़ाई और नवीन शिक्षा-पद्धति की बलि देनी पड़ती हैं। यह स्कूल के काम पर अच्छा प्रभाव नहीं डालती। सलेबस को रोज की आवश्यकताओं और अलग-अलग विद्यार्थियों की आवस्यकताओं अनुसार तोड़ा–मरोड़ा नहीं जा

सकता । हरेक विषय को परीक्षा में पास होने के दृष्टिकोण से पढ़ाया जाता है । शिक्षा का उद्देश्य ही केवल परीक्षा पास करना हो जाता है। वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना न तो अध्यापकों का ही प्रयोजन होता है, और न ही विद्यार्थियों का । हरेक प्रश्न का मूल्य इस बात से जाना जाता है कि क्या यह प्रश्न परीक्षा में आ सकता है अथवा नहीं। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य ही लुप्त हो जाता है, क्योंकि शिक्षा को केवल प्रश्नोत्तर के रूप में ही देखा और समझा जाता है । अध्यापक उन्हीं प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण प्रश्नों को कराता है, जोकि परीक्षा में आ सकते हैं, ताकि विद्यार्थियों ने जो कुछ घोटा लगाया है उसे परीक्षा में उलटा आयें ।

(३) विद्यार्थियों पर कई प्रकार का बोझ पड़ जाता है । यह परीक्षाओं का भूत स्कूल के काम को कई बच्चों के लिए एक मुसीबत ही बना छोड़ता है । बेइज़्जती का डर, साथियों की आलोचनाएं मां-बाप की भर्त्सनाएं और बहिन-भाइयों के साथ स्पर्धा—यह सब बातें परीक्षाओं को और भी अधिक बुरी चीज़ बना देता हैं । एच.जी.स्टैड (H.G. Stead) का विचार है कि परीक्षाएं वास्तविक शिक्षा के लिए प्रेणादायक नहीं हो सकती । ईर्ष्या की भावना न केवल विद्यार्थियों में ही घर कर जाती है, बल्कि विद्यार्थी के रक्षकों में भी, और स्कूल के अध्यापकों में भी । और फिर अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही परीक्षा के भूत से डरते हुए घड़ियाँ व्यतीत करते हैं ।

(४) परीक्षा वास्तविक ज्ञान और शिक्षा का सही मूल्यांकन नहीं कर सकती । वह मन और चरित्र—जोकि शिक्षा का सबसे सुन्दर परिणाम होता है—के गुण नहीं जांच सकती । परीक्षाएँ केवल घोटे और रट्टे का ही कमाल होने के कारण, व्यक्ति का वास्तविक मूल्यांकन करने में असमर्थ होती हैं । परीक्षाएं परिश्रम का मूल्य कम करती हैं, और बुद्धि को श्रीणधार बनाती हैं। वास्तविक शिक्षा तो प्रदान ही नहीं की

जा सकती। सो यह कोई बड़ी बात नहीं कि परीक्षाओं में भली प्रकार से उत्तीर्ण होने वाले, जीवन की परीक्षाओं में बुरी तरह से असफल होते हुए देखे गये हैं।

(५) परीक्षाएं विद्यार्थी के उस विशेष समय के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का कोई ध्यान नहीं रखती। एक परिश्रमी और गुणी विद्यार्थी तो नियुक्त किए हुए सलेबस के साथ पूरा न्याय करता है, और अपने काम को भली प्रकार से करता है। परन्तु दुर्भाग्य से, परीक्षा के लिए निश्चित समय पर उसे सिरदर्द शुरू हो जाता है, या किसी पारिवारिक झगड़े के कारण उसकी मानसिक दशा अस्त-व्यस्त हो जाती है तो परिणाम के समय उसका नाम सब से ऊपर होने के स्थान पर सब से नीचे दिखाई देता है, इसके विपरीत, एक अयोग्य-सा विद्यार्थी है, जो सारा साल गप्पें हांक कर और इधर उधर घूम फिर कर व्यर्थ ही व्यतीत कर देता है, और परीक्षा के निकट आकर कुछ प्रश्नों को बड़ी अच्छी तरह से घोट लेता है, और सौभाग्य (या दुर्भाग्य से) से वही प्रश्न परीक्षा में आ जाते हैं, तब वह बड़ी अच्छी तरह से पास हो जाता है। ऐसे अवसरों को भाग्य का चमत्कार कहा जा सकता है। परन्तु ध्यान देने की बात है कि यह सारी पद्धति ही अवैज्ञानिक है।

(६) हमारी परीक्षा की यह पद्धति विद्यार्थी के स्वभाव का कोई ख्याल नहीं करती। कई विद्यार्थी जो सचमुच ही बड़े योग्य हैं, परीक्षा के समय बिल्कुल घबरा जाते हैं, इस प्रकार अपनी योग्यता को पूर्ण रूप से प्रकट करने में वे असमर्थ रहते हैं। कई बार कोई बहुत योग्य विद्यार्थी दुर्भाग्य से एक गलत प्रश्न से पर्चा आरम्भ कर बैठता है, और इसका परिणाम यह होता है कि वह सारे पर्चे में ही गलतियां करता जाता है। इसके विपरीत कई विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं, जो परीक्षा के

कारण कुछ जोश में आ जाते हैं, और वे बहुत अच्छा काम कर

दिखाते हैं। इस प्रकार कई ऐसे संयोग हो जाते हैं, जिन का वास्तविक अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता।

(७) नम्बर लगाने भी एक कठिन-सी समस्या है। कई वार एक ही परीक्षक दो भिन्न मौकों पर एक ही जैसे उत्तर के कम या अधिक नम्बर दे देता है। एक ही पर्चे के दो परीक्षक नम्बर देने से पर्याप्त मतभेद रख सकते हैं। ऐसे प्रश्न जो लेखों के रूप में होते हैं, उनके बारे में इस प्रकार का मतभेद हो जाना एक साधारण सी बात है। एक ही पर्चे के अलग-अलग परीक्षक भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तरों की उम्मीद रखते हैं। वास्तविकता तो यह है कि नम्बर लेना भाग्य पर ही निर्भर करता है, और इसी भाग्य पर ही विद्यार्थियों के भविश्य का निर्भर होता है।

(८) परीक्षाएँ कोई प्रयोजन पूरा नहीं करतीं। परीक्षाओं द्वारा यह नहीं पता चलता कि कोई विद्यार्थी किसी विशेष पेशे के योग्य है कि नहीं, और न ही अलग अलग पेशों के लिए विद्यार्थियों का परीक्षा पथ-प्रदर्शन कर सकती हैं। मैट्रिक की परीक्षा तो सभी पेशों के लिये पास-पोर्ट समझी जाती हैं। सो स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि नौकरी प्राप्त करने की लाटरी में टिकट लेने के प्रयोजन ही प्रमुख हो जाते हैं, और शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य काफूर हो जाता है।

२. क्या परीक्षा पद्धति का उच्छेदन सम्भव है?

(१) अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम परीक्षा प्रणाली का— जोकि दोषों से आपूरित है—उन्मूलन कर सकते हैं? निस्संदेह परीक्षा परणाली अत्यन्त अविश्वसनीय है, परन्तु परीक्षाओं को समाप्त करने के लिये यह कोई ठोस कारण नहीं है। किसी भी देश में परीक्षाओं

के बिना सुधार नहीं हो सका। सर मिचैल सैडलर (Sir Michael Sadler) लिखता है—"परीक्षाओं को समाप्त करना-शिक्षा-प्रणाली के दीवाले का इलाज करना होगा।" परीक्षा पद्धति तो किसी विद्यार्थी के ज्ञान और योग्यता को किसी विशेष समय के भीतर जांचना और पहचानना होता है यह तो किसी विद्यार्थी अथवा किसी नौकरी के उम्मीदवार की पढ़ाई, ज्ञान और योग्यता का मापदण्ड है।

(२) इसके अतिरिक्त स्कूल विद्यार्थी की एक विशेष प्रकार का ज्ञान और शिक्षा प्रदान करने का उद्देश्य रखवाता है। पढ़ाई और शिक्षा के साथ पैदा किये हुये परिवर्तनों का पता एक दम ही नहीं लग सकता। इन के लिये कोई न कोई ऐसा साधन होना चाहिए जिस के द्वारा इन परिवर्तनों का पता लगाया जा सके। अध्यापक के लिये कक्षाओं के वर्गीकण के समय इन ज्ञान का होना और भी आवश्यक है। ताकि विद्यार्थियों को अगली कक्षाओं में चढ़ाया जा सके और साथ ही वह अपने काम को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार चल सके। बच्चों के सरंक्षों के लिए भी इन ज्ञान का होना जरूरी है कि क्या बच्चा व्यय हो रहे धन के बदले में लाभ प्राप्त कर भी रहा है कि नहीं; यदि परीक्षायें उन्हें इन बारे में सूचनातें दे सकती। नौकर रखने वाले को भी इस भरोसे की जरूरत है कि किसी विशेष काम के लिए आवश्यक गुण और विशेषतायें उम्मीदवार में हैं भी कि नहीं। समाज इस बात की मांग करता है के जिन कि कंधों पर भारी उत्तरदायित्व आ पड़ा है, वे उन को उठा सकने के योग्य हैं भी कि नहीं; और उन की योग्याताओं का, अभाव देने वाला कोई विशेष साधन होना चाहिए इनके लिए प्राप्त की हुई शिक्षा और योग्यता की जांच के लिए परीक्षायें विशेष स्थान रखती है।

(३) किसी न किसी रुप में परीक्षाओं का अस्तित्व अवश्य रहना

चाहिए नहीं, तो विद्यार्थियों को काम के लिए प्रेरित करने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहेगा। आप की पढ़ाई में उन्नति भी कम और अर्थहीन हो जाएगी, किसी विषय विशेष में पूर्ण अधिकार प्राप्ति के लिए वह प्रयत्न नहीं करेगा। देखा गया है कि सदैव परीक्षायें संयोग पर ही निर्भर नहीं करती। साधारण विद्यार्थी परिश्रम का ही मार्ग अपनाता है। साधारणतया विद्यार्थी के ज्ञान और शिक्षा को जांचने के लिए यह बड़ा अच्छा ढंग है। ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं जो बौद्धिक हों और जिन्हें किताबी कीड़े न कर सकें। वास्तविकता तो यह है कि ज्ञान के राज्यपथ पर परीक्षायें मील का पत्थर हैं।

(४) परीक्षायें विद्यार्थी के आगामी जीवन-मार्ग के लिए आवश्यक पड़ाव हैं। यह केवल किसी चीज़ का परीक्षण ही नहीं करतीं हैं, बल्कि भविश्य-वाणी भी करती हैं। यह बताती हैं कि विद्यार्थी को कौन सा जीवन मार्ग अपनाना चाहिए। सचमुच राष्ट्रीय धन, समय और शक्ति का बहुत ही दुर्पयोग किया जा रहा होगा, यदि चोरस सूराखों में गोल कीलें ठोकी जा रही हों। परीक्षाएं किसी सीमा तक योग्यों को अयोग्यों से पृथक करने में सहायता करती हैं, ताकि उन्हें उनकी शक्ति अनुसार ही काम दिया जाए।

(५) कुछ ऐसे विषय जोकि विद्यार्थियों की दृष्टि से शुष्क और कठिन होने के कारण छोड़ जा सकते हैं, परीक्षा के भय से उनका भी भली प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रकार विद्यार्थी कई कठिन विषयों का अध्यन करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

(६) ज्ञान को एक ठीक व्यवस्था में लाने के लिए और उसका सही प्रयोग करने के लिए भी इन परीक्षाओं से शिक्षा मिलती है। विद्यार्थी उस विषय को बहुत अच्छी तरह से पढ़ने का यत्न करता है, यदि उसे पता हो कि उसके काम का सही मूल्यांकन किया जाएगा, और उसकी योग्यता अनुसार उसे नम्बर दिए जायेंगे।

(७) यदि परीक्षा ठीक प्रकार से ली जाए, तो पढ़ाई और शिक्षा में जो दोष रह गये हैं, वह स्पष्ट हो कर समुख आ जायेंगे। इस प्रकार इन दोषों और कमज़ोरियों को दृष्टि में रख कर अध्यापक अपने पढ़ाने के ढंग को बेहतर बना सकता है, विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सकता है, और अपने काम के मानदन्डों को उन्नत किया जा सकता है। इस प्रकार कमज़ोरियों और दोषों को स्पष्ट करके शिक्षा के मानदन्डों को उन्नत कर सकती हैं। विद्यार्थी और अध्यापक दोनों को ही पता चल जाता है कि वे कहां तक पहुंच गए हैं, और किस प्रकार की शिक्षा उन्होंने प्राप्त कर ली है और किस प्रकार की नहीं।

(२) पढ़ाने के लिए विद्यार्थियों के अलग समूह (Group) बनाने में भी परीक्षाएं अध्यापकों की काफी सहायता कर सकती हैं। इस प्रकार इकट्ठा पढ़ाई (Collective instruction) के बहुत से दोषों को भी दूर किया जा सकता है।

सो ऊपरलिखित तत्वों को दृष्टि में रख कर हम कह सकते हैं कि परीक्षाओं को बिल्कुल उड़ा देना विवेकपूर्ण कार्य नहीं। जब तक इस पद्धति को स्थानापन्न करने के लिए हमारे पास और कोई पद्धति नहीं है, तब तक इसका अस्तितव अनिवार्य है। इस लिए हम इसे खत्म नहीं कर सकते, इसे बेहतर अवश्य बना लेना चाहिए। एक विद्वान के सम्मुख वास्तविक समस्या तो यह हैं कि इसमें इस प्रकार के सुधार किए जाएं कि अनेक दोषों का परिहार कर आवश्यक गुणों का समावें किया जाए।

३. सुधार

(१) विद्वानों की परीक्षाओं के विरुद्ध जो सब से बड़ी आलोचना है वह है बाह्य परीक्षाओं (External Examination) के कारण। उनका विचार है कि ऐसी परीक्षाएं जिनके लिए विशेष तैयारी की आवश्यकता पड़ती है, वे अध्यापक के काम में रुकावट डालती हैं

बच्चों के भावों और विचारों को विकसित करने के स्थान पर वह हमेशा उन्हें परीक्षा के लिए तैयार करने के प्रयत्न करता रहेगा। इस प्रकार की परीक्षाओं द्वारा बच्चों की रचनात्मक शक्ति और योग्यता की जांच नहीं की जा सकती। ऐसे प्रश्नपत्र, जहाँ कि लेखों के रूप में उत्तर लिखने पड़ते हैं, पर्याप्त नहीं। इस प्रकार के काम तो घर या स्कूल के बाद के किसी समय के काम से ही जांचे जा सकते हैं। इस बात को ध्यान में रख के मिडल की यूनीवर्सिटी परीक्षाएं उड़ा दी गयी हैं।

(२) परीक्षा लेते समय यह जांचने का प्रयत्न करना चाहिए कि विद्यार्थी क्या जानता है; क्या कर सकता है, उस में कितनी बुद्धि है, यह तलाश करने का यत्न नहीं करना चाहिए कि वह क्या नहीं जानता, वह क्या नहीं कर सकता और उस के पास कितना कम ज्ञान है। वह स्कूल की और स्कूल के बाहर की परीक्षाओं पर लागू होना चाहिए।

(३) परीक्षा का कोई वातावरण नहीं होना चाहिए। इस प्रकार विद्यार्थी भी परीक्षा के बुखार से बचे रह सकते हैं। आवश्यकता नहीं कि स्कूल में परीक्षाएं विशेश मौकों पर ही हों, बल्कि यह छोटे-छोटे टस्टों (Tests) के रुप में होनी चाहिए, जो साल में कई बार हो, पर समय थोड़ा लें। इस प्रकार अध्यापक और विद्यार्थी इसे स्कूल के बाकी कामों की तरह एक ज़रूरी काम समझने लग जाएगें। और परीक्षा एक भूत बनने के स्थान पर दुहराई के लिए आवश्यक सहायता दे सकेगी। इस प्रकार प्रत्येक विषय में थोड़े २ विषय भी अच्छी तरह से कर लिए जाएं तो वार्षिक परीक्षा का भय भी रह जाएगा, और एक-दो परीक्षाओं से ही भाग्य का निर्णय नहीं हो जाएगा बल्कि वर्ष भर की सब परीक्षाओं का रिकार्ड रखा जाएगा और इन रिकार्डों का ध्यान रख कर विद्यार्थियों को अगली कक्षाओं में चढ़ाया जाना चाहिए। इस प्रकार के ढंग से भाग्य और संयोग की शिकायत दूर हो जाएगी।

(७) यदि परीक्षा ठीक प्रकार से ...

जो दोष रह गये हैं, वह स्पष्ट हो ...
दोषों और कमज़ोरियों को दृष्टि में ...
को बेहतर बना सकता है, विद्यार्थियों ...
जा सकता है, और अपने काम ...
सकता है। इस प्रकार कमज़ोरियों और ...
शिक्षा के मानदण्डों को उन्नत कर सकती है। ...
दोनों को ही पता चल जाता है कि वे ...
प्रकार की शिक्षा उन्होंने प्राप्त कर ली है ...

(२) पढ़ाने के लिए विद्यार्थियों के ...
में भी परीक्षाएं अध्यापकों की काफी सहायता ...
प्रकार इकट्ठा पढ़ाई (Collective instruction ...
को भी दूर किया जा सकता है।

सो ऊपरलिखित तत्वों को दृष्टि में रख कर ...
परीक्षाओं को बिलकुल उड़ा देना विवेकपूर्ण नहीं ...
पद्धति को स्थानापन्न करने के लिए हमारे पास ...
तब तक इसका अस्तित्व अनिवार्य है। इस लिए हम ...
सकते, इसे बेहतर अवश्य बना लेना चाहिए। एक ...
वास्तविक समस्या तो यह है कि इसमें इस प्रकार ...
कि अनेक दोषों का परिहार कर आवश्यक गुणों का ...

३. सुधार

(१) विद्वानों की परीक्षाओं के विरुद्ध जो सब से ...
है वह है बाह्य परीक्षाओं (External Exam...
कारण। उनका विचार है कि ऐसी परीक्षाएं जिनके लिए ...
की आवश्यकता पड़ती है, वे अध्यापक के काम में ...

(७) नम्बरों के अन्तर को दूर करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों को बताया जाए कि किस प्रकार अध्यापक नम्बर लगाते हैं। ऐसे विद्यार्थी जो थोड़े से नम्बर पर फेल होते हैं, उन को फिर से परीक्षा ले ली जाए और दोनों परीक्षाओं की औसत के अनुसार उन्हें पास या फेल किया जाए।

(८) लिखित परीक्षाओं के साथ बौद्धिक परीक्षाएं भी रखी जा सकती हैं। यह सरल होना चाहिए, इसके अतिरिक्त नम्बरों में भी कोई अन्तर नहीं होता। यह परीक्षाएँ प्राप्त की हुई योग्यता की परीक्षा नहीं कर सकती, बल्कि बच्चे में सीखने की कितनी योग्यता है—इसकी परीक्षा करती है।

सरांश यह कि एक अच्छी परीक्षा वह है जो उचित हो, जो कुछ नापना चाहे उसे सभी प्रकार से नाप सके जिस का प्रयोजन अत्यंत नष्ट हो जो विश्वासनीय हो, जिसका वृत पर्याप्त विस्तृत हो, और नम्बर लगने के अपने विचारों का इस पर कोई प्रभाव न पड़े, और जिसका प्रबन्ध भी अत्यंत सरल हो, नम्बर लगाने भी अत्यन्त सरल हों।

सारांश यह कि परीक्षाओं को आवश्यकताओं से अधिक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। हमें इन विश्वासों से अतीत होना होगा कि शिक्षा एक दौड़ और परीक्षा एक अन्तिम कूद, और कि जहां पास या फेल होना ही अपिर्ण है। ज्ञान के खेल में परीक्षा को ही अन्तिम प्रयोजन नही मान लेना चाहिए। यह साध्य नहीं साधन है। परीक्षा को एक साधारण घटना से अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। अब समय आ गया है कि परीक्षा की कठोर श्रृखलायें विद्यार्थियों के लिए ढीली की जायें। आवश्यकता है कि इस आवश्यक बुराई को बेहतर बनाया जाए।

(४) परीक्षाएं विद्यार्थी के वास्तविक ज्ञान की जो विद्यार्थी ने सच्चे अर्थों में प्राप्त किया है—जांचे । कई विद्वानों का विचार है कि इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने चाहिएं, भले ही विद्यार्थी को परीक्षा में खुली पुस्तकें ही दे दी जाएं, जिन का उत्तर वे बिना सोचे लिख ही न सकें । इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने चाहिएं जो केवल घोटे से प्राप्त किये हुए ज्ञान को ही न जांचे, बल्कि विद्यार्थी के वास्तविक ज्ञान की परीक्षा जांच लें ।

(५) परीक्षक बड़ी सोच समझ के साथ नियुक्त किये जाने चाहिए। अध्यापक जिन्होंने कि विद्यार्थियों को पढ़ाया हो जो उन्हें भली प्रकार से जानते हों, जो आवश्यक को अनावश्यक से प्रथक कर सकते हों, जो विद्यार्थियों की विवेश रूचियों और अक्षतियों से परिचित हो, परीक्षक लगाए जाने जाहिएं । इस लिए आंतरिक एवं बाहय परीक्षक (Internal and External Examiners) का सिलसिला भी लाभदायक हो सकता है । इस में बाहय परीक्षक प्रश्नपत्र बनाता है पर स्कूल के अध्यापक को यथायोग्य सम्मति भी ली जाती है । एसा होने से बाहय परीक्षाओं के भय से मुक्ति पाई जा सकती है ।

(६) लिखित परीक्षाओं के साथ २ मौखिक एवं वास्तविक परीक्षाएं भी होनी चाहिएं । मौखिक जो परीक्षाएं भी ली जाती हैं, उनमें यह पता लगाना बड़ा आसान होता है कि विद्यार्थी क्या जानता है, क्यों कि उससे कई प्रकार के प्रश्न पूछने का अवसर मिल जाता है। इस के आंतिरिक्त विद्यार्थी की भली बुरी आदतें चुस्ती, चातुरी उसके विशेय झूकाव एवं दृष्टिकोण का पता लग जाता है। इसी प्रकार वास्तविक परीक्षाओं में यह पता लगाने का यत्न किया जाता है कि विद्यार्थी किस प्रकार प्राप्त किए हुए ज्ञान को उपयोग करेगा । मस्तिष्क व्यर्थ के घोटे लगाने के भार से बचा रहता है ।

(७) नम्बरों के अन्तर को दूर करने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थियों को बताया जाए कि किस प्रकार अध्यापक नम्बर लगाते हैं। ऐसे विद्यार्थी जो थोड़े से नम्बर पर फेल होते हैं, उन को फिर से परीक्षा ले ली जाए और दोनों परीक्षाओं की औसत के अनुसार उन्हें पास या फेल किया जाए।

(८) लिखित परीक्षाओं के साथ बौद्धिक परीक्षाएं भी रखी जा सकती हैं। यह सरल होना चाहिए, इसके अतिरिक्त नम्बरों में भी कोई अन्तर नहीं होता। यह परीक्षाएँ प्राप्त की हुई योग्यता की परीक्षा नहीं कर सकती, बल्कि बच्चे में सीखने की कितनी योग्यता है—इसकी परीक्षा करती है।

सरांश यह कि एक अच्छी परीक्षा वह है जो उचित हो, जो कुछ नापना चाहे उसे सभी प्रकार से नाप सके जिस का प्रयोजन अत्यंत नष्ट हो जो विश्वासनीय हो, जिसका वृत पर्याप्त विस्तृत हो, और नम्बर लगने के अपने विचारों का इस पर कोई प्रभाव न पड़े, और जिसका प्रबन्ध भी अत्यंत सरल हो, नम्बर लगाने भी अत्यन्त सरल हों।

सारांश यह कि परीक्षाओं को आवश्यकताओं से अधिक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। हमें इन विश्वासों से अतीत होना होगा कि शिक्षा एक दौड़ और परीक्षा एक अन्तिम कूद, और कि जहां पास या फेल होना ही अपिर्ण है। ज्ञान के खेल में परीक्षा को ही अन्तिम प्रयोजन नही मान लेना चाहिए। यह साध्य नहीं साधन है। परीक्षा को एक साधारण घटना से अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। अब समय आ गया है कि परीक्षा की कठोर श्रखलायें विद्यार्थियों के लिए ढीली की जायें। आवश्यकता है कि इस आवश्यक बुराई को बेहतर बनाया जाए।

कान्ड १२

स्कूल और स्वास्थ्य रक्षा

आज के विद्वान स्कूल जाते बच्चे के स्वास्थ्य को प्रयाप्त महत्व देने लगे हैं। वे यह अनुभव करने लगे हैं कि जनतंत्र उतनी देर तक रामराज्य नहीं हो सकता है, जब तक उसे बनाने वाले चुस्त और हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले नागरिक न हों। और यदि हम एक खुशहाल भारत के सपने लेते हैं तो अध्यापक और डाक्टर दोनों को मिल कर बच्चे की बेहतरी के लिए योजनाएँ बनानी होंगी। इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि स्कूल ही एक ऐसा साधन है जो बिना किसी मंदभाव के सब तक पहुंचता है। भारत जैसे निर्धन और बहुत बड़ी जनसंख्या वाले देश में जहां पर असंख्य गाँव हैं और अनेक प्रकार की बिमारियां फैली हुई हैं, स्कूलों के कन्धों पर महान दायित्व हैं, क्योंकि जिस बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा नहीं और जिस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता, वह एक निर्बल राष्ट्र के लिए बहुत भार है। रुगण स्वास्थ्य का परिणाम यह होगा कि बच्चा स्कूल से अनुपस्थित रहेगा, स्कूल से अनुपस्थित रहने के कारण वह पढ़ाई में कमजोर कौर पिछुड़ जाएगा, पढ़ाई में पीछे रहने के कारण उसमें हीनता ग्रंथि उत्पन्न हो जायेगी। यह हीनता-ग्रंथि कई प्रकार की सामाजिक राजनैतिक विकृतियाँ उतपन्न कर सकती हैं; सो इसलिये

अब यह आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि यदि हम बच्चे का पूर्ण विकास चाहते हैं तो हमें बच्चे की शारीरिक और मानसिक अरोग्यता का पूरा ख्याल रखना होगा, क्योंकि एक अरोग्य मन और मस्तिष्क का निवास एक अरोग्य शरीर में ही हो सकता है।

स्कूल जाते बच्चों के स्वास्थ्य का ख्याल रखने के लिए डिस्ट्रिक्ट हैल्थ आफ़िसर (District Health Officer), स्कूल हैल्थ आफिसर (School Health Officer), स्कूल के मुख्यअध्यपक (School Headmaster), नर्स और विद्यार्थियों को आत्म सहायता की आवश्यकता है। परन्तु इससे पहले कि यह सब भली प्रकार किसी व्यवस्था में काम कर सकें, हमें स्वास्थ्य शिक्षा के प्रयोजनों का पता होना चाहिए।

१. स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य और प्रयोजन

स्वास्थ्य शिक्षा का प्रयोजन यह होता है कि स्कूल के बच्चों के लिए स्वास्थ्य का कोई विशेष मानदण्ड स्थिर कर लिया जाए। और स्कूल के हरेक बच्चे को उसकी अपनी शारीरिक कमजोरियों से परिचत कराया जा सके और यह भी बताया जाए कि चिकित्सा के रूप में क्या किया जा सकता है। साधारणतया देखा गया है कि बहुत से घरों में बिमारियों को ईश्वर की ओर से भेजा हुआ समझा जाता है। इसलिए स्वास्थ्य शिक्षा के निम्नलिखिति उद्देश्य हो सकते हैं :—

(अ) विद्यार्थियों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाए ताकि वे अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा स्वयं कर सकें और उसे अच्छा बना सकें।

(आ) अच्छे रहने के ऐसे स्वभाव और सिद्धांत उन्हें सिखाए जा सकें, कि वे ना केवल स्कूल के समय में ही भली प्रकार रह सकें, बलिक आगामी जीवन में अपने लिए और देश के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकें।

(इ) स्वास्थ्य शिक्षा के द्वारा बच्चों के संरक्षकों में भी ऐसा प्रभाव डाला जाए ताकि स्कूल-घर, समाज में स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने के प्रबल साधन बन सकें।

२. स्वास्थ्य शिक्षा का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाए?

उपरलिखित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि स्वास्थ्य शिक्षा का प्रबन्ध भली प्रकार किया जाए।

जिले में प्रबन्ध को अच्छा रखने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा-विभाग की ओर से नियुक्त किया हुआ डिस्ट्रिक हैल्थ आफिसर हो जोकि जिले के सारे स्कूलों में स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान का जिम्मेवार हो। वह स्कूलों में जाए, कुछ विशेष स्कूलों के लिए डाक्टर नियुक्त करे, सभाओं का प्रबन्ध करे, और कभी कभी स्कूलों में विशेष स्वास्थ्य सप्ताहों का प्रबन्ध करे, जिसमें कि स्वास्थ्य रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया जाए। स्कूलों में कुछ इस प्रकार की स्कूल स्वास्थ समिति (School Health Committee) होनी चाहिए: -

स्कूल स्वास्थ्य समिति

मुख्य अध्यापक या मुख्य अध्यापिका	स्कूल हैल्थ अफसर
|	|
शारीरिक शिक्षा देने वाला अध्यापक	डाक्टर या हकीम
|	|
स्वास्थ्य रक्षा की शिक्षा देने वाला अध्यापक	नर्स

यदि हम चाहते हैं कि स्कूल में एक मेल-मिलाप का वातावरण हो तो स्कूल स्वास्थ समिति की सभाओं में कक्षा के अध्यापक और मनीटर उपस्थित होने चाहिए। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी, अध्यापक,

डाक्टर और नर्सों में मेल-मिलाप का होना आवश्यक है, तब ही स्कूल की स्वास्थ्य शिक्षा और स्वास्थ्य-रक्षा से कुछ परिणाम उपलब्ध लिए जा सकेंगे।

३. स्वास्थ्य शिक्षा का कार्यक्रम

स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रम को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(अ) स्वास्थ्य की रक्षा, (आ) स्वास्थ्य को फिर से ठीक करना (इ) स्वास्थ्य उन्नति।

(अ) स्वास्थ्य की रक्षा

स्वास्थ्य की रक्षा तभी की जा सकती है यदि कभी-कभी स्वास्थ्य का निरीक्षण करवाया जाए। केन्द्रीय शिक्षा उपदेशक मण्डल (The Central Advisory Board of Education) का विचार है—'स्वास्थ नीरीक्षण एक योग्य डाक्टर से करवाना चाहिए जो अपथ्य सेवन से उत्पन्न हुई बिमारियों को भांप सके—विशेष रूप से कान, नाक और गले की बीमारियों को देख सके। स्वास्थ का निरीक्षण स्कूल में और अगर हो सके तो माता-पिता की उपस्थिति में होना चाहिए। शरीरिक शिक्षा का अध्यापक भी स्वास्थ्य के निरीक्षण के साथ सम्बन्धित होना चाहिए, क्योंकि वह कई प्रकार के व्यायाम द्वारा उन दोषों को दूर करने में सहायता कर सकता है। डाक्टर को चाहिए कि निरीक्षण के परिणमों के बारे में मुख्य अध्यापक या मुख्य अध्यापिका से भी सलाह करे। ऐसे बच्चे जो बिमारी के कारण स्कूल से अनुपस्थित रहे हों—उन्हें तब तक स्कूल में दाखिल नहीं होने देना चाहिये जब तक कि स्कूल का डाक्टर उनका निरीक्षण न कर ले। यदि स्कूल का अपना कोई डाक्टर न भी हो तो भी घर के डाक्टर की ओर से प्रमाण-पत्र प्राप्त किया जाना चाहिए कि बच्चा अब बिल्कुल स्वास्थ है और उसका दूसरों तक बिमारी फैलाने का कोई डर नहीं

है । यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्कूल में अध्यापकों को बिमारियों के चिह्न, कितने समय में बिमारी दूसरों को लगने का डर होता है और किन चीजों के द्वारा बिमारी दूसरों तक पहुंच जाती है, आदि के बारे में पूर्ण रूप से परिचित होना चाहिए ।

चेचक डिप्थीरिया और मौसमी बुखार—तीन ऐसी बिमारियां हैं, जिन्हें समय से पहले टीके लगा कर रोका जा सकता है । इस लिए स्कूल स्वास्थ्य समित संयोजकों को चाहिए कि इन बिमारियों से बचने के लिए सारे बच्चों को टीके लगवाएं । प्रत्येक बच्चे को बीमारी से बचने के लिए टीके लगवाना चाहिए । और प्रत्येक बच्चे को डिप्थीरिया से बचने के लिए परिवारिक डाक्टर से टीका लगवाना चाहिए ।

इसका यह मतलब हुआ कि इस प्रकार के स्वास्थ्य परीक्षण पर काफी खर्च होगा ! सैंटरल हैल्थ रिपोर्ट का अंदाज़ा है कि सारे भारत के स्कूल जाते बच्चों की परीक्षण के लिए ७५०० डाक्टर और १५०० नर्सों की आवश्यकता पड़ेगी । इस लिए जितने डाक्टर इस समय मिल रहे हैं, उन से २५०० ज़्यादा डाक्टरों की आवश्यकता पड़ेगी । इस में कोई संदेह नहीं कि इस कार्य के लिए बहुत धन व्यय होगा । पर रिपोर्ट यह बात बिल्कुल स्पष्ट करती है कि देश के युवकों के पूरे विकास के लिए स्वास्थ्य के उचित परीक्षण का प्रबन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है । हरेक बच्चे का हर साल परीक्षण करना आवश्यक नहीं, बच्चों के स्वास्थ्य का निरीक्षण जब वे स्कूल में आएं, जब वे प्राइमरी से मिडल स्कूल में जाएँ और जब वे मिडल से हाई स्कूल में जाएं या ५, ११, १४, वर्ष की आयु में होना चाहिए । हाई स्कूल के कोर्स को समाप्त करने के समय भी एक अन्तिम निरीक्षण होना चाहिए । फ्रांस में जो स्वास्थ्य के निरीक्षण का सिलसिला चल रहा है वह भी बहुत उत्तम है । वहां स्कूल डाक्टरों का एक समुह स्वास्थ्य निरीक्षण करता है, हरेक डाक्टर के पास एक हज़ार बच्चे

होते हैं। स्वास्थ्य निरीक्षण महीने में दो बार होते हैं। इन्सपैकटर हर कक्षा के कमरे में जाता है। और बच्चों का निरीक्षण इन्सपैकटर के अपने कमरे में ही होता है।

भारत में स्कूलों के लिए सब से बड़ी कठिनाई यह है कि डाक्टर की सलाह पर अमल किस प्रकार किया जाए। अनेक बार गरीबी के कारण बच्चों का इलाज नहीं हो पाता। कई बार केवल सुस्ती और लापरवाही के कारण डाक्टर की सलाह पर अमल नहीं किया जाता। कई बार किसी 'लाल भुजक्कड़' (अयोग्य हकीम) के ईलाज को अच्छा समझ कर डाक्टर की सलाहों पर ध्यान नहीं दिया जाता। सो डाक्टर की ओर से दी हुई सलाह पर अमल करने के लिए आवश्यक है कि माता पिता से समपर्क स्थापित किया जाए। डाक्टर स्टीफन टाईलर (Dr. Stephen Taylor) ने इंगलैंड में जो अनुसधान किये हैं, उन के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि माता पिता की बच्चो के स्वास्थ्य के बारे में दिलचस्पी बनाने के लिए अध्यापक बड़ा भारी काम कर सकते हैं। यदि हम चाहते है कि स्कूलों के स्वास्थ्य निरीक्षण का अधिक से अधिक लाभ उठाया जाए, तो माता पिता और अध्यापकों को कन्धे से कन्धा मिला कर काम करना होगा। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर कभी-कभी योग्य डाक्टरों के भाषण कराए जाएँ, जिन्हें माता–पिता भी सुनें। स्कूल की स्वास्थ्य प्रदर्शनियों में बच्चों के सरक्षकों को भी बुलाया जाए, और उन्हें प्रापोगंडे के काम में हिस्सा लेने के लिए कहा जाए। सैंटरल बोर्ड रिपोर्ट की सिफारश है कि स्कूल कलिनिकस (clinics) बना देने चाहिए, और इस प्रकार गरीबी की मुशिकल किसी हद तक दूर की जा सकती है। इसके अतिरिक्त रैड क्रास सोसायटियां, (Red Cross Societies) और हैल्थ कल्ब (Health Club) सकाउटस (Scouts) और गर्ल गाईड्ज (Girl Guides)

आदि भी बड़े जबरदस्त प्रोपेगंडा के साधन बन सकते हैं, और डाक्टर की सलाह को कार्यान्वित करने की सहायता कर सकते हैं।

स्कूल के मुख्य अध्यापक या अध्यापिका के लिए आवश्यक है कि वह अपने स्टाफ़ का पूरा सहयोग प्राप्त करे। बच्चों की त्रुटियों एवं दोषों को दूर करने के लिए अध्यापक काफी सहायता कर सकते हैं। यदि हर अध्यापक क्लास के कमरे का कम्पाईलेशन चार्ट (Class Room Compilation Chart) बिल्कुल ठीक रखता है, बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति दिलचस्पी रखता है और उनके दोषों को दूर करता है, तो यह बच्चों के घर कभी कभी सूचना भेजने और नर्सों के घर जाने से भी अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है। जिन स्कूलों में नर्सें हैं वहाँ पर भी सारा उत्तरदायित्व नर्सों पर नहीं फैंकना चाहिए, बल्कि बच्चों से सीधा सम्पर्क होने के कारण अध्यापक स्वयं ही दोषों को दूर करने में सहायता करें। अपने रिकार्ड में अध्यापक डाक्टर की नसीहतें—शारीरिक व्यायाम और खेलने सम्बन्धी, घर के सहयोग की मात्रा और कक्षा में उसका स्थान—आदि लिखने चाहिये। बच्चों के स्वभाव और रंग-ढंग, उनके खेलने की प्रवृत्तियां, मानसिक उथल-पुथल, व्यवहार की असाधारणता आदि के बारे में वह स्वयं लिखें। इस प्रकार के विवरणों के द्वारा अध्यापक अपना ध्यान बच्चे के स्वास्थ्य की ओर केन्द्रित कर सकेगा, और यह जान सकेगा कि किस प्रकार शरीर और मन इकट्ठे काम करते हैं। इस प्रकार सलेबस के विषयों को भी, स्वास्थ्य के सिद्धांतों में दृष्टि को रख कर पढ़ा सकेगा। इस प्रकार अपने परिक्षण का पूरा पूरा लाभ भी प्राप्त कर सकेगा, काम भी अच्छा करवा सकेगा।

अध्यापकों को यह समझ लेना चाहिए कि स्कूल का यह काम और

कर्तव्य नहीं कि बिमारियों का इलाज करे। स्कूल के स्वास्थ्य परीक्षण का मतलब-अध्यापक को वह ज्ञान देना है जिस के द्वारा स्वास्थ्य के बारे में शिक्षा देने के कार्यक्रम बनाए जा सकें, जोकि विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करें। यह कार्यक्रम स्कूल में छूत की बिमारियों को फैलने से रोकते हैं और बच्चों के संरक्षकों को बच्चों के शारीरिक दोषों के बारे में सूचनाएं देते हैं। एमसर्न (Emerson) का विचार है—'बिमारी और दोषों की चिकित्सा करना स्कूल का काम नहीं, और न ही यह काम स्कूलों की ओर से भली प्रकार हो ही सकता है। यह स्कूल के लिए बिल्कुल गलत काम है, और न ही स्कूलों को कोई लाभ पहुंचता है, और न ही बच्चों को।" यद्यपि एमर्सन के विचारों में पर्याप्त सच्चाई है, पर फिर भी स्कूल जाते बच्चे के लिए स्कूल की सहायता के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता।

महीने में कई बार स्कूल के बच्चों का अरोग्यता सम्बन्धी निरीक्षण होना चाहिए और सुझाव दिये जाने चाहिए। इन सुझावों को यदि स्कूल भली प्रकार से मान लें तो स्कूल की विशेष रूप से और स्कूल के विद्यार्थियों की भलाई हो सकती है।

स्वास्थ्य को फिर से ठीक करने के लिए, सब से पहले जिस चीज की जरूरत है, वह है रोगोपचार। चिकित्सा उन आश्रमों से करवाई जा सकती है जोकि विशेष रूप से स्कूलों के लिए ही हों, अथवा सरकारी हस्पतालों से भी करवाई जा सकती है, अथवा यदि बच्चे के माता-पिता काफी अमीर हों तो घर पर भी करवाई जा सकती है। अधिक प्रगतिशील स्थानों पर विद्यार्थियों की सहायता के लिए चाइल्ड गाईडैंन्स कलिनिकस (Child guidance clinics) भी खोले जा सकते हैं।

बच्चों की चिकित्सा के अतिरिक्त और भी कई शारीरिक दोष ठीक करने होते हैं। इस के लिए स्कूल स्वास्थ्य समिति (School health committee) को चौकन्ना रहने की आवश्यकता है। क्योंकि बच्चों के संरक्षकों के पीछे पड़ कर दोष दूर करना कोई सहज कार्य नहीं है। ऐसे दोष जो बहुत आम हों---जैसे कि बुखार के ठीक न होने के कारण दोष, आंख अथवा दान्त की तकलीफ-- इन के लिए स्कूल की ओर से चकित्सा होनी चाहिएं। यदि स्कूल में होसटल हो तो विशेष विद्यार्थियों के लिए विशेष भोजन और आराम का प्रवन्ध बड़ी आसानी से किया जा सकता है।

३. स्वास्थ्य उन्नति

स्वास्थ्य उन्नति का सम्बन्ध वहुधा विद्यार्थियों के साथ होता है इसलिए उनके सहयोग को विशेष आवश्यकता होती है। एक पूरी कक्षा को छोटे २ समूहों में बांटा जा सकता है, प्रत्येक समूह के लिए एक स्वास्थ्य मानिटर (Health monitor) नियुक्त किया जा सकता हैं, जिसका कर्तव्य अपने समूह की आरोग्यता--जैसे कि शरीर और कपड़ों की सफाई, निश्चित समय पर भोजन, और साथ ही कक्षा के कमरों की स्कूल और होस्टल आदि की सफ़ाई-- की ओर उचित ध्यान देना है। प्रतियोगिताओं एवं पुरस्कार के सिलसिले को आरम्भ करके स्कूल के वातावरण को अत्यन्त साफ़ और एक व्यवस्था में रखा जा सकता है।

यह सब कहने का मतलब यह हुआ कि विद्यार्थियों को स्वास्थ्य शिक्षा एक व्यवस्थित रूप में एक विशेष अध्यापक द्वारा प्रदान की जानी चाहिए। इस का यह भी मतलब हुआ कि हाईजिन (Hygiene) सारे स्कूल के लिए वैकल्पिक विषय हो जाना चाहिए। कभी-कभी विशेष योग्य डाक्टरों द्वारा इस सम्बन्ध में भाषण भी करवाए

जाने चाहिएं, विशेष रूप में स्वास्थ्य सप्ताहों (Health weeks) का आयोजन भी करना चाहिए, जिन में बच्चों के संरक्षकों को भी निमंत्रित किया जाए। कई राज्यों में अध्यापक शिक्षण केन्द्रों के लिए हाईजिन को वैकल्पिक विषय बना देने का विचार है।

४. स्वास्थ्य शिक्षा का सलेबस

स्वास्थ्य शिक्षा के सलेबस के बारे में विद्वानों में बड़ा मतभेद है, क्योंकि लोगों के स्वास्थ्य के निम्न स्तर को केवल हाईजीन अथवा सिद्धांतों के द्वारा ही बेहतर नहीं बनाया जा सकता। हमें सीधा स्वास्थ्य और अरोग्यता के नियमों की शिक्षा से आरम्भ करना होगा, क्योंकि विद्यार्थी को स्वास्थ्य के आवश्यक ज्ञान से भली प्रकार परिचित होना चाहिए। निस्संदेह 'ज्ञान' से 'कार्य' का अधिक महत्व है, परन्तु अपने विचार बनाने के लिए, और किसी निर्णय पर पहुंचने के लिए ज्ञान के महत्व को भी आंख से ओझल नहीं किया जा सकता। स्वास्थ्य शिक्षा के सलेबस को बनाते समय हमें कई बातों का ख्याल रखना चाहिए–जैसे कि स्वास्थ्य निरीक्षण के परिणाम, बच्चों की अपनी दिलचस्पियाँ और बच्चों के औसत-स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के बारे में किसी विशेषज्ञ–डाक्टरों की सम्मतियां, और अन्य देशों में प्रचलित कार्य क्रमों का ज्ञान आदि इत्यादि।

कोर्स में निम्नलिखित विषय रखे जा सकते हैं

भोजन---इसकी शरीर के लिए आवश्यकता, यह कहां से प्राप्त किया जाता है, इसकी शुद्धता, इस के तैयार करने की विधि, इसका पचाना, और इसका गंद के रुप में शरीर से निकलना।

पानी, हवा, आराम, मनबहलाव और नींद।

अव्यवस्थित हालतों और कुत्सित प्रवृत्तियों का स्वास्थ्य पर प्रभाव, बिमारियों के कारण और उस से रक्षा के उपचार, खास अरोग्यता के नियम, जिस तरह कि घरेलू अरोग्यता, मानसिक अरोग्यता के नियम, फर्स्ट-ऐड (First aid) का ज्ञान आदि।

छोटी श्रेणियों के अध्यापकों को चाहिये कि अरोग्यता के नियमों की शिक्षा व्यवहारिक रूप से दे, बच्चों के लिए और कोई ढंग सफल नहीं हो सकता। वे बच्चों को हाथ धोने के कारण लिखने पर जोर न दे, जब तक कि उन्हें भली प्रकार हाथ धोने नहीं आते। हर रोज़ सवेरे यह देखना चाहिए कि उनके हाथ-मुंह साफ हैं, बालों को कन्धी कर ली गई है, नाखून कटे हुए हैं और कपड़े साफ तथा चुस्त हैं। दाँत देखना भी एक खेल बनाई जा सकती है, और बच्चों को सफ़ाई के पुरस्कार दिए जा सकते हैं। सो पहिले व्यवहारिक ज्ञान और बाद में सैद्धांतिक शिक्षा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी सहज नियमों की शिक्षा बड़े ही दिलचस्प और मनमोहन चित्रों द्वारा दी जा सकती है। जब बच्चों को मुंह हाथ धोते बच्चों की सुन्दर-सुन्दर तस्वीरें दिखाई जाएंगीं, तब वे साफ़, अरोग्य बच्चों के सौन्दर्य से परिचित हो जाएंगे ऐसी तस्वीरों को चिपकाने के लिए बच्चों के पास एक कापी रखी जा सकती है और तस्वीरों के साथ कुछ वाक्य लिखवाए जा सकते हैं। स्वास्थ्य के नियम किसी तुकांत में लिखे जा सकते हैं, और इस प्रकार ज़बानी याद किये जा सकते हैं। कई प्रकार की ऐसी कहानियां सुनाई जा सकती हैं, जो स्वच्छता के महत्व को प्रदर्शित करे। मतलब यह कि स्वास्थ्य शिक्षा जितनी अधिक से अधिक मनोरंजक हो सकती है, उतनी होनी चाहिए। यह केवल घोटे लगाने जैसा रूखा-सा विषय नहीं होना चाहिए, और न ही डंडे के ज़ोर से इस प्रकार का शिक्षा देनी चाहिए।

उच्च श्रेणियों में जाकर आरोग्यता के नियमों को जीव विज्ञान और वनपस्पती शास्त्र के साथ पढ़ाना चाहिए। इन श्रेणियों के लिए आरोग्यता के नियमों की पुस्तक भी होनी चाहिए। यहां पर भी अधिक बल व्यवहारिकता की ओर ही देना चाहिए। अध्यापक स्वयं भी श्रेणियों में साफ-सुथरी पोशाकों में आऐं और कमरे की सफाई पर ज़ोर दें। विद्यार्थियों की शारीरिक योग्यता की ओर पूरा ध्यान दे और देखें कि यदि नाक और कान में कुछ दोष होने के कारण विद्यार्थी पढ़ाई में पीछे रह जाते हैं तो उनकी ओर एक दम पूरा ध्यान दिया जाता है कि नहीं। यदि बच्चे कम खुराक के कारण पीछे रह जाते हों, तब उन्हें स्कूल की ओर से दूध या लस्सी दी जानी चाहिए। संयुक्त कमेटी (Joint Committee) अपनी रिपोर्ट में इस बात पर जोर देती है कि बच्चों को दोपहर को स्कूल या घर की ओर से लाया हुआ खाना मिलना चाहिए।

गर्मियों में टोपी या पगड़ी पहनना स्कूल का एक नियम-सा हो जाना चाहिए। सोने के घण्टों के बारे में, शौचादि के बारे में, दांत साफ करने और ठीक साफ सुथरे कपड़े पहनने के बारे में भी कुछ शिक्षा दी जानी चाहिए। ड्रिल आदि कराने से कमजोर पीठ सीधी और मजबूर, कन्धे चौड़े, चलना चुस्त और तेज़, विशेष व्यायाम के द्वारा छाती ठीक और बच्चे को सब ओर से निडर और शक्तिशाली बनाया जा सकता है। (इस बारे में शारीरिक शिक्षा वाले अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला जाएगा) हमारी समस्त शिक्षा का केन्द्र चुस्ती और काम है। गति ही जीवन है, और अच्छी गति वास्तविक शिक्षा।

हाई स्कूल के सलेबस में आसान से शारीरिक आरोग्यता के नियम, नालियों की सफाई, गद, कमरों में हवा का प्रबन्ध, पीने वाले पानी की हिफाज़त, बुखार, विटेमिन (Vitamins) और संतुलित भोजन (Balanced diet), व्यायाम, मकान के आंगन की सफाई,

अव्यवस्थित हालतों और कुत्सित प्रवृत्तियों का स्वास्थ्य पर प्रभाव, बिमारियों के कारण और उस से रक्षा के उपचार, खास अरोग्यता के नियम, जिस तरह कि घरेलू अरोग्यता, मानसिक अरोग्यता के नियम, फर्स्ट-ऐड (First aid) का ज्ञान आदि।

छोटी श्रेणियों के अध्यापकों को चाहिये कि अरोग्यता के नियमों की शिक्षा व्यवहारिक रूप से दे, बच्चों के लिए और कोई ढंग सफल नहीं हो सकता। वे बच्चों को हाथ धोने के कारण लिखने पर ज़ोर न दे, जब तक कि उन्हें भली प्रकार हाथ धोने नहीं आते। हर रोज़ सवेरे यह देखना चाहिए कि उनके हाथ-मुंह साफ हैं, बालों को कन्धी कर ली गई है, नाखून कटे हुए हैं और कपड़े साफ तथा चुस्त हैं। दाँत देखना भी एक खेल बनाई जा सकती है, और बच्चों को सफ़ाई के पुरस्कार दिए जा सकते हैं। सो पहिले व्यवहारिक ज्ञान और बाद में सैद्धांतिक शिक्षा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी सहज नियमों की शिक्षा बड़े ही दिलचस्प और मनमोहन चित्रों द्वारा दी जा सकती है। जब बच्चों को मुंह हाथ धोते बच्चों की सुन्दर-सुन्दर तस्वीरें दिखाई जाएंगीं, तब वे साफ़, अरोग्य बच्चों के सौन्दर्य से परिचित हो जाएंगे ऐसी तस्वीरों को चिपकाने के लिए बच्चों के पास एक कापी रखी जा सकती है और तस्वीरों के साथ कुछ वाक्य लिखवाए जा सकते हैं। स्वास्थ्य के नियम किसी तुकांत में लिखे जा सकते हैं, और इस प्रकार ज़बानी याद किये जा सकते हैं। कई प्रकार की ऐसी कहानियां सुनाई जा सकती हैं, जो स्वच्छता के महत्व को प्रदर्शित करे। मतलब यह कि स्वास्थ्य शिक्षा जितनी अधिक से अधिक मनोरंजक हो सकती है, उतनी होनी चाहिए। यह केवल घोटे लगाने जैसा रूखा-सा विषय नहीं होना चाहिए, और न ही डंडे के ज़ोर से इस प्रकार का शिक्षा देनी चाहिए।

उच्च श्रेणियों में जाकर अरोग्यता के नियमों को जीव विज्ञान और बनपस्पती शास्त्र के साथ पढ़ाना चाहिए। इन श्रेणियों के लिए आरोग्यता के नियमों की पुस्तक भी होनी चाहिए। यहां पर भी अधिक बल व्यवहारिकता की ओर ही देना चाहिए। अध्यापक स्वयँ भी श्रेणियों में साफ-सुथरी पोशाकों में आऐं और कमरे की सफाई पर ज़ोर दें। विद्यार्थियों की शारीरिक योग्यता की ओर पूरा ध्यान दे और देखें कि यदि नाक और कान में कुछ दोष होने के कारण विद्यार्थी पढ़ाई में पीछे रह जाते हैं तो उनकी ओर एक दम पूरा ध्यान दिया जाता है कि नहीं। यदि बच्चे कम खुराक के कारण पीछे रह जाते हों, तब उन्हें स्कूल की ओर से दूध या लस्सी दी जानी चाहिए। संयुक्त कमेटी (Joint Committee) अपनी रिपोर्ट में इस बात पर ज़ोर देती है कि बच्चों को दोपहर को स्कूल या घर की ओर से लाया हुआ खाना मिलना चाहिए।

गर्मियों में टोपी या पगड़ी पहनना स्कूल का एक नियम-सा हो जाना चाहिए। सोने के घण्टों के बारे में, शौचादि के बारे में, दांत साफ करने और ठीक साफ सुथरे कपड़े पहनने के बारे में भी कुछ शिक्षा दी जानी चाहिए। ड्रिल आदि कराने से कमजोर पीठ सीधी और मजबूर, कन्धे चौड़े, चलना चुस्त और तेज़, विशेष व्यायाम के द्वारा छाती ठीक और बच्चे को सब ओर से निडर और शक्तिशाली बनाया जा सकता है। (इस बारे में शारीरिक शिक्षा वाले अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला जाएगा) हमारी समस्त शिक्षा का केन्द्र चुस्ती और काम है। गति ही जीवन है, और अच्छी गति वास्तविक शिक्षा।

हाई स्कूल के सलेबस में आसान से शारीरिक अरोग्यता के नियम, नालियों की सफाई, गद, कमरों में हवा का प्रबन्ध, पीने वाले पानी की हिफाज़त, बुखार, विटेमिन (Vitamins) और संतुलित भोजन (Balanced diet), व्यायाम, मकान के आंगन की सफाई,

अव्यवस्थित हालतों और कुत्सित प्रवृत्तियों का स्वास्थ्य पर प्रभाव, बिमारियों के कारण और उस से रक्षा के उपचार, खास अरोग्यता के नियम, जिस तरह कि घरेलू अरोग्यता, मानसिक अरोग्यता के नियम, फर्स्ट-ऐड (First aid) का ज्ञान आदि।

छोटी श्रेणियों के अध्यापकों को चाहिये कि अरोग्यता के नियमों की शिक्षा व्यवहारिक रूप से दे, बच्चों के लिए और कोई ढंग सफल नहीं हो सकता। वे बच्चों को हाथ धोने के कारण लिखने पर जोर न दे, जब तक कि उन्हें भली प्रकार हाथ धोने नहीं आते। हर रोज सवेरे यह देखना चाहिए कि उनके हाथ-मुंह साफ हैं, बालों को कन्धी कर ली गई है, नाखून कटे हुए हैं और कपड़े साफ तथा चुस्त हैं। दाँत देखना भी एक खेल बनाई जा सकती है, और बच्चों को सफ़ाई के पुरस्कार दिए जा सकते हैं। सो पहिले व्यवहारिक ज्ञान और बाद में सैद्धांतिक शिक्षा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी सहज नियमों की शिक्षा बड़े ही दिलचस्प और मनमोहन चित्रों द्वारा दी जा सकती है। जब बच्चों को मुंह हाथ धोते बच्चों की सुन्दर-सुन्दर तस्वीरें दिखाई जाएंगीं, तब वे साफ़, अरोग्य बच्चों के सौन्दर्य से परिचित हो जाएंगे ऐसी तस्वीरों को चिपकाने के लिए बच्चों के पास एक कापी रखी जा सकती है और तस्वीरों के साथ कुछ वाक्य लिखवाए जा सकते हैं। स्वास्थ्य के नियम किसी तुकांत में लिखे जा सकते हैं, और इस प्रकार ज़बानी याद किये जा सकते हैं। कई प्रकार की ऐसी कहानियां सुनाई जा सकती हैं, जो स्वच्छता के महत्व को प्रदर्शित करे। मतलब यह कि स्वास्थ्य शिक्षा जितनी अधिक से अधिक मनोरंजक हो सकती है, उतनी होनी चाहिए। यह केवल घोटे लगाने जैसा रूखा-सा विषय नहीं होना चाहिए, और न ही डंडे के ज़ोर से इस प्रकार का शिक्षा देनी चाहिए।

उच्च श्रेणियों में जाकर अरोग्यता के नियमों को जीव विज्ञान और बनपस्पती शास्त्र के साथ पढ़ाना चाहिए। इन श्रेणियों के लिए आरोग्यता के नियमों की पुस्तक भी होनी चाहिए। यहां पर भी अधिक बल व्यवहारिकता की ओर ही देना चाहिए। अध्यापक स्वयं भी श्रेणियों में साफ-सुथरी पोशाकों में आऐं और कमरे की सफाई पर ज़ोर दें। विद्यार्थियों की शारीरिक योग्यता की ओर पूरा ध्यान दे और देखें कि यदि नाक और कान में कुछ दोष होने के कारण विद्यार्थी पढ़ाई में पीछे रह जाते हैं तो उनकी ओर एक दम पूरा ध्यान दिया जाता है कि नहीं। यदि बच्चे कम खुराक के कारण पीछे रह जाते हों, तब उन्हें स्कूल की ओर से दूध या लस्सी दी जानी चाहिए। संयुक्त कमेटी (Joint Committee) अपनी रिपोर्ट में इस बात पर जोर देती है कि बच्चों को दोपहर को स्कूल या घर की ओर से लाया हुआ खाना मिलना चाहिए।

गर्मियों में टोपी या पगड़ी पहनना स्कूल का एक नियम-सा हो जाना चाहिए। सोने के घण्टों के बारे में, शौचादि के बारे में, दांत साफ करने और ठीक साफ सुथरे कपड़े पहनने के बारे में भी कुछ शिक्षा दी जानी चाहिए। ड्रिल आदि कराने से कमजोर पीठ सीधी और मजबूर, कन्धे चौड़े, चलना चुस्त और तेज़, विशेष व्यायाम के द्वारा छाती ठीक और बच्चे को सब ओर से निडर और शक्तिशाली बनाया जा सकता है। (इस बारे में शारीरिक शिक्षा वाले अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला जाएगा) हमारी समस्त शिक्षा का केन्द्र चुस्ती और काम है। गति ही जीवन है, और अच्छी गति वास्तविक शिक्षा।

हाई स्कूल के सलेबस में आसान से शारीरिक अरोग्यता के नियम, नालियों की सफाई, गद, कमरों में हवा का प्रबन्ध, पीने वाले पानी की हिफाज़त, बुखार, विटेमिन (Vitamins) और संतुलित भोजन (Balanced diet), व्यायाम, मकान के आंगन की सफाई,

आम फैली हुई बिमारियों के बारे में ज्ञान और उनकी चिकित्सा आदि रखे जा सकते हैं।

अध्यापकों को ख्याल रखना चाहिए कि बच्चों पर घर के काम का अधिक बोझ न पड़े।

सो ठीक कार्यक्रम और ठीक ढंग ही बच्चों के स्वास्थ्य को ठीक रख सकते हैं। कम खुराक के शिकार, दोषों से भरे हुए बच्चों पर कोई भी जाति बहुत देर तक नहीं टिक सकती। यदि बच्चों के विकाश की ओर पूरा ध्यान दिया जाए, तब ही वे वास्तविक अर्थ में अच्छे नागरिक बन सकेंगे। देश के सम्मुख सचमुच ही एक सुनहरा अवसर है कि एक मजबूत और अरोग्य जाति की नींव रखने के लिए बच्चों की ओर पूरा ध्यान दे; ताकि आज के बच्चे कल एक शानदार दुनिया बना सकें, क्योंकि आज के बच्चें ही कल के नागरिक होंगे।

मानसिक स्वास्थ्य

Mental Health

१. मानसिक स्वास्थ्य का महत्व

यह साधारणता कहा जाता है कि एक स्वस्थ मन एक स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है। शारीरिक नीरोगता अपने-आप में कोई उद्देश्य नहीं रखती। बल्कि बालों के मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिए ही होती है। मानसिक रूप से नीरोग बालक दुनिया के लिए बहुत लाभदायक व्यक्ति बन सकते हैं, और दूसरों की सहायता भी भली प्रकार कर सकते हैं। और इसी मानसिक

नीरोगता के कारण वे अपनी मर्जी के अनुसार पेशे भी अपना सकते हैं। सो मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ हुआ समस्त व्यक्तित्व का स्वस्थ होना।

मानसिक स्वास्थ्य के दो शत्रु होते हैं—अपने आप को खतरे में अनुभव करने वाला भाव, और हीनता-ग्रन्थि। यह दोनों ही बच्चे को अपनी शक्तियों का उचित एवं स्वाभविक उपयोग नहीं करने देते। छोटा बच्चा जब अपनी जीवन-यात्रा आरम्भ करता है तो अपने आप को खतरे में अनुभव करता है। अपने सामाजिक जीवन के चारों ओर एक अभाव अनुभव करता है। इस प्रकार का हीनता का भाव, ज्यों ज्यों बालक बड़ा होता जाए, दूर होता जाना चाहिए। यदि यह दूर नहीं होता, और डर उसकी ज़िन्दगी पर काबू पा लेता है, तो वह अपने आप को बड़ी ही अविश्वासनीय स्थिति में फंसा हुआ अनुभव करेगा और कोई भी रचनात्मक कार्य में वह असमर्थ होगा। उसका अपने आप में विश्वास समाप्त हो जाएगा। वह सजनात्मक के स्थान पर मात्र एक एक अनुकर्ता रह जाएगा। यह अपनी शक्तियों को भली प्रकार उपयोग में नहीं ला सकेगा और इसका परिणाम एक निर्बल एवं व्यर्थ-सा व्यक्तित्व होगा। इसी प्रकार हीनता-ग्रन्थि का भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता यदि बच्चे में आरम्भ से ही यह भाव पाया जाता है कि वह इतना अच्छा नहीं जितने कि बाकी, कि जो कुछ भी वह करता है वह व्यर्थ है, कि जीवन में असफल होना ही उसके भाग्य में लिखा है, तब जानवर एवं दूसरों पर प्रभाव डालने वाले गुण जोकि एक अच्छे व्यक्तित्व के लिए आवश्यक हैं—उस में से लुप्त हो जाते हैं। हीनता का भाव उसमें घर कर जाता है। उसके दिल के भाव अन्दर ही दबे-घुटे रह जाते हैं। कई कुत्सित भावनाएँ व्यक्त होने के लिए छटपटाती रहती हैं, और उसका मानसिक स्वास्थ्य पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है।

यहां पर यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि कुछ रचनात्मक

कार्य करने के लिए स्वास्थ्य का अच्छा होना निवआर्य है और यह भी आवश्यक है कि बच्चा हर ऐसे काम में प्रसन्नता अनुभव करे। इस प्रकार के विचार बच्चों में उत्पन्न करना विद्वानों का आवश्यक कर्तव्य है। अध्यापक का सब से पहिला यह काम है कि वह बच्चों के मन की उमंगों और रूचियों को उपयोग में लाने के पूर्ण अवसर प्रदान करे और इन रूचियों को अच्छी ओर लगा कर किसी भले उद्देश्य के लिए प्रेरित करे। इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि अक्षुण्ण विचार दुनिया की हर बिमारी का ईलाज है। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थिनों को सुन्दर विचारों से समृद्ध बनाएं। काम बेशक ज़्यादा हो जाए, पर किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि काम किसी को समाप्त नहीं कर सकता, परन्तु चिन्ताओं ने हज़ारों मनुष्यों का नाश कर दिया है। चिन्ता एक ऐसी छैनी है, जिसके द्वारा चेहरे पर दरारें सी पड़ जाती हैं। इसके विपरीत प्रसन्नता एक चमत्कार का सा काम कर सकती है। हंसना एक ऐसी दवा है जो समस्त बिमारियों को दूर कर सकता है; और उदास विचारों से, जो कि ज़िन्दगी को दुःखदायी बना देते हैं, बचाना है। अध्यापक को चाहिए कि आरम्भ से ही विद्यार्थियों के विचारों को स्वस्थ मार्ग पर डाले, अच्छे और सुन्दर उद्देश्य उनके समुख रखे, ताकि बच्चे उन्हें प्राप्त करने में प्रयत्नशील बने रहें और अनेक प्रकार की मानसिक विकृतियों से बच्चे रहें।

२. मानसिक स्वास्थ्य किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ?

(१) अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थियों को निकट से जाने —इस प्रकार बच्चा यह अनुभव करेगा कि वह उसमें विशेष

दिलचस्पी लेता है और उसकी सहायता करने के लिए तत्पर है प्यार और मित्रता के सम्बन्ध, बच्चों में जो कुछ भी सुन्दर है, उसे अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करेगा ।

(२) बच्चे की अपनी इच्छानुसार काम करने में खुले अवसर प्रदान किए जाने चाहिएँ ।

(३) बुरे विचारों को समूल नष्ट कर देने के लिए विशेष ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है ।

(४) यौन प्रवृत्तियों को उचित रूप से अच्छी ओर लगाना चाहिए । यदि बच्चों की रुचियों को रचनात्मक कार्यों की ओर प्रेरित किया जाए, तो हम मानसिक निरोगता प्राप्त करने में बच्चों की पर्याप्त सहायता कर रहे होंगे । अध्यापक विद्यार्थियों को इस प्रकार की शिक्षा दें कि बच्चों को रचनात्मक शक्तियों को पूर्ण रुप से प्रफुल्लित और विकासित होने का अवसर मिले ।

३. भोजन और स्वास्थ्य के नियम

(The problem of malnutrition)

महान अन्वेषकों का यह विचार है कि देश के अच्छे से अच्छे स्कूलों में भी—जिनकी कि भव्य इमारतें हैं, खेलों के शानदार मैदान और शारीरिक शिक्षा के योग्य अध्यापक हैं-डाक्टरों की रिपोर्टें संतोष-जनक नहीं । इसका सब से बड़ा कारण यह है कि बच्चों को ठीक प्रकार का भोजन नहीं दिया जाता—ग़लत किस्म का भोजन समस्त बिमारियों की जड़ है । थोड़ी और ग़लत खुराक पर पलने वाले बच्चों को पढ़ाना न केवल अध्यापक की शक्तियों को ही व्यर्थ करना है, बल्कि बच्चे के साथ भी एक अत्याचार करना है, क्योंकि एक थके हुए नर्वस सिस्टम (Nervous System) होने के कारण शरीर में बड़ी जल्दी विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं । ग़लत किस्म की खुराक खाने वाले

को पढ़ाना असम्भव हो जाता हैं, और यदि पढ़ाने का यत्न किया भी जाए तो बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

डाक्टरों का अब यह विचार है कि ग़लत किस्म की खुराक बहुत सी बिमारियों की जड़ है। खुराक सम्बन्धी आजकल की खोजों ने यह बताया है कि खुराक में विशेष तत्त्व-जिन्हें विटामिन कहा जाता है—होने अत्यन्त आवश्यक हैं। यह तत्व ताज़े फलों में, हरी सबज़ियो, दूध-मक्खन, मच्छली का तेल और बहुत से अन्न के छिलकों में होते हैं। इन विटामिन की कमी के कारण कई प्रकार की बिमारियां हो जाती हैं सो इस प्रकार ऐसे बच्चे, जिन्हें भली प्रकार खुराक नहीं मिलती, भली प्रकार विकास नहीं कर सकते। या तो वे अपनी उमर से ज़्यादा छोटे होते हैं, या हल्के, उनमें शक्ति कम होती है। और चेहरे पर भी एक उदासी सी छाई रहती है। जिन बच्चों को खुराक मिलती है वे भी कई प्रकार की बिमारियों के शिकार हो जाते हैं।

यहां पर स्कूल खुराक के दोषों को दूर करने में कई प्रकार की सहायता कर सकता है। यदि घर जहां कि बच्चा आता है उसे खुराक नहीं दे सकता, जोकि उसके विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, तो स्कूल को उसकी सहायता करनी चाहिए। संयुक्त कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर ज़ोर दिया है कि सारे बच्चों के लिए दुपहर का खाना स्कूल में ही खाने का प्रबन्ध होना चाहिए—चाहे वे खाना घर से लायें, और चाहे स्कूल की ओर से दिया जाए। प्रगतिशील स्कूलों में अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि खुराक के दोषों को दूर करना स्कूल के उत्तरदायित्वों में से एक है, क्योंकि विद्या का मतलब केवल पढ़ाना नहीं, बल्कि बच्चे के स्वास्थ्य और शरीर की भलाई की ओर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इस लिए

आवश्यक है कि किसी प्रकार का शक्तिदायक भोजन स्कूल की ओर से दिया जाए। गरीब परिवारों के सहायक के लिए कुछ स्कूल सवेरे की रोटी, दोपहर का खाना और दूध, थोड़े ही पैसों के बदले में दे रहे हैं।

इसके अतिरिक्त बच्चों के स्वभाव और खुराक में परिवर्तन लाने के लिए सरक्षकों का काम काफी सहज हो सकता है, यदि अच्छी खुराक का कार्यक्रम स्कूल में चल रहा हो। यदि स्कूल में बच्चे को खुराक के नियमों के बारे में ज्ञान दिया जाता है और उस ज्ञान को कार्यांचित करने के लिए स्कूल में अवसर भी प्रदान किए जाते हैं, तब घर में भी इस ज्ञान को व्यवहारिक रूप मिल सकता है। सरंक्षकों का कर्तव्य है कि स्कूल के कार्यक्रभ में सहायता करे और उसे सफल बनाने में पूरा हाथ बटाएं।

शासन का यह कर्तव्य है कि स्कूल को बच्चों की खुराक के लिए खुले पैसे दें, क्योंकि गरीबी बिमारी जैसे शत्रुओं को दूर करके एक अच्छी जाति का निर्माण उसका कर्तव्य है।

—=—

कांड १३

शारीरिक शिक्षा

१. शारीरिक शिक्षा का महत्व

वह आदमी स्वास्थ्य नहीं कहला सकता जो कभी बिमार न पड़ा हो, स्वास्थ्य व्यक्ति तो वह है जो बड़ी अच्छी तरह से जी सके और बहुत ही अच्छी तरह से ज़्यादा से ज़्यादा काम भी कर सके। आज का प्रत्येक विद्वान बच्चे के स्वास्थ्य को स्वास्थ देखना चाहता है। अच्छा क्ष्वास्थ्य शिक्षा का एक अप्रसांगिक अंग नहीं समझा जाता, बल्कि वह तो शिक्षा का आवश्यक अंग माना जाता है। यदि हम मनुष्य का पूर्ण-विकास करना चाहते हैं, तो हमें मनुष्य के समस्त अवयों को काम में लाना चाहिए। रूसो (Rousseau) का बिचार है,--शरीर की सुन्दर और अच्छी बनावट ही दिमाग़ के काम को सहज एवं विश्वसनीय बना सकती है। ऐसी शिक्षण-पद्धति जो शरीर को बौद्धिक एवं नैतिक पक्ष से पृथक करती है अथवा पृथक करने का प्रयत्न करती है, वह मस्तष्क और शरीर

की एकता को भूल जाती है इसलिए यह गलत है; क्योंकि यदि हम एक मनुष्य को पढ़ाना चाहते हैं तो हमें उस के दिल और दिमाग़ को एक साथ ही विकसित करने का प्रयत्न करना पड़ेगा। स्वभाव और आचरण अभिन्न तत्व हैं। शरीर के प्रत्येक अंग के विकास के साथ ही ज़िन्दगी की लड़ाई सफलता के साथ लड़ी जा सकती है। स्पेंसर ने ठीक कहा है—'ज़िन्दगी में सफल होने के लिए एक अच्छा पशु होना अत्यन्त आवश्यक है और देश की खुशहाली के लिए अच्छी पशुओं की जाति होनी पहली शर्त है' इस कथन में थोड़ा सा भी झूठ नहीं हैं, क्योंकि स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है।

वह दिन गए जबकि आत्मा को उन्नत करने के लिए शरीर को सुखाने पर ज़ोर दिया जाता था, जब यह ख्याल किया जाता था कि शरीर और आत्मा एक दूसरे से विपरीत ही हैं। वास्तविक शिक्षा का परिणाम एक जर्जरित स्वास्थ्य और हड्डियों के पिंजर पर स्थित एक विकसित मस्तिष्क नहीं है; बल्कि एक प्रफुल्लित स्वास्थ्य पर स्थिर एक विवेकपूर्ण एवं विकसित मस्तिष्क होता है। तीन प्रकार की शिक्षाओं में से—बौद्धिक, नैतिक एवं शारीरिक—तीसरी को सब से अधिक महत्त्व दिया जाता है। अध्यापक का कर्तव्य है कि बच्चों को जितना अधिक हो सकता है, नैतिक, बौधिक और शारीरिक रूप से पूर्ण बनाएं। इसीलिए डबल्यू. एम. रायबर्न (W. M. Ryburn) का विचार है कि हमें भारतीय शिक्षा के लिए एक शारीरिक शिक्षा की फ़िलासफ़ी की आवश्यकता है, जिस में शारीरिक शिक्षा को अपना यथायोग्य स्थान मिले, और जिस में इस के महत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार किया जाए। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि ठीक खुराक, चिकित्साएं स्वास्थ्य के नियमों के अनुकूल आचरण—चाहे यह सब कितने ही अच्छे क्यों न हों, अपने आप

सकते, केवल थोड़े से विद्यार्थी ही उन से लाभ उठा सकते हैं। विद्यार्थी, जो कि गरीब घरों से आते हैं वे खेलों का सामान खरीदने की समर्थ्य नहीं रखते, और स्कूल की तरफ से ऐसे सामान देने का प्रबन्ध नहीं होता। खेलों का भली प्रकार से प्रबन्ध भी नहीं किया जाता। कई बार समय ही सब विद्यार्थियों को ठीक नहीं बैठता। विद्यार्थी और उन के माता-पिता पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान देते हैं क्योंकि विद्यार्थी मैच और टूर्नामैंट में अच्छे भी निकल आएँ तो भी क्यामत (परीक्षा) वाले दिन उनकी परख उसी परीक्षा की कसौटी पर होती है। पास हो गये तो अच्छा, नहीं तो कोई पूछता ही नहीं।

अच्छी शारीरिक शिक्षा देने में इस प्रकार की कई रुकावटें हैं!

३. क्या शारीरिक शिक्षा और खेलें अनिवार्य बना दी जानी चाहिएं ?

यों यह बड़ा-अजीब सा लगता हैं कि खेलों को भी अनिवार्य बनाया जाए, पर याद रखना चाहिए कि हमारे देश में मजबूरी ही कुछ कर सकती है। जब तक विषय को अनिबार्य नहीं कर दिया जाता, तब तक उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे और नवयुवक अपनी शरीरिक रक्षा की ओर पूरा ध्यान दें। इस समय उन्हें अपने शरीर को भली प्रकार रखने का ख्याल नहीं, न ही वे किसी प्रकार का व्यायाम ही करते हैं क्योंकि यह आदत उन में आरम्भ से ही नहीं डाली जाती। इसलिए जरूरत है कि हमारे युवक स्कूलों और कालेजों से सुन्दर शरीर भी ले कर निकलें और इसलिए इसे अनिवार्य बनाये बगैर और कोई चारा भी नहीं।

से एक सुन्दर शरीर का निर्माण नहीं कर सकते, इस लिए अच्छी शारीरिक शिक्षा देने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। शरीर को सुन्दर और शक्तिशाली बनाना एक राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न है, इसलिए प्रत्येक स्कूल, जो राष्ट्र निर्माण का गौरव प्राप्त करना चाहता है, को शारीरिक शिक्षा का यथायोग्य प्रबन्ध करना चाहिए।

शारीरिक खेलों से शरीर मज़बूत होगा और आत्मा भी कठिनाइयों के संमुख शक्तिशाली बन सकेगी। 'भारत को किस चीज़ की इस समय आवश्यकता है'—विवेकानन्द लिखता है—'अब भगवत् गीता नही, बल्कि फुटबाल खेलने वाले मैदान की आवश्यकता है।' भारत जैसे साधुओं के देश में बच्चों के लिए शरीर को अच्छा बनाना और अधिक आवश्यक हो जाता है। यह शिक्षा न केवल शरीर को बनाने में ही सहायता दे सकती है, बल्कि एक अच्छा नागरिक बनने के लिए भी उत्तम शिक्षा दे सकती है।

२. आज की शारीरिक शिक्षा के दोष

आज के स्कूलों में शारीरिक शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। न ही अध्यापक दिलचस्पी लेते हैं और न ही विद्यार्थी। शारीरिक शिक्षा के लिए कोई अलग अध्यापक नहीं रखा जाता, बल्कि यह उत्तरदायित्व भी पहिले से ही बोझ के नीचे दबे अध्यापकों पर फेंक दी जाती है, और इसलिए वे भी इस को एक बेगार का काम समझ कर खत्म करने के लिए विवश हो जाते हैं। इस के अतिरिक्त स्कूल की इमारत बनाते समय कक्षाओं के कमरों का तो ख्याल रख लिया जाता है, लेकिन खेलों के मैदानों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता—इसलिए यदि कोई एकाधि मैदान बना भी लिया जाता है, तब वहां सारे विद्यार्थी खेल नहीं

सकते, केवल थोड़े से विद्यार्थी ही उन से लाभ उठा सकते हैं। विद्यार्थी, जो कि गरीब घरों से आते हैं वे खेलों का सामान खरीदने की समर्थ्य नहीं रखते, और स्कूल की तरफ से ऐसे सामान देने का प्रबन्ध नहीं होता। खेलों का भली प्रकार से प्रबन्ध भी नहीं किया जाता। कई बार समय ही सब विद्यार्थियों को ठीक नहीं बैठता। विद्यार्थी और उन के माता-पिता पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान देते है क्योंकि विद्यार्थी मैच और टूर्नामैंट में अच्छे भी निकल आएँ तो भी क्यामत (परीक्षा) वाले दिन उनकी परख उसी परीक्षा की कसौटी पर होती है। पास हो गये तो अच्छा, नहीं तो कोई पूछता ही नहीं।

अच्छी शारीरिक शिक्षा देने में इस प्रकार की कई रुकावटें हैं!

३. क्या शारीरिक शिक्षा और खेलें अनिवार्य बना दी जानी चाहिएं ?

यों यह बड़ा-अजीब सा लगता हैं कि खेलों को भी अनिवार्य बनाया जाए, पर याद रखना चाहिए कि हमारे देश में मजबूरी ही कुछ कर सकती है। जब तक विषय को अनिवार्य नहीं कर दिया जाता, तब तक उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे और नवयुवक अपनी शरीरिक रक्षा की ओर पूरा ध्यान दें। इस समय उन्हें अपने शरीर को भली प्रकार रखने का ख्याल नहीं, न ही वे किसी प्रकार का व्यायाम ही करते हैं क्योंकि यह आदत उन में आरम्भ से ही नहीं डाली जाती। इसलिए जरूरत है कि हमारे युवक स्कूलों और कालेजों से सुन्दर शरीर भी ले कर निकलें और इसलिए इसे अनिवार्यं बनाये बगैर और कोई चारा भी नहीं।

४. किस प्रकार की शारीरिक शिक्षा दी जाए

शरीरिक शिक्षा में वे सब खेलें आयेंगी जोकि शरीरिक स्वास्थ्य बनाने में सहायक हों—न केवल व्यायाम, खेलें, तैरना और नाचना, बल्कि खुला खेलना, पैदल यात्रा, स्कूल की ओर से किसी स्थान को देखने जाना, भ्रमण और विहार, बाहर केम्प लगाने और हर प्रकार के वे काम और खेलें आऐंगी जो कि सभी प्रकार से रहने के लिए बच्चों में रुचि उत्पन्न करती है।

शारीरिक शिक्षा, जब बच्चा स्कूल में आना शुरू करता है तब से ही आरम्भ कर देनी चाहिए और सारे स्कूल-समय में इसे जारी रखना चाहिए।

५. बच्चों के स्कूल मेंं शारीरिक शिक्षा

बच्चों के स्कूल के लिए शारीरिक शिक्षा के निम्नलिखित प्रयोजन होने चाहिऐ।

१. बच्चे में चुस्ती, स्वतन्त्र काम करने के लिए साहस और एक दम काम करने के लिये उत्साह पैदा करना।

२. शरीर में लचक बनाये रखना ताकि आगे जा कर शरीर के दोषों को दूर करने के लिए सुधारात्मक व्यायाम (Corrective Exercise) की आवश्यकता न पड़े।

३. प्रत्येक कार्य अथवा गति में चुस्ती और लचक प्राप्त करना।

४. खुली खेलों के द्वारा साँस और खून के दौरे को उकसाना और इस प्रकार बच्चे के विकास में और अच्छी सेहत प्राप्त करन में सहायता करना।

५. बच्चे में खुश, निडर और आज़ाद विचार पैदा करना। इसलिये छोटे बच्चों के लिए निम्नलिखित खेलें हो सकती हैं:--

१. आरम्भिक स्वर ताल युक्त खेल।
२. आरम्भिक अध्यापक द्वारा निरीक्षित खेल।
३. खुली खेलें।

आरम्भिक स्वर ताल युक्त खेलें

स्वर ताल युक्त एक स्वर और ताल में प्रदान की हुई शिक्षा के, शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम में बड़ा महत्व पूर्ण स्थान है। क्योंकि छोटे बच्चे आपस में मिल कर अपने आप को व्यक्त कर बहुत खुशी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की खेलों के द्वारा बच्चा संगीत में स्वर और ताल के तत्व को सराह सकेगा और इस प्रकार अच्छे संगीत के लिये उस में रूचि उत्पन्न होगी।

इस प्रकार की शिक्षा में ऐसे गीत जिन्हें नाटकिय रूप दिया ज सके, खेलें जिन्हें ताल अनुसार खेला जा सके आदि आ सकते हैं। परन्तु नाटकीय रूप उस समय तक नहीं देना चाहिए जब तक बच्चा अर्थ को न समझ सके। अथवा अर्थ को किसी हरकत के द्वारा व्यक्त न कर सकता हो। स्वर और ताल के साथ कोई सबक भी हो तो बहुत अच्छा है।

आरम्भिक खेलें

खेलें, जो कि किसी ताल अथवा लय में नहीं होती, को भी बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। ऐसी खेलों में गोलदारे अथवा पंक्ति में बच्चों को खड़ा करके गेंद के साथ खिलाया जा सकता है। ऐसी खेलें बच्चों में अच्छी तरह खेलने की, स्वार्थ रहित और इसी प्रकार के कई अन्य भावनायें पैदा कर सकती हैं। खेलें इस प्रकार की होनी चाहिएं कि बच्चे के शरीर को नियम अनुसार विकसित करने में सहायता कर सके।

खुली खेलें

खुली खेलों का अर्थ है ऐसी खेलें जब कि बच्चा भली प्रकार से दौड़ कूद और उछल सके। देखने वाले को चाहे ऐसी घड़ियां वास्तव में ही बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। खेलने का आनन्द अपने आप में एक खुला है इस लिए यह बच्चों के लिए काफी महत्व रखती हैं। जो बहुत से बच्चों का झुंड सा लगता है उस में भी एक प्रकार की व्यवस्था होती है। हर एक बच्चे की अपनी एक जगह होती है—चाहे एक बच्चा बिना किसी प्रयोजन के चक्कर लगा रहा हो, तो भी। शायद जो बच्चा गेंद के साथ खेल रहा हो वह सब से अच्छी तरह अपने आप को व्यक्त कर रहा हो।

सो इसलिए आवश्यक है छोटी उम्र के बच्चों को जितना स्कूल में खेलना चाहे, खेलने दिया जाये। जब बच्चा ऐसी खुली खेलों से तग आ जायेगा तो चुपचाप खेलना पसन्द करेगा। बच्चों को बहुत समय के लिए 'पैंती' (Alphabets) याद करने के लिए बैठना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल हैं, परन्तु उन के लिए काफी देर खेलना अस्वमविध नहीं।

६. प्राइमरी स्कूलों के लिए शारीरिक शिक्षा

प्राईमरी स्कूलों के लिए शारीरिक शिक्षा में वे सब खेलें आ जाती हैं, जिन का कि कुछ शारीरिक लाभ होता है, जो आत्म-अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर प्रदान करे, जो उन की आयु अनुकूल हों, जो ऐसे अवसर प्रदान करें जिनके द्वारा विद्यार्थियों में समाजिक चेतनता विकसित हो। प्राइमरी स्कूल के विद्यार्थियों के लिए कम से कम पांच घण्टे के शारीरिक काम की आवश्यकता है। प्राइमरी स्कूल के विद्यार्थियों के शारीरिक शिक्षा के लिए निम्नलिखित खेलें रखी

जा सकती हैं ।

(अ) खेलना, अध्यापक द्वारा निरीक्षित खेलें, तैरना तथा अन्य खेलें ।

(आ) नाचना और नाटक खेलना ।

(इ) छलाँगें मारना ।

(ई) प्राकृतिक खेलें—दौड़ना, किसी चीज़ ऊपर चढ़ना; कूदना ।

(उ) शारीरिक दोषों को दूर करने के लिए खास-खास व्यायाम ।

अध्यापक द्वारा निरीक्षित खेलें

खेलों में यदि उचित पथ-प्रदर्शन किया जाये, तो समाज में रहने के लिए विद्यार्थियों में आवश्यक गुणों को विकसित किया जा सकता है । खेलों को साधारणतय नागरिकता की शिक्षा की प्रयोग-शाला कहा जाता है ।

इस प्रकार की खेलों का सब से बड़ा लाभ यह है, कि इन के द्वारा शरीर के समस्त अवयवों को विकसित किया जा सकता है। जिन खेलों का सम्बन्ध सीधा खून के दौरे से होता है उनके द्वारा स्वास्थ्य लाभ करने में सहायता मिल सकती है । यदि खेलें आयु और लिंग के अनुसार हों, तो बहुत से अच्छे गुण बच्चे सीख सकते हैं । शरीर में लचक एवं शक्ति आती है ।

यद्यपि इस प्रकार की खेलें होनी चाहिए, परन्तु यह भी देखना ज़रूरी है कि आधी छुट्टी में विद्यार्थियों को खेलों के लिए पूरे आराम मिलें, और उन्हें खुली खेलें खेलने के भी अवसर मिलने चाहिएं, ताकि वे अपनी इच्छानुसार खेलें और कूदें, केवल शर्त्त यह है कि हालात अच्छे हों और खेलने का आवश्यक सामान मिल सकता हो।

तैरना

तैरना भी एक अच्छी खेल है। परन्तु हमारे देश के लिए यह दुःख की बात है कि तैरने के लिए तालाब नहीं होते, जिस प्रकार अन्य देशों में हैं। तैरना न केवल बच्चों में विश्वास पैदा करता है बल्कि पानी का डर भी दूर करता है।

खेलें

(Athletics)

इस प्रकार की खेलों का प्राइमरी स्कूल में महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चे हमेशा ही दौड़ना कूदना चाहते हैं। नयी-नयी खेलो के लिए—बांधा-दौड़ (obstacle races), अण्डे और चम्मचो की खेलें (Egg and spoon races), बोरी की दौड़ (Sack races) आदि का बच्चों को खास शौक होता है। मनबहलाव ही इन खेलों का विशेष प्रयोजन होता है और इन खेलों के द्वारा खेल की रुचि को प्रकट करने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सकता है। इन खेलों के द्वारा शरीर शक्तिशाली बनता है, जिस्म में एक लचक पैदा होती है, पट्ठे मजबूत होते हैं, अच्छे गुणों का संचार भी किया जा सकता है।

इस प्रकार की खेलों के लिए आवश्यक है कि इन खेलों के आवश्यक नियमों पर पहले से प्रकाश डाल दिया जाए। इस प्रकार की खेलें साल में केवल एक बार ही नहीं होनी चाहिए, बल्कि कई बार होनी चाहिएं, क्योंकि जो चीज करनी ही है उसे भली प्रकार से ही करना चाहिए। विद्यार्थियों को खेलों के दिनों के लिए बड़ी अच्छी तरह से तैयार करना चाहिए, ताकि ऐसे अवसर सब के लिए ही प्रसन्नता के अवसर बन सकें।

नाचना और नाटक खेलना

किसी ताल अथवा लय के साथ खेली हुई खेलों ने मनुष्य के इतिहास में काफी काम किया हैं। प्राइमरी स्कूल के शारीरिक शिक्षा के कार्य क्रम ग्रामीण में गिद्धा खेलों के साथ गाना (तियां), पशुओं की अनुकृति, किसी व्यय पर दौड़ना, उछलना आदि बड़े ही ज़रूरी हिस्से हैं। इस प्रकार के ताल और राग विद्यार्थियों के लिए प्रसन्नता दायक भी हो सकते हैं।

छलांगें और कलाबाज़ियां लगाना

छलांगें लगाने में भी बच्चे बड़ा आनन्द अनुभव करते हैं। विशेष कर लड़के नये हुनर सीखने में और नये करतब दिखाने में बड़ी प्रसन्नता अनुभव करते हैं। बच्चे कलाबाज़ियों को खेल की तरह सीखते हैं। इस प्रकार की कलाबाजियां और छलांगें खुशी का वातावरण पैदा करती हैं और उत्साह तथा चुस्ती पैदा करके शरीर पर नियंत्रण रखना सिखाती हैं। यह बच्चों को जल्दी सोचना और उसके अनुसार काम करना सिखाती है। इनको विशेष विद्यार्थियों के अनुकूल भी किया जा सकता है, क्योंकि इनके विशेष वैज्ञानिक और शारीरिक नियम होते हैं।

यहां पर एक चीज़ स्पष्ट कर देनी चाहिये—एक ही प्रकार की खेलें लड़के लड़कियों के लिये ठीक नहीं। इसमें कोई शक नहीं कि शरीर की शक्ति औरु पट्ठों का ठीक प्रकार विकसित होना लड़कियों के लिये भी उतना ही ज़रूरी है जितना कि लड़कों के लिये। परन्तु एक ही प्रकार के शारीरिक कार्य दोनों के लिये इस लिये अनुपयुक्त नहीं हैं कि लड़कियां लड़कों से नीची हैं, बल्कि इसलिये कि दोनों भिन्न २ हैं। लड़कियों के लिए ऐसी खेलें होनी चाहिए, जोकि उन पर बहुत

भार में [illegible] हुई उनके शरीर के विकास में काफी सहायता दे जैसे कि मामूली प्रकार की कलाबाज़ियां, उछलने और कूदने में आसान व्यायाम, और ग्रामीण गिद्धे आदि।

प्राकृतिक खेल

बच्चे का यह स्वाभाविक स्वभाव होता है कि वह हर समय कुछ करना ही चाहता है। प्राकृतिक एवं स्वाभाविक खेलों में वह अपनी योग्यता करके आत्म-अभिव्यक्ति कर सकता है। इतना ही पर्याप्त नहीं कि उन्हें खुली तरह दौड़ने और खेलने दिया जाए, बल्कि उन्हें यह सिखाने की आवश्यकता है कि किस प्रकार ठीक दौड़ना, खेलना होता है। ऐसा बच्चा जो पैर अन्दर की ओर मोड़ कर बड़ी बुरी तरह से चलता है, उसे ठीक प्रकार से चलना सिखाना चाहिए।

विशेष व्यायाम

यह विशेष व्यायाम शरीर के दोषों को दूर करने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। इस प्रकार के ठीक करने वाले व्यायाम के सबकों के लिए योग्य डाक्टर एवं एक योग्य शारीरिक शिक्षा के अध्यापक के सहयोग की आवश्यकता होती हैं। डाक्टर का कर्तव्य है कि विद्यार्थी का निरीक्षण करके, दोष का पता लगा कर विशेष प्रकार का व्यायाम नियत करे और शरीरिक शिक्षा के अध्यापक के लिए आवश्यक है कि उन बताए हुए व्यायामों को ठीक प्रकार से कराए ताकि दोष दूर हो जाए।

सैकंडरी स्कूलों के लिए शारीरिक शिक्षा

सैकंडरी स्कूलों के शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में इस प्रकार की

खेल आनी चाहिएं जो कि शरीर के अवयवों के बराबर के विकास में सहायक हों, आत्म अभिव्यक्ति का अवसर दें, जो कुछ अर्थ रखती हो और खेलने वाले जिन से आनन्द ले सकें और ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करें, जिन के द्वारा विद्यार्थियों की सामाजिक रूचियां भी विकसित हो सकें।

निम्नलिखित खेल सैकेंड्री स्कूल के शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में रखी जा सकती है।

(अ) खुली खेलें
(आ) अध्यापक द्वारा निरीक्षित खेलें
(इ) आत्म-परीक्षण की खेलें (Self–testing)
(ई) नाच और संगीत
(उ) आरम्भिक कलाएं
(ऊ) खेलें
(ए) विशेष दोषों को दूर करने वाली खेलें

खुली खेलें

इस पड़ाव में बेमतलब दौड़ने और कूदने के स्थान पर खुली खेलें भी किसी विशेष कला या ढंग के अनुकूल होंगी।

अध्यापक द्वारा निरीक्षित खेलें

इनहें कुछ इस प्रकार की खेलें आ सकती हैं—बासकेट बाल (Basket Ball), क्रिकेट (Cricket), फुट बाल (Foot Ball), हाकी (Hockey), टैनिस (Tennis), वाली बाल (Volley-Ball), आदि। इस प्रकार की खेलों का आयोजन यदि ठीक प्रकार से किया जाये तो यह अच्छी नागरिकता की शिक्षा के लिये प्रयोग बन सकती हैं।

आत्म परीक्षण की खेलें

इस प्रकार की खेलें वे खेलते हैं जहां कि हार या जीत, पास या फेल के मानदण्डों से अपने आपको जांचा जाता है। डुबकी लगाना, दौड़ें लगानी अपने आपको जांचने वाली खेलें हैं।

नृत्य और संगीत

नाचना और गाना भी एक बहुत अच्छा व्यायाम है। नाचने से शरीर में स्फुर्ती आती है, अंगों में एक लचक पैदा होती है। यह मनोरंजन और युयकों की भावनाओं की व्यक्तीकरण बहुत ही सुन्दर साधन है। केवल व्यायाम के लिए ही व्यायाम करना व्यर्थ सा काम है, परन्तु जब ऐसे व्यायाम नाच के रूप में किए जाते हैं तो उनका कुछ अर्थ भासित होने लगता है। आज तक हमारे स्कूलों में नृत्य को कोई विशेष स्थान नहीं दिया जाता था। परन्तु अब यह प्रसन्नता की बात है कि नृत्य और संगीत को भी यथायोग्य स्थान दिया जा रहा है। नृत्य और संगीत भी अर्थपूर्ण बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त संगीत खेलों में एक सुन्दर वातावरण पैदा करके सब को आनन्द दे सकता है।

आरम्भिक कलाएं

आरम्भिक कलाएं एक दिन, महीने या साल में नहीं सिखाई जा सकतीं। बल्कि यह तो यत्न और शिक्षा से ही आ सकती हैं।

खेलें (Athletics)

खेलों का भी सैकेंडरी स्कूलों की शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों में काफी महत्वपूर्ण स्थान है ! नियमों के बारे कुछ न कुछ अवश्य बताना चाहिए।

विशेष दोषों को दूर करने वाली खेलें

इस प्रकार की खेलें शारीरिक स्थिति को ठीक करने के लिए होती हैं। इस बारे में नीचे पूर्ण विवरण के साथ चर्चा की जाएगी।

शारीरिक स्थिति

Right Posture

हमारे विद्यार्थियों में जो एक ग्राम दोष देखा गया है, वह यह है कि उनकी शारीरिक स्थति ठीक नहीं होती। तंग छाती, झुकी हुई पीठ ग्राम देखी जा सकती है। सो इन दोषों से बचने के लिए ठीक शरीरिक स्थति के बारे में कुछ बताना ग्रत्यन्त ग्रावश्यक है। ग़लत शारीरिक स्थति के कारण थकावट हो जाती है, ग्रौर थकावट के कारण फिर ग़लत शारीरिक स्थति हो जाती है—ग्रौर इसी प्रकार चक्कर चलता रहता है। यदि शारीरिक स्थिति ठीक हो तो शरीर बड़े ही ग्रच्छे ढंग से, थोड़े से यत्न से बहुत-सा काम कर सकता है। करूजर (Kruger) लिखता है क्योंकि शरीर एक श्रखलाबद्ध ढांचा है, इसीलिए ग्रल्पशक्ति से ही इसे सीधा रखा जा सकता है। शरीर को समुचित रूप से उपयोग उसी समय किया जा सकता है, जबकि सब ग्रंग एक समान हों, पट्ठे भी उसी समय ग्रपना काम भली प्रकार कर सकते हैं, जब सारे हिस्से ग्रपना भार सम्भाल रखें, तो सिर के ऊपर के हिस्से का भार रीड़ की हड्डी पर पड़ेगा ग्रौर टांगों के मार्ग से पांव तक पहुंच जाएगा। यदि शरीर का कोई ग्रंग ग्रपने उचित स्थान पर न हो, तो शरीर की स्थिति को ठीक प्रकार से रखने के लिए पट्ठों को ग्रधिक शक्ति व्यय करनी पड़ेगी। शरीर की शक्ति जो इस प्रकार व्यय की जाती है, वह व्यर्थ सिद्ध होती है। शरीर का भार हड्डियों को सहन करना चाहिए, पट्ठों को नहीं।

इस लिये विद्यार्थियों की शारीरिक स्थिति को ठीक करने के लिये अध्यापक को ठोस प्रयत्न करने चाहिएं। शारीरिक शिक्षा के अध्यापक को चाहिए कि इस प्रयोजनार्थ रोज़ एक अवकाश दे। अध्यापक को चाहिए कि बच्चों को इस बात से परिचित करा दे कि अच्छी शारीरिक स्थिति स्वाभाविक दशा है जो शरीर को भली प्रकार काम करने के योग्य बनाती है। शरीर को चुस्त और शानदार बनाने के लिये यह आवश्यक है कि शारीरिक शिक्षा का अध्यापक और डाक्टर पूर्ण सहयोग के साथ काम करें।

शारीरिक शिक्षा को अच्छी बनाने की योजनाएं

यदि हम स्कूल जाते बच्चों के शरीर को पूर्ण रूप से विकसित करना चाहते हैं तो शारीरिक शिक्षा की ओर पूरा ध्यान देना होगा। प्रत्येक स्कूल और कालज एक शारीरिक शिक्षा का अध्यापक होना चाहिए। यूनीवर्सिटी शिक्षा कमीशन (University Education Commission) अपनी दिसम्बर १९४२ अगस्त १९४९ की रिपोर्ट में इस बात पर ज़ोर दिया है कि स्कूलों में शारीरिक शिक्षा के लिए योग्य अध्यापक होने चाहिएं और इसलिए शारीरिक शिक्षा में उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए डिग्री तक कोर्स होना चाहिए। प्रत्येक यूनीवर्सिटी को चाहिए कि एक योग्य शारीरिक शिक्षा का डाइरेक्टर (Director of Physical Education) रखें।

खुली खेलों के लिए खुले मैदान और खुले सामान होने चाहिएं और प्रत्येक विद्यार्थी को, जो यूनीवर्सिटी तक शिक्षा प्राप्त करता है, दो साल की शारीरिक शिक्षा का कोर्स किया होना चाहिए।

कांड १४

यौन शिक्षा

१. यौन शिक्षा का महत्व

वैयक्तिक विकास और सामाजिक कल्याण के लिए यौन-शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है—क्योंकि मनुष्य की भूखों में यह एक अत्यन्त प्रबल भूख है। यौन प्रवृत्ति ही समूचे व्यक्तित्व को आकार प्रदान करती है। यदि यह प्रवृत्ति मनुष्य की अन्य प्रवृत्तियों, समाज की माँगों एवं रीति-रवाजों के साथ मेल नहीं खाती, तो अवश्य ही परिणाम एक संघर्ष है। जिन मनुष्य की यह रूचि पूर्ण रूप से संतुष्ठ न हो सके वह समाज--विरुद्ध कई काम करेगा, जिसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि उसे सज़ा मिलेगी। यह सज़ाएं उसे शारीरिक, सामाजिक एवं नैतिक हानियां पहुंचाती हैं। इस प्रकार सारा समाज ही एक खतरे में हो जाएगा। सो इस रूचि को भली प्रकार से समझाना और इसका उदात्तीकरण करना अत्यन्त आवश्यक है।

९. यौन के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण

इन थोड़े से वर्षों के भीतर यौन सम्बन्धी दृष्टिकोण काफी बदल चुका है। वे दिन गए जब कि यौन प्रकृति को बुरा एवं कुत्सित समझ कर इस पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए जाते थे। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि अज्ञान और भोलेपन के अनेक खतरे हैं। बच्चों के साधारण एवं स्वाभाविक प्रश्न 'बच्चा कहाँ से आता है' का उत्तर देते समय माताएं सौ टालमटोल करती हैं और काफ़ी ग़लत-मलत जवाब दे देती हैं, जिसके कारण बच्चों के लिए यह एक गोरखधन्धा-सा बन कर रह जाता है। इस उलझन में से वे बहुत देर तक नहीं निकल सकते और उनके दिल में काफ़ी ग़लत से ख्याल बैठ जाते हैं। नवीन शिक्षा इस प्रश्न को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न समझती है और विषय में बड़े विवेक के साथ शिक्षा देने की सफ़ारिश करती है। बलज़ाक (Balzac) ने भी बहुत पहले कहा था—'एक मां अपनी लड़की को १७ साल तक बड़ी सख्ती से अपने पैरों के नीचे रखती है, पर एक नौकरानी इस दीर्घ कार्य को एक शब्द या एक इशारे से चौपट कर सकती है।' सो इसलिए बच्चों को कुत्सित विचारों से, जो उसके लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं, बचाने के लिए यह आवश्यक है कि यौन सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान बच्चों को दिया जाए; अज्ञानता को एक महान नैतिय अपराध समझा जाना चाहिए।

फ्राईड और उसके सहायक मानव को इस मूल प्रवृति को ऐसे मार्ग पर डालना चाहते हैं कि मनुष्य समाज के विकास में अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान कर सके। डा. लोंग (Dr. Lang) ने यहां तक कहा कि—"मैं चुप रहने के दोषों से बचने के लिए, यौन सम्बन्धी खुली बहस के सारे खतरे सहन करना पसंद करूंगा।' जी. बी. शा (G.B. Shaw) का विचार है कि यौन शिक्षा उतनी ही

आवश्यक है, जितना कि भोजन । वास्तविकता तो यह है कि यौन प्रवृत्ति हमारे जीवन की मूल प्रवृत्ति है, हम तब तक जीवन का सम्मान करना नहीं समझते जब तक कि हम यह न जान जाएं कि इस प्रवृत्ति को किस प्रकार समझा जाए । सो इस प्रवृत्ति को कुमार्ग से रोक कर ठीक दिशा की ओर उन्मुख करने के लिए यौन शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है, ताकि मनुष्य के विकास से हर मोड़ पर उसे स्वास्थ्य वातावरण मिल सके । इस प्रकार विद्यार्थी स्वयं जान से परिचित हो सकेगा, और समाज का एक उपयोगी अंग बन सकेगा ।

३. यौन शिक्षा में माता पिता का उत्तरदायित्व

यौन शिक्षा में माता-पिता का महान उत्तरदायित्व है । माता-पिता और बच्चों का इस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिये कि बच्चे प्रश्न करने में किसी प्रकार की झिझक अनुभव न करें, और माता-पिता भी पूछे हुए प्रश्न का जवाब देने में हिचकचायें नहीं । बच्चे के आरम्भिक आयु के लिए आवश्यक यौन-शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान, एक बुद्धिमती माता द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए, परन्तु उसकी समस्त जटिलताओं में जाने की जरूरत नहीं, अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक होना चाहिए, और बच्चों के स्वाभाविक प्रश्नों का उत्तर देते हुए किसी प्रकार की झिझक और लज्जा की आवश्यकता नहीं । यौन सम्बन्धी शिक्षा माता द्वारा शुरू के सालों में ही शुरू कर दी जानी चाहिए । यौन सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान बच्चे के प्रश्न करने पर ही दिया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त यौन सम्बन्धी ज्ञान पिता की ओर से पुत्र, और माता की ओर से पुत्री को दिया जाना चाहिए, यों बच्चे को दोनों में से किसी एक अथवा दोनों को ही प्रश्न पूछने की खुली छुट्टी होनी चाहिए । आवश्यक ज्ञान ठीक समय पर ठीक ढंग से ही देना चाहिए । मां-बाप को चाहिए कि बच्चे के प्रश्नों का सच्चाई और ईमानदारी के साथ उत्तर

दें, ताकि बच्चा यह अनुभव करे कि यह कोई शर्म का विषय नहीं । बच्चे की यह उत्सुकता कि 'मैं कहाँ से आया' अत्यन्त स्वाभाविक है । चार साल का बच्चा यह जानने को उत्सुक रहता है कि बच्चे कहां से आते हैं, ज्यों ही इस प्रकार से प्रश्न पूछे जाएं उसका अत्यन्त सरल और स्वाभाविक ढंग से उत्तर देना चाहिए, यों बच्चे के समझने की शक्ति को सदैव ध्यान में रखना चाहिए । प्रश्नों के झूठे उत्तर देने से इस सम्बन्ध में बच्चे की उत्सुकता दबती नहीं बल्कि बढ़ जाती है । अतएव बच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के कुत्सित मार्गों का प्रयोग करेगा । और 'छुपाए हुए फल मीठे होते हैं' के कथनानुसार बच्चे गुप्त ज्ञान को इधर उधर से खोज कर प्राप्त करने का उपाय करते हैं । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि उसकी आदतें खराब हो जाएंगी, और वह स्वयं अपने लिए और दूसरों के लिए हानिकारक सिद्ध होगा । अब सोचना यह है कि क्या बच्चों का यह दोष है कि वह खोज कर कुछ जानना चाहता है और वह अपनी एक प्राकृतिक आवश्यकता को संतुष्ठ कर रहा है ? और फिर यदि मां बाप उसकी सहायता नहीं करेंगे तो और कौन करेगा । मां-बाप का यह कर्तव्य है कि न केवल वे उनके जानने की उत्सुकता को ही संतुष्ट करें, बल्कि उस उत्सुकता को जीवित रखें ताकि अपनी आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक ज्ञान प्राप्त करता जाए ।

मां-बाप को बच्चे के भिन्न-भिन्न समयों की अवश्यकताओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए, और उचित व्यवहार होना चाहिए ताकि स्वस्थ भावनाओं के विकास की नींव रखी जा सके । मां-बाप का दाम्पत्य जीवन भी अच्छा होना चाहिए । उनका परस्पर गम्भीर प्यार होना चाहिए, क्योंकि घर का खुश वातावरण उनके स्वास्थ में बहुत जरूरी है ।

परन्तु जहां मां बाप पढ़े लिखे हुये न हों तो वहां उतरदायित्व स्कूल पर आ पड़ता है क्योंकि जब तक मां बाप को यौन सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक के लिये बच्चों की भावनाओं के विकास को रोका नहीं जा सकता। मां बाप का स्थान स्कूल को अवश्य लेना होगा और यौन सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करना ही होगा, क्योंकि जब तक घास उगे तब तक के लिये भेड़ों को भूका नहीं रखा जा सकता।

यौन संबन्धी ज्ञान प्रदान करने की उत्तम प्रणाली का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये कोई अलग घंटियों की जरूरत नहीं और न ही स्कूल के काम से इसे पृथक समझा जाना चाहिये। यौन जावन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित है और इसको भली प्रकार पढ़ाने का यह ढंग नहीं कि इसे स्कूल की अन्य पढ़ाई से पृथक करके पढ़ाया जाये बल्कि जहां भी यह आये वहीं इसको यथायोग्य महत्व दिया जाना चाहिये। इस में किसी यौन विशेषज्ञ की भी ज़रूरत नहीं; बल्कि इस प्रकार के अध्यापक चाहिये जो अपने विषय को इस भली प्रकार से जाने कि जब कभी इस विषय से सम्बन्धित कुछ यौन ज्ञान देने की ज़रुरत पड़े तो वड़ी अच्छी प्रकार से दे सके। ऐसे विषय जो यौन से विशेष रुप से सम्बधित हों उन्हें सामाजिक विज्ञान का एक] अंग समझते हुये पढ़ाया जाये। इस लिए लड़के लड़कियों को शिक्षा देते समय बनावटी तौर से पृथक कर इसे नहीं पढ़ाया जाना चाहिये। हैवलक ऐलिस (Havelock Ellis) कहता है "ऐसी पुस्तक जिस में कि यौन के सिलसिले को बिलकुल छोड़ दिया जाये, उसे सहन नहीं किया जाना चाहिए।" इसके लिये अध्यापक का बोलने का ढंग और व्यवहार बड़ा महत्व रखता है। अध्यापक एसा होना चाहिए कि जिस पर बच्चे भरोसा रख सकें और जो

आवश्यक ज्ञान बिलकुल सच्चे सीधे ढंग से दे सकें। जहां तक हो सके यौन सम्बन्धी अच्छी बातों पर ही ज़ोर दिया जाना चाहिये। यौन सम्बन्धी असाधारणताओं (abnormalities) पर ज़ोर नहीं दिया जाना चाहिये। व्यवसिथत रूप से और बड़ी सोच समझ के साथ थोड़ा थोड़ा ज्ञान दिया जाना चाहिये। इस प्रकार का आवश्यक ज्ञान युवावस्था में ही देने के लिए नहीं छोड़ दिया जाना चाहिये क्योंकि उतनी देर तक तो आदतें पक चुकी होती हैं और स्वास्थ के खराब होने का डर रहता है। सो यौन शिक्षा सदैव आरम्भिक आयु से ही शुरु कर देनी चाहिये।

चार साल की उम्र में बच्चे कई प्रकार के प्रश्न पूछने शुरु कर देते हैं। सब से आम प्रश्न है कि 'बच्चे कहां से आते हैं' अथवा 'मैं कहां से आया'। घर में अथवा पड़ोस में बच्चे के पैदा होने पर प्रायः ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं। सूझ बूझ वाले माता पिता न ही बच्चे को टालेंगें और न ही गलत जवाब देगें बल्कि अत्यन्त चातुरी से उत्तर देंगे कि बच्चे मां के शरीर से निकलते हैं। परन्तु अनपढ़ मां बाप ऐसे उत्तर देंगे कि 'हम बच्चे को कोठी में से लाए हैं'। आदि इत्यादि। बच्चे फिर भी कई प्रश्न पूछेंगे, पर बहुत बार नहीं। यदि बच्चा फिर प्रश्न नहीं करता तो इस का यह अर्थ नहीं कि उस को और जानने की उत्सुक्ता ही नहीं अथवा दिलचस्पी ही नहीं। हो सकता है आप उसके सामने झूठ बोल कर धोखा देने की कोशिश कर रहे हों, और बच्चा भी यह जान गया हो। सो सब से पहली चीज़ यह है कि बच्चों का विश्वास प्राप्त किया जाए, उनके डर को दूर किया जाए, और उसके नवीन ज्ञान के प्राप्त करने की उत्सुक्ता को संतुष्ट किया जाए। यदि मां बाप इस काम में असफल रहें, तो अध्यापकों को इस सुनहरी मौकें से लाभ उठाना चाहिए। अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थी के संमुख

यौन का स्वस्थ दृष्टिकोण ही प्रस्तुत करे और माँ के लिए बच्चे में प्यार पैदा करे। अध्यापक माता पिता से परामर्श करके बच्चों को यौन सम्बन्धी ज्ञान से पूर्ण रूप से परिचित कराए। बच्चे के मित्रों की भली देख-भाल रखनी चाहिए।

जब बच्चा लड़कपन के मोड़ पर होता है तो अध्यापक को बड़ा चौकस होना चाहिए। शरीर में कई अंगों पर बाल आ जाते हैं, और यौन-अवयव बढ़ने लगते हैं। आवाज़ में परिवर्तन हो जाता है। लड़कियों के वक्ष उभरने शुरु हो जाते हैं, इस समय उसे मासिक-धर्म सम्बन्धी ज्ञान देना चाहिए, ताकि मासिक धर्म आने पर वह घबरा न जाए, उसे बताना चाहिए कि यह बिमारी के चिह्न नहीं, अपितु यह तो एक स्वाभाविक घटना है। और इसका सम्बन्ध शरीर में अण्डों का समय पर पूर्ण होने से है। लड़के को भी स्वप्न दोष के बारे में बता देना चाहिए ताकि वह इस के बारे में चिन्तित न हो जाए। यह तो यौन के स्वाभाविक चिह्न हैं। यौवन सम्बन्धी ज्ञान सृजनात्मक होना चाहिए, ताकि युवकों के सन्मुख जीवन के सुन्दरत्तम उद्देश्य रखे जा सकें।

इसके बाद यौवन अवस्था आती है। यौवन के आगमन का कोई विशेष समय निश्चित नहीं किया जा सकता है। यह एक बड़ी खतरनाक सी अवस्था होती है–इसमें मुंह का रंग बड़ा ख़राब-सा हो जाता है। वह अपने को न तो बच्चा ही समझ सकता है, और न ही बड़ा, और इस चीज़ को बड़ी बुरी तरह से अनुभव करता है। उसे गुस्सा बहुत आता है। स्वप्नों की दुनिया में विचरण करने लग जाता है, सो जब तक इस चीज़ों को सन्मार्ग पर नहीं डाला जाता है, और जब तक मनुष्य आत्म-नियंत्रण नहीं रख सकता है, और जब तक उसकी भावनाएं निश्चित रूप-रेखा प्राप्त नहीं कर लेती हैं, कई प्रकार के ख़तरे पैदा हो

जाते हैं । सो अध्यापकों को चाहिए कि मनुष्य के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए यौन सम्बन्धी ज्ञान उसे प्रदान करें।

५. यौन--उदात्तीकरण

माता पिता और अध्यापकों का एक आवश्यक और दुष्कर कर्तव्य यह है कि इस प्रवृति की अभिव्यक्ति के लिए मार्ग प्रस्तुत करें। हमें बच्चों को शारीरिक व्यायाम के खूब मौके देने चाहिए। खेलों के लिए मौके प्रदान किए जाएं, युवकों में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए शौक पैदा किया जाए, सफाई की आदतें डालनी चाहिएँ ताकि अपने साथियों के संमुख अच्छा लग सकें। दिन में काम करने की रूचि भी उस के दिल को साफ और पवित्र रखेगी और रात को थक कर जल्दी सो जाएगा। खेलों की प्रतियोगिताओं में अतिरिक्त जोश ठीक हो जाएगा। बेकार रहना बहुत खतरनाक है। सुस्ती मन और मस्तिष्क के लिए अहितकर है। काम में व्यस्त रहने से मन बुरी दिशाओं में नहीं जाएगा।

इसके अतिरिक्त बच्चा हर समय कुछ न कुछ निर्माण करना चाहता है। वह कुछ जानना चाहता है, कुछ बनाना चाहता है, कुछ करके दिखाना चाहता है। इस लिए उस को पढ़ने के लिए, अन्वेषण करने के लिए, और कठिन काम करने के लिए काफी सामान और काफ़ी मौके देने चाहिएं। उसको चित्रकारी और रंगरागी संगीत की ओर लगाना चाहिए। कला, संगीत, यात्रा आदि में से कोई शुगल चुने, जोकि उसके आगामी जीवन को समृद्ध और सुन्दर बना सकें। जो बच्चा किसी न किसी क्षेत्र में कुछ बना सकता है, उसके व्यक्तित्व में उस बच्चे से कम जटिलताएं और विषमताएं होगी, जो केवल मात्र अनुकर्त्ता है। कुछ सृजनात्मक कार्य करना न केवल उनके अपने लिये ही लाभदायक है, बल्कि सारे समाज और देश के लिये भी।

इस प्रकार उसके सम्मुख कोई उद्देश्य होगा, जिसके लिये वह मरना और जीना चाहेगा। जिन लोगों के सामने इस प्रकार के ऊँचे आदर्श होते हैं, वह यौन पर ही केन्द्रित नहीं रखते।

कुछ लेखकों का विचार है कि इस प्रवृति को सन्मार्ग पर डालने के लिये उपन्यास एवं परियों की कहानियां भी बहुत लाभदायक हो सकती हैं। पर इस प्रकार का साहित्य इस प्रवृत्ति को सीधे मार्ग पर डालने के स्थान पर और अधिक उकसाता है, सो ऐसे साहित्य के हक में फैसला नहीं दिया जा सकता।

अनेकों का विचार है कि घर में उठने-बैठने, खाने पीने के नियमों का पालन किया जाए तो आत्म-संयम के लिये कई प्रकार के सबक सीखे जा सकते है। बच्चों को थोड़ा खाना और थोड़ा सोना चाहिए। उनके कपड़े हल्के तथा खुले होने चाहिए। शारीरिक निरीक्षण भी आवश्यक है। बहुत लाड-प्यार नहीं करना चाहिए। बिस्तर न बहुत गर्म और ओर न सर्द, [सोते समय उनके हाथ बिस्तर से बाहर होने चाहिएं।

अनेकों का विचार है कि सहशिक्षा भी यौन सम्बन्धी ज्ञान के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। साधारणतया यह स्वीकार किया गया है कि एक दूसरे को भली प्रकार से जानने के लिए लड़के-लड़कियों को इकट्ठे पढ़ाना चाहिए। क्या सहशिक्षा अच्छी साबित हो सकती है इस पर अगले अध्याय में पूर्ण प्रकाश डाला जाएगा।

कांड १५

सहशिक्षा

(Co-education)

१. लड़कों और लड़कियों की सह-शिक्षा क्या है ?

एक ही कक्षा में लड़के लड़कियां के इकट्ठे पढ़ने को सहशिक्षा कहते हैं और दोनों को स्कूल के हर काम में मिलने-जुलने के खुले अवसर दिये जाते हैं। सहशिक्षा का यह अर्थ नहीं कि केवल पढ़ने के लिये ही दोनों को इकट्ठा रखा जाये, बल्कि स्कूल के दूसरे कामों में भी उन्हें मिलने जुलने दिया जाये।

लड़के लड़कियों को इकट्ठे और अलग-अलग पढ़ाने के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। अमरीका में सह-शिक्षा का काफी प्रचलन है और वहां पर पूर्ण रूप से सफल रही है। स्काटलैंड में भी सह-शिक्षा आम है। हालैंड और स्वीटज़रलैंड में भी यही हाल है। बहुत से देशों में गावों के लिये सह-शिक्षा को अपनाया गया है पर शायद वहां पर पैसे की बचत का ही ख्याल रखा गया है। हालैंड, जर्मनी और हंगरी में भी सहशिक्षा का काफ़ी प्रचलन हो चुका है। भारत के लिये तो यह कुछ अधिक ही जटिल समस्या है, क्योंकि यह भारतीय संस्था नहीं, यह तो पच्छिम के सम्पर्क का ही परिणाम है। क्या यह भारत के लिये लाभदायक सिद्ध हो सकती है अथवा नहीं, यह हम अब सोचेंगे।

सह शिक्षा के लाभ

(१) आज के विज्ञान लड़कियों की ओर से बढ़ रही शिक्षा की माँग को पूरा करने में असमर्थ हैं। धन की कमी है, भवन थोड़े हैं, समान और योग्य अध्यापक भी कम मिलते हैं। लड़कियों के कालेज भी थोड़े हैं। ग़रीब भारत भी मुट्ठी भर लड़कियों के लिये कालेज नहीं खोल सकता। कोई सरकार बीस या तीस लड़कियों के लिए कालेज नहीं खोल सकती है। कालेज का लाभ भी क्या है। सो परिणाम यह है कि या तो लड़कियां लड़कों के कालेज में पढ़ें या नहीं तो अनपढ़ रहें। पर शिक्षा के लिये लड़कियों की ओर से जबरदस्त मांग है। सो इसलिये यह शिक्षा आरम्भ की जानी ही सब से उत्तम उपाय ख्याल किया जाता है।

(२) मनोवैज्ञानिक पहलू से भी सह शिक्षा के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। लड़के लड़कियों के परस्पर स्वाभा-विक सम्बन्ध के कारण झूठी शर्म अस्वाभाविक-सा व्यवहार दूर हो जाएगा और लड़के और लड़कियों का भेद भी नहीं रह जायगा। निकट सम्पर्क के कारण एक दूसरे से परिचित हो जायेंगे। लड़के लड़कियों को सुव्यवस्थित घर बनाने की शिक्षा नहीं दी जा सकती. जब तक कि एक साथ ही उनका विकास नहीं होता, और स्कूल में साथियों की तरह एक दूसरे को जानने और समझने के खुले मौके नहीं मिलते। भावी गार्हस्थ्य जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि लड़के लड़कियों को अजनबियों की तरह न पाला जाए।

(३) सहशिक्षा में लड़कों का लड़कियों के साथ सम्बन्ध होने के कारण स्वभाव सुधर सकता है। उनकी बात चीत का रूखापन और भद्दापन दूर हो जाता है, और लड़कियाँ भी कम शर्म करती हैं, उनका दृष्टिकोण विस्तृत हो जाता है। उनमें

आत्मविश्वास जागता है । दोनों एक दूसरे का सम्मान करना सीखते हैं । इस मेल-मिलाप से एक दूसरे के लिए सम्मान के भाव पैदा होते हैं, जो एक सफल गार्हस्थिक जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

(४) अनुशासन का प्रश्न भी एक सीमा तक, हल हो जाता है । लड़के लड़कियों की दृष्टि में अच्छा रहना चाहते हैं, और लड़कियां लड़कों की दृष्टि में । कईयों का विचार है कि लड़के इतने भले बन जायेंगे कि उनमें पुरुषत्व का गुण ही लुप्त हो जाएगा । परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु लड़कियां लड़कों में पुरुषत्व के गुणों की ही प्रशंसा करती हैं । सो हम कह सकते हैं कि सहशिक्षा के कारण लड़के लड़कियों से धैर्य, ईमानदारी परिश्रम करना सीखेंगे; और लड़कियाँ लड़कों से आजादी और आत्म-विश्वास आदि सीख लेंगी ।

(५) सहशिक्षा के कारण शरारत के दोष भी बढ़ने के स्थान पर कम ही होंगे । दोनों ही एक दूसरे को स्वाभाविक रूप में समझने लग जाते हैं । एक दूसरे की बौद्धिक गुणों से परिचित होने के कारण कामनाएँ पृष्ठभूमि में जा पड़ती हैं। लड़के और लड़कियों को दूर दूर रखने के कारण जाति निर्बल पड़ जाती है ।

(६) बौद्धिक रूप से भी सहशिक्षा का काफी लाभ है । कक्षा में उपस्थिति शतप्रतिशत रहेगी । कक्षा की योग्यता का स्तर अच्छा हो जाएगा । यदि कक्षा में एक दो विशेष होशियार लड़कियाँ हों तो लड़के भी अपना पूरा ज़ोर लगाते हैं। कोई भी स्वाभिमानी लड़का यह नहीं चाहता कि लड़की उसे पछाड़ जाए । सो लड़के और लड़कियां काम करने के लिए प्रेरित होते हैं ।

(७) सहशिक्षा के पक्षपातियों की सम्मत्ति है कि यौन चेतना

जल्दी पैदा नहीं होती । लड़के और लड़कियां एक दूसरे से अपरिचित नहीं रहते । सच तो यह है कि दोनों को पृथक-पृथक करने से यौन प्रवृत्तियों को दबाया नहीं जा सकता। बल्कि ऐसा करने से यह प्रवृत्ति बड़े अस्वाभाविक एवं हानिकारक ढंग से बढ़ती है। यदि स्कूल का वातावरण अच्छा हो, तो बच्चे यौन प्रवृत्ति को बड़ा स्वाभाविक सा अनुभव करते हैं, और इसे कोई सख्त ग़लती नहीं ख्याल करते, जिसके लिए उन्हें होशियार होना चाहिए। यौन-प्रविृत्ति अपने आप को स्वस्थ रूप में प्रकट करती है, और यह स्वाभाविक ढंग से विकसित हो सकती है।

(८) सहशिक्षा में मिश्रित स्टाफ रखा जा सकता है, इसके भी कई प्रकार के लाभ हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां कुछ विषय अच्छे पढ़ा सकती हैं, और कुछ विषय स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अच्छे पढ़ा सकते हैं। स्त्रियां साहित्य की अच्छी तरह से सराहना कर सकती हैं, इस लिए इनको बड़ी अच्छी तरह से पढ़ा सकेंगीं। परन्तु चित्रकारी, हिसाब और विज्ञान पुरुष अच्छा पढ़ा सकेंगे। सो इस प्रकार सब विषयों के लिए अच्छे अध्यापक लगाए जा सकते हैं।

(९) निम्न श्रेणियों के स्कूल, जहां तक हो सके, एक ही प्रकार के होने चाहिएं। इसलिए प्राइमरी स्कूल में एक सुलझे घर के हालात होने चाहिए और दोनों के मध्य स्वाभाविक एवं खुश सम्बन्ध होना चाहिए।

परन्तु यह तो तस्वीर का एक ही पक्ष है। कुछ ऐसे विद्वान हैं, जो सहशिक्षा स्कूलों में किसी भी कारण से आरम्भ नहीं करना चाहते।

(१) यह ठीक है कि एक नवयुवक एक नवयुवति की उपस्थिति में ज़्यादा चुस्त, ज़्यादा सुशील होता है। यह भी ठीक है कि दोनों शिक्षा में मुकाबला करते हैं। यह भी ठीक है कि सहशिक्षा लड़कियों को लड़कों के साथ मिलने के खुले मौके देती है। परन्तु यह खुले रूप से मिलना जुलना, हमारे देश में खतरे से खाली भी नहीं। हमारे गर्म देश में यौन—चेतना छोटी उम्र में ही विकसित हो जाती है। डा; स्टैनले हाल (Dr. Stanley Hall) लिखता है—"युवकों के आरम्भिक वर्षों में जब कि शरीर बहुत जल्दी से बढ़ रहा होता है, लड़के और लड़कियां कभी भी इकट्ठे नहीं होने चाहिएं।" ज़िन्दगी के इस समय में लड़के और लड़कियां साधारणतया भावुक, कामनाओं से पूर्ण एवं बहुत कुछ स्वप्नदर्शी से होते हैं। परन्तु संसार में कंटाकीर्ण मार्ग हैं। युवक ठंडे दिमाग़ से किसी चीज़ के बारे में नहीं सोच सकते। वे कई प्रकार की ग़लतियां कर सकते हैं। वे यदि फिसल जाएँ तो अनर्थ निश्चित हैं। सो इसके लिए कहा जाता है कि कुछेक लाभ के पीछे सम्मान, प्रसिद्धि समाज और माता-पिता के प्यार को क्यों ठुकराया जाए।

(२) सहशिक्षा के पक्षपाती लड़के और लड़कियों को मिलने जुलने के खुले अवसर देने के कारण इसके हक में हैं। उनका विचार हैं कि इस प्रकार उन्हें एक दूसरे को समझने के खुले अवसर मिलते है। परन्तु हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि हम लड़के लड़कियों को कक्षाओं में ठोंस देते हैं और फिर इसे ही सहशिक्षा का नाम देते है। आवश्यक अच्छा वातावरण न पैदा कर सकने के कारण, जिस चीज़ की उम्मीद की जाती है, वह

प्राप्त नहीं जा सकती । लड़कियों को ज़्यादा घाटा रहता है। क्योंकि हमेशा कम संख्या में होने के कारण, उन्हें अपने आप को प्रकट करने के कम मौक़े मिलते हैं। इस प्रकार वे भली प्रकार विकसित नहीं हो सकतीं । जब तक सहशिक्षा के बारे में दृष्टिकोण बिस्तृत नहीं हो जाता और इस बारे में अच्छे और स्वस्थ विचार नहीं पैदा किये जाते, सहशिक्षा एक मज़ाक ही बन कर रह जाएगी ।

(३) कुछ विद्वान सहशिक्षा के इसलिए विरूद्ध हैं कि सहशिक्षा का मतलब लड़के और लड़कियों को एक ही तरह की शिक्षा देना है । परन्तु दोनों की आवश्यकताएं बिलकुल भिन्न हैं, इसलिए शिक्षा का भिन्न होना भी आवश्यक है । इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक कोमल एवं भावुक होती हैं, और लड़के कुछ कठोर से होते हैं । इसके अतिरिक्त उनके ज़िन्दगी के कामों में भी अन्तर है। सो दोनों के लिए ही बिलकुल भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा होनी चाहिए ।

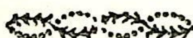
(४) शारीरिक रूप से भी सहशिक्षा कुछ ठीक-सी प्रतीत नहीं होती । यदि शारीरिक खेलों में लड़के लड़कियों के लिये एक से ही कार्यक्रम बनाए जाएं, तो लड़कियों के स्वास्थ्य पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा । सो इस दृष्टि से भी सहशिक्षा ठीक प्रतीत नहीं होती।

(५) कइयों का विचार है कि लड़कियां लड़कों के सामने बहुत बढ़िया कपड़े तथा सुर्खी और पाऊडर लगा कर आयेंगी और लड़के लड़कियों के सामने । स्कूल और कालेज तो प्रेमियों के मिलन-स्थल बन जाएंगें । प्रेम पत्रों का आदान-प्रदान आरम्भ हो जाएगा, और पढ़ाई में नुकसान पहुंचेगा।

(६) यदि पढ़ाई अलग अलग स्कूलों में कराई जाए, तो न ही लड़कियों को अपनी पढ़ाई में रुकना पड़ेगा, और न ही लड़कों को। कक्षा के सारे काम में कम खाली घंटियां होंगी।

(७) कई समालोचकों का विचार है कि सहशिक्षा से लड़कों में जनानापन और युवतियों में मर्दानापन आ जाएगा। परन्तु हमें पूर्ण पुरुषत्व और नारीत्व की आवश्यकता है।

प्राइमरी स्कूल और कालेजों में सहशिक्षा आरम्भ करना कोई बहुत मुश्किल नहीं। ११ वर्ष की आयु तक सहशिक्षा की कोई हानि नहीं, बल्कि बहुत से लाभ हो सकते हैं। परन्तु इसके बाद लड़के लड़कियों को इकट्ठा नहीं रखना चाहिए। कालेज में जा कर लड़के लड़कियों को इकट्ठे पढ़ाने की कोई हानि नहीं, शर्त यह है कि लड़के और लड़कियों दोनों के लिए एक से ही मौके और वातावरण पैदा किये जाएं।



काँड १६

स्कूल-निरीक्षण

(School Inspection)

१. वर्तमान अवस्था

इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि स्कूल के सुव्य-वस्थित निर्मान के लिये स्कूल-नरीक्षण अत्यधिक महत्व पूर्ण हैं। किन्तु प्रायः देखा जाता है कि हैडमास्टर विशेष कर अध्यापक इन्हें भय की दृष्टि से देखते हैं। परिणाम स्वरूप निरीक्षण स्कूलों के सुधार के साधन बनने में नितान्त असफल रहे हैं। वे साधन न रह कर साध्य बन गये हैं। यह सत्य बिना किसी प्रकार के विरोध-सम्बन्धी भय के स्वीकार किया जा सकता है कि स्कूल के शिक्षा-सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रयत्न निरीक्षण-पदाधिकारी के सन्तोष के लिये किये जाते हैं। इस के अतिरिक्त इन्सपैक्टर को स्वयं इतना कार्य-वाहन करना और इतने उत्तरदायित्वों का बोझ उठाना पड़ता है कि वह कोई भी काम क्षमता से नहीं कर सकता। डबल्यू ऐम राईबर्न के शब्दों में —"इन्सपेक्टर का पद सर्वथा निरकुंश है जहां उस का प्रवचन यदि कानून नहीं तो उसके इतना निकट है कि अध्यापक एवं मुख्याध्यपक स्कूल के तमाम कार्यों और

उद्देश्यों के लिये उसे कानून के समान ही समझते हैं ।" इन्सपैक्टर की दृष्टि में निरीक्षण कार्य केवल उस के पदोधिकार का प्रयोग एवं प्रचलन-मात्रा है, किन्तु अध्यापक इस प्रयोग को अवश्य ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं । यह ठीक है कि उसे स्कूलों की कार्यक्षमता देखने का अधिकार है, परन्तु इस के लिये वह उन मानवीय साधनों की अवहेलना नहीं कर सकता जिनके द्वारा उसे अपने उद्देश्य को प्राप्त करना है ।

२. निरीक्षण का उद्देश्य

स्कूल-निरीक्षण के उद्देश्य को थोड़े से शब्दों में प्रकट करना तनिक कठिन है । इस विषय में शिक्षा-शास्त्रियों के भिन्न-भिन्न मत हैं । कुछ का विचार है कि निरीक्षण विद्यार्थियों के साथ काम करने वाले लोगों के सहयोग से शिक्षा-प्रणाली को उन्नत बनाने की रीति है । यह विकास को प्रोत्साहन देने का एक मार्ग है और अध्यापक को आत्म-निर्भर बनाने के लिये सहायता देने का एक साधन है । निरीक्षण का उद्देश्य 'विद्यार्थी की स्वयं सीखने की वृति' को सहज बनाना है । प्रभावशाली शिक्षा देने का उद्देश्य ही यही है कि इस का परिणाम स्वयं पढ़ने की वृति हो । निरीक्षण प्रमुख काम विद्यार्थियों की पढ़ाई के वातावरण में सुधार लाना है । यह सेवा-भाव से परिपूर्ण एक कार्यपद्धति है जिसका अस्तिव केवल अध्यापक को कार्य-क्षम बनाने के लिये है । सफल निरीक्षण लोगों की शक्ति को रचनात्मक ढंगों से उपयोग करने का एक साधन है जिसके द्वारा व्यक्तिगत एवं सर्वसाधारण समस्याओं का समाधान किया जा सकता हैं । संक्षेप में निरीक्षण एक चतुर्मुखी कार्यक्रम है ।

(१) बच्चों की आवश्यकताओं एवं शिक्षा-प्रणाली की कार्य

क्षमता की स्थापना के लिये कुछ विशेष शिक्षा-सम्बन्धी

परिस्थितियों का मूल्यांकन करना ।

(२) अध्यापकों को शिक्षा प्रणाली के सुधार करने और बच्चों के लक्षण-परीक्षण में सहायता देने के लिये सुझावों और परामर्शों के रूप में 'टैकनीकल' सहायता प्रदान करना ।

(३) शिक्षा-प्रणाली के निर्माण-कार्य के उद्देश्यों और अध्यापन-कार्य के तरीकों एवं साधनों के विकास के लिये अनुसन्धान-कार्य करना ।

(४) अध्यापकों के सहयोग के साथ, व्यक्तिगत और सामूहिक सम्मेलन के द्वारा, आगामी व्यवसायिक अध्ययन के द्वारा और (Inservice Education) के कार्यक्रम के सहकारी विकास द्वारा व्यवसायिक नेतृत्व स्थापित करना ।

३. निरीक्षण के नियम और योजना:--

(१) इन्सपैक्टर को याद रखना चाहिये कि निरीक्षण–कार्य केवल उसके पदाधिकार का प्रयोग मात्र नहीं । केवल पदाधिकार का प्रयोग सम्बन्धित अध्यापकों के इच्छुक सहयोग के बिना किसी काम नहीं । तमाम आर्डर और सुझाव स्कूल के स्टाफ को स्पष्ट कर देने चाहिये ताकि वे उनके औचित्य और परिपक्वता को जान सकें । राईबर्न के अनुसार किसी श्रेणी का निरीक्षण करते समय इन्सपैक्टर को अध्यापक और विद्यार्थियों को सहज एवं स्वाभाविक अवस्था में रखने का प्रयत्न करना चाहिये । अध्यापक श्रेणी को स्वाभाविक ढंग से पढ़ाता रहे, किन्तु इन्सपैक्टर ध्यान पूर्वक उसका निरीक्षण करे और देखता रहे कि वह विचलित हो रहा है या नहीं । कुछ अध्यापक इन्सपैक्टर

की उपस्थिति से अत्यधिक सजग और अच्छे प्रयत्न करने के

लिये प्रोत्साहित होते हैं। कुछ सांप की उपस्थिति में जो दशा खरगोश की होती है, उस अवस्था का अनुभव करते हैं। ऐसी दशा में हैडमास्टर को श्रेणी को पढ़ाने के लिये कहा जाना चाहिये। कभी २ इन्स्पैक्टर को स्वयं भी श्रेणी को पढ़ाने लग जाना चाहिये। इस प्रकार उसे स्कूल की व्यापक कार्य-क्षमता और अध्यापक की व्यवसायिक उन्नति में अपना भाग डालना चाहिये।

Fig.

	स्टाफ	
निरीक्षण पद		पढ़ाई का वातावरण

(२, इन्सपैक्टर का मुख्य उद्देश्य स्कूल की अध्यापन-प्रणाली के अतिरिक्त उसकी आत्मा के पर्यवेक्षण का प्रयास होना चाहिये। अध्यापकों की सभाओं और प्रयत्नों, और अन्य प्रकार की कई सामूहिक विकास की क्रीड़ाओं के प्रचलन एवं अभाव के रिकार्ड यह दिखाने में सहायता कर सकते हैं। शिक्षा-प्रणाली या स्कूल प्रवन्ध में किसी प्रकार की प्रोयोगिक काम का उपयोग या अभाव स्कूल की शक्ति का विश्वसनीय चिन्ह-सूचक है। क्रीड़ा-स्थल का अनुशासन और विद्यालय की शारीरिक खेलों का प्रवन्ध भी स्कूल के काम के लक्षण हैं।

(३) निरीक्षण विस्तारपूर्वक और प्रत्येक दृष्टिकोण से पूर्ण होने चाहियें। स्कूल-सम्बन्धी समूचे काम उनके क्षेत्र की परिधि में होने चाहियें। उस का सम्वन्ध मुख्यतः और प्राथमिक रूप से आर्थिक विषयों और प्रबन्ध सम्बन्धी जानकारी तक ही सीमित

नहीं रहना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि सकल प्रबन्ध के यह

पहलू उपेक्षनीय है। निस्सन्देह हाँ, रजिस्टरों आदि का काम देखा जाना चाहिये और बड़ी अन्तर्भेदी दृष्टि से किया जाना चाहिए।

(४) यदि इन्सपैक्टर की इच्छा है कि उसके निरीक्षण-भ्रमण छिद्रान्वेषण मात्र न हों, तो उसे केवल यथाक्रमिक और आग्रह-युक्त नहीं होना चाहिये, बल्कि उसे विगत अनुभवों के प्रकाश में अपनी योजनाओं को संशोधित करने के लिए उद्यत रहना चाहिये।

(५) विद्यार्थियों के लेखन-कार्य का ध्यानपूर्वक परीक्षण होना चाहिये। यह कार्य उसे उनकी आत्मा और मानस की उत्साह पूर्ण संलग्नता में झाकेन की अन्तर्दृष्टि प्रदान करेगा। निरीक्षण के समय उसे विद्यार्थियों की प्राग्रैस रिर्पोट अपने पास रखनी चाहिये।

(६) इन्सपैक्टर को कदाचित एक कठोर अधिकारी नहीं बनना चाहिये जो अध्यापकों के हित की तनिक भी परवाह नहीं करता। निरीक्षण-कार्य एक अप्रिय घटना के सामान नहीं होना चाहिये जिसे किसी न किसी तरह सहन करना पड़ता है। यह एक ऐसा सुअवसर होना चाहिये जिससे अध्यापक प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त करें। निस्सन्देह ही उसे एक वैज्ञानिक और आलोचनात्मक प्रवृति स्वीकार करनी चाहिये, किन्तु इसकी पृष्टिभूमि में केवल एक सहृदय और ज्ञान जिज्ञासु मानस ही नहीं चाहिये बल्कि दूसरों को सहयोग देने और उनकी सहायता करने की प्रबल आकांक्षा का भाव भी रहना चाहिये। अध्यापकों की व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप में उनकी सहायता करनी चाहिए।

(७) निरीक्षण की प्रकृति स्थूल नहीं होनी चाहिए। अधिक

ध्यानपूर्ण और लम्बा पर्यवेक्षण आवश्यक है। क्योंकि कहना या

बताना एक बात है और करना दूसरी। इन्सपैक्टर जो कुछ अध्यापक से करवाना चाहता है, सो वह स्वयं उसका प्रदर्शन करे। इससे वह अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है। इन्सपैक्टर द्वारा प्रदर्शन का एक पाठ सहायता का अधिक प्रभावशाली ढंग है अपेक्षाकृत सुझावों एवं परामर्श के कई पृष्ठों से। इन्सपैक्टर सुझावों, पुस्तकों और पत्रिकाओं द्वारा अध्यापकों की समस्याओं को हल कर सकता है। जब इन्सपैक्टर देखता है कि कोई श्रेणी किसी विशेष विषय में कमज़ोर है या वह असन्तोषजनक तरीका का प्रचलन अनुभव करता है तो उसे अध्यापक को उन अभावों के उपचार के लिये परामर्श देना चाहिये और उसके तरीकों में छिद्र और कमज़ोरियाँ निकालने के स्थान पर उसे प्रदर्शन द्वारा बतलाना चाहिये कि किस प्रकार श्रेणी को पढ़ाया जाना चाहिए। यदि इन्सपैक्टरों का निर्देशन हमेशा इस प्रकार रचनात्मिक ढंग से किया जाता रहे तो आज की भांन्ति निरीक्षण एक बोझ न रहे।

केवल आलोचना एक अधूरा काम है और रचनात्मक सुझावों के बिना यह अपना बहुत सा महत्व खो बैठती हैं।

(८) लेखन-परीक्षणों को आवश्यकता से अधिक महत्व दे कर निरीक्षणों को परीक्षा मात्र नहीं बनाना चाहिए। श्रेणी के लेखन-कार्य का परीक्षण बड़ा ध्यान पूर्वक होना चाहिये। सांइस कृषि और ड्राइंग आदि विषयों, जिनके प्रयोग अनिवार्य हैं, की दशा में इन्सपैक्टर को प्रयोग विद्यार्थियों से करवाने चाहिये। केवल थ्यूरी पर प्रश्न पूछने की अपेक्षा योग्यता देखने की यह अधिक अच्छी परीक्षा है। इन्सपैक्टर को सिलेबस का ध्यान

रखना चाहिये और विद्यार्थियों से असम्भव बातों की आशा नहीं करनी चाहिये ।

(९) प्रशंसा करते समय इन्सपैक्टर को उदारचित होना चाहिये, न कि संकोच-वृति का प्रदर्शन करना चाहिये । जिस प्रकार असंतोषजनक काम के दोष निकालना उस का कर्तव्य है, उसी प्रकार अच्छे काम की प्रशंसा करना भी उस के काम का एक आवश्यक भाग है । जो इन्सपैक्टर प्रशंसा करने के अवसर पर ऐसा नहीं करता वह अपने कर्तव्य में इतना ही असफल रहता है जितना कि वह इन्सपैक्टर जो अलोचना के समय अलोचना नहीं करता ।

(१०) निरीक्षण-कार्य स्कूल की चारदिवारी के भीतर ही सीमित नहीं रहना चाहिये । जैसा कि पिछले पृष्टों में कहा जा चुका है कि स्कूल राष्ट्र की सेवा करता है इस कारण इन्सपैक्टर को चाहिये कि स्कूल की उस प्रकार सहायता करे कि वह देश और जाति के साथ अपना उचित सम्बन्ध स्थापित कर सके और लोगों के साथ अपने सम्बन्ध उन्नत बना सके । यदि स्कूल में Parent Teachers association) है तो इन्सपैक्टर के लिये विद्यार्थियों के माता-पिता से मिलना हमेशा लाभदायक है । वह उन से स्कूल की समस्याओं पर वाद विवाद कर सकता है और उनके समाधान के लिये आवश्य सुझाव प्रस्तुत कर सकता है । इस प्रकार वह स्कूल और स्कूल सम्बन्धित लोगों के लिये बहुत बड़ी सहायता के रूप मे प्रकट हो सकता है ।

(११) अभ्यापन सम्बन्धी समुचे प्रयासों को एक संतुलित कार्यक्रम में इक्ट्ठा करना एक इन्सपैक्टर का ही कर्तव्य है । उसे भिन्न भिन्न स्कूलों के बीच एक शृंखला का काम देना चाहिये ।

(१२) इन्सपैक्टर को अध्यापकों के व्यवसायिक विकास के लिये उचित परीस्थितियों का निर्माण करना चाहिये। उसे शिक्षा उचित एव ठीक साधनों का पूर्ण विकास करना चाहिये।

निरोक्षण कार्य का वाह्य चक्र

नौकरी में ट्रेनिंग

सामाजिक कार्यों में भाग

पढ़ाने के साधनों का चुनाव

श्रेणी में अध्यापक और विद्यार्थी

शिक्षा प्रणाली की योजन

प्रदर्शनात्मक अध्यापन

दूसरे स्कूलों का भ्रमण

निरीक्षण छिद्रान्वेषी नहीं होने चाहिये। निरुद्देश्य निरीक्षण तथा हानिकारक आलोचना का कोई लाभ नहीं। एक इन्सपैक्टर को अध्यापकों के कामों का मूल्यांकन करना होता है और स्कूल की कार्य-क्षमता का निर्णय करना पड़ता है। उसे वहां की परिस्थितियों में सुधार करना पड़ता है। इसलिये निश्चित योजनायें और कार्यक्रम आवश्यक हैं। निरीक्षण-कार्य केवल कुछ स्थानों और स्कूलों के भ्रमण मात्र का एक टाइम-टेबल ही नहीं होना चाहिये। वरन: इसके सामने उद्देश्यों का एक तात्कालिक कार्य-क्रम और विकास की अत्यावश्यक योजना होनी चाहिये। निगरानी के द्वारा त्रुटियों को गिन कर उन को ठीक करना चाहिये और सुधार के ढंगों को प्रोत्साहन देना चाहिये। निरीक्षण

कार्य-एक पूर्व-निश्चित कार्यक्रम हो, क्योंकि वह इस विश्वास का द्योतक है कि इन्सपैक्टर ने अपने स्थानीय क्षेत्र की अवस्था के बारे में पूर्ण रूप से चिन्तन कर लिया है और वहां की कुछ ऐसी कमज़ोरियों और आवश्यकताओं का चयन कर लिया है जिनकी ओर उस ने अपना ध्यान देना है। एक सुयोजित कार्यक्रम कुछ परिष्कृत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सम्पन्न व्यवसायिक प्रयास की सुव्यवस्था का विश्वास दिलाता है। इस प्रकार यह यन्त्र वत किये गये निरीक्षण भ्रमणों का स्थान ले लेता है। सुयोजित-कार्यक्रम व्यवसायिक प्रोत्साहन के लिये एक प्रेरक है और समस्त सम्बन्धित व्यक्तियों की सहायता करता है यह प्रबन्ध अधिकारियों स्कूल, समितियों एवं साधारण पर्य वेक्षकों की निरीक्षण के अन्तर्गत ही काम की जानकारी प्रदान करता है। यह उन्हें निरीक्षण-कार्य की जांच और मूल्यांकन के लिये एक एक आधार प्रस्तुत करता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये और निरीक्षणों के परिणामों की जाँच पड़ताल के लिये अपने साधनों, ढंगों की रूपरेखा के विषय में निश्चय कर लेना चाहिये ताकि कार्य क्रमों की सफलता और असफलता का पता चल सके।

११. निरीक्षण के रूप
(Types of Inspection)

निरीक्षण निम्नलिखित तीन प्रकार की प्रकृति के हैं।

१. **सुधारात्मक**—इसके अनुसार, इन्सपैक्टर का ध्यान अधिकांश दोषों और त्रुटियों पर रहता है। वह इन अभावों की ओर स्कूल के अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करता है।

वह एक छिद्रान्वेषी की तरह स्कूल का चक्कर लगाता चला जाता है और प्रत्येक समय स्कूल के अभाव हैडमास्टर के ध्यान में लाने के लिये तत्पर होता है । किन्तु उसे वह याद रखना चाहिये कि उस का काम केवल दोषों को ही निकालना नहीं वरन: सफल प्रभासों की ओरइंगित करना भी है । उसे आशावादी होना चाहिये । उन्नति का आधार सुकृतत्यों के प्रोत्साहन और दोषों के बहिष्कार का परस्पर सजीव सम्वन्ध है ।

२. प्रति बन्धक— प्रतिवन्धक निरीक्षण परिस्थितियों के जन्म से पहले ही इन भावी परिस्थितियों के मुकावले के लिये अध्यापकों की सहायता करता है । इन्सपैक्टर एक अनुभवी व्यक्ति और अन्तर्द्रष्ट होने के कारण अध्यापकों की कठिनाइयां पहले ही देख लेता है और उन्हें दूर करने में अध्यापकों को सहायता करता है ।

३. रचनात्मक— यह सर्वोतम प्रकृति का निरीक्ष है, क्योंकि इसका उद्देश्य अध्यापक को रुढ़िगत सिर्धारित ढंगों से मुक्त करना और उसे आत्म-विश्वासी एवं अपने काम में उत्साही बनाना है इस प्रकार अध्यापक अपने आपको स्वतन्त्र अनुभव करता है और इच्छापूर्वक दूसरों को सहयोग देता है । एक रचनात्मक इन्सपैक्टर अध्यापक को इस बात का आभास करता है, कि विद्यार्थी के कामों के प्रत्येक पहलू में अपनी पूरी शक्ति के प्रयास करने का उत्तरदायित्व उस के ऊपर आता है इसलिये इस प्रकार का निरीक्षक सर्वोत्तम है ।

५. इन्सपैक्टर के गुण— शिक्षा-विभाग में इन्सपैक्टर

सर्व सर्वा है इस पद के योग्य बनने के लिये उसमें कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है।

१. सर्व प्रथम, उस का अत्यावश्यक गुण यह है कि वह आधुनिक शिक्षा और शिक्षा सम्बन्धी दर्शनों के विकास के ज्ञान से संयुक्त अंतर्द्रष्टि रखने वाला व्यक्ति हो। उस का ध्यान केवल परीक्षाफलों पर ही नहीं रहना चाहिये, वल्कि उसे स्कूल की चतुर्मुखी उन्नति को अपने ज्ञान की परिधि में लेना चाहिये। वह ऐसा व्यक्ति हो जो आफिस की दिनचर्या, हिसाब किताब आँकणों आदि से अपने आप को तनिक अलग रख सके और शिक्षा के क्षेत्र में नूतन एवं विकसित विचारों के साथ सम्पर्क रख सके।

२. वह वहुत सी भाषाओं और विषयों का ज्ञाता हो। यह वात हमारे स्कूलों के लिये विशेष रूप से महत्व पूर्ण है, क्यों कि हमारे स्कूलों में शिक्षा का माध्यम एक रूप नहीं।

३. इन्सपैक्टर भिन्न २ स्कूलों के बीच एक शृंखला के समान हों जो उनके परस्पर सम्वन्ध स्थापत करे। इन्सपैक्टर का काम एक स्कूल में हो रहे काम एवं किये जा रहे प्रयोगों के बारे में दूसरे स्कूलों को जानकारी पहुंचाना और सुझाव देना है कि किस प्रकार स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार इन प्रयोगों में परिवर्तन किये जा सकते हैं। शिक्षा प्रवन्ध के सफल तरीकों के ज्ञान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाना उसका कर्तव्य है। अपने व्यवसाय के प्रति सहृदय वनने के लिये, उसे अपने आप को शिक्षा के विकास का प्रचारक समझना चाहिये।

४. इन्सपैक्टर अवश्य ही प्रयोगवाहीं मनोवृति का होना चाहिये। केवल इसी तरह विकास की आशा की जा सकती है।

अत्यधिक 'डिपार्टमेन्टल' व्यवस्था में भी प्रयोग के लिये यथेष्ट स्थान हैं। ये स्कूल उसके पौदाघर बन सकते हैं जहां शिक्षा के पौदे लगाये जाते हैं, उसकी रक्षा की जाती है और उनकी उन्नति को ध्यानपूर्वक देखा जाता है।

५. इन्सपैक्टर का मस्तिष्क हमेशा सृजनात्मक होना चाहिये। केवल एक सिद्धहस्त आलोचक बनना ही यथेष्ट नहीं। छिद्रा-वेषण एक सहज काम तो है, किन्तु रचनात्मक सुझावों पर ज़ोर देना ही उचित हैं।

ब्रीले (Brilley) के अनुसार उनका आदर्श-वाक्य 'अध्यापकों को टोको, उन्हें भयभीत करो, कमज़ोर बनाओ और उनका परीक्षण करो' नहीं होना चाहिये। बल्कि अध्यापकों को सिखाओ, उन्हें प्रेरणा दो प्रोत्साहन दो, और उन पर विश्वास करो।" आदर्श-वाक्य होना चाहिये।

स्कूल रिर्पोटस् रिकार्डज़ और रजिस्टर

१. रिपोर्टस्, रिकार्डज और रजिस्टर आदि की आवश्यकता राज्य द्वारा स्वीकृत अथवा चालित प्रत्येक शिक्षालय में कुछ विशेष प्रकार की रिर्पोटों रजिस्टरों और प्रमाण-पत्रों का रखना अत्यधिक आवश्यक है। इनकी सहायता से स्कूल का उत्पति, विकास, वर्तमान अवस्था, भिन्न २ परिस्थितियों, वातावरण; उसके उद्देश्यों, प्रेरणाओं और सफलताओं एवं उसकी कार्य-दामता के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(१) स्कूल विद्यार्थियों के हितों के लिये खोले जाते हैं। तब तक कोई भी स्कूल-व्यवस्था ठीक प्रकार से व्यक्ति के हितों की रक्षा नहीं कर सकती जब तक कि उस व्यक्ति की वृद्धि एवं विकास को सुरक्षित रखने का कोई तरीका प्रचलित न होगा।

(२) राज्य-नियम के अनुसार जिसके अन्तर्गत स्थानीय संस्था काम करती है, व्यवस्था के लिये, स्कूल में जाने योग्य बच्चों का रिकार्ड रखना आदेशक है ।

(३) स्कूलों की उन्नति का आधार अनुसन्धान-कार्य है। विद्यार्थी की उन्नति, शिक्षा के साधनों, निर्धारित परीक्षणों, शारीरिक विकास, श्रेणी-उतीर्णता और अंक आदि के सम्बन्ध में समूची जानकारी विद्यार्थी के व्यक्तिगत रिकार्ड (Personal Records) द्वारा प्राप्त की जाय ।

(४) स्कूल और घर के सुसम्बन्धों का उन्नति होना बच्चे के अधिकतम विकास के लिये बहुत ज़रूरी है। विद्यार्थी की उन्नति से सम्बन्धित रिपोर्ट जो उसके माता पिता को समय ़ पर भेजी जाती है स्कूल और घर के सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है । इन रिर्पोटों को प्रमाण-पत्रों का रूप देना बहुत ज़रूरी है, इनकी सहायता से अध्यापक विद्यार्थी की वृद्धि एवं विकास का ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकता है ।

(५) इन प्रमाण-पत्रों (Records) से किसी स्थान की शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति और वहां की आवश्यकताओं का अंदाजा लगाया जा सकता है और एक राज्य (state) की शिक्षा-नीति का भी अनुमान किया जा सकता है ।

स्कूल के व्यव्यस्थापक के लिये सब से बड़ी समस्या इन प्रनाण-पत्रों और रिपोर्टों के रखने के ढंग को विकसित रूप देना है ताकि वे बच्चे में दिलचस्पी लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये लाभदायक सिद्ध हो सके । सो इस ढंग को उन्नत करने के लिये एक यथार्थवादी योजना की आवश्यकता है । यदि स्कूल व्यवस्था देश और जाति के सभी लोगों की अधिक से अधिक सेवा

करना चाहती है तो कुछ मूल भूत सिद्धान्तों पर विचार करना जरूरी है जो विद्यार्थी के व्यक्तिगत-रिकार्ड के निर्माण, प्रयोग और सुरक्षा से सम्बन्धित हैं। कुछ मूल भूत सिद्धान्तों को अपना कर रिकार्ड रखने के एक सुन्दर ढंग को प्रेरणा देनी चाहिये।

२. विद्यार्थी के व्यक्तिगत रिकार्ड और रिपोर्टों का चुनाव, उनकी रक्षा के प्रयोग और संग्रह के नियम—

प्रमाण-पत्रों (Records) के चूनाव और उनकी रक्षा के ओर में कुछ नियम निर्धारित कर लेना तनिक कठिन है। फिर भी कुछ लाभशाली सुझाव नीचे दिये जाते है।

(१) विद्यार्थी के व्यक्तिगत रिकार्ड और रिपोर्टें स्कूल के शिक्षा सम्बन्धी दर्शन का दर्पण होनी चाहिएं। जिस स्कूल में शिक्षा-प्रणाली की प्रकृति रूढ़िगत है, उस स्कूल में इन प्रमाण-पत्रों का रूप उस स्कूल के प्रमाण-पत्रों से सर्वथा भिन्न होगा जहाँ शिक्षा-प्रणाली बच्चे को शिक्षा का केन्द्र मान कर अपनायी गयी होगी क्योंकि अपने कार्यक्रमों के प्रकृति भेट के कारण भिन्न २ प्रकार के निर्दिष्ट सिद्धान्त आवश्यक समझे जाएंगे और पत्रों (कागजात) की रक्षा और संग्रह के लिये अलग २ तरीके अपनाए जायेंगे।

विद्यार्थी के व्यक्तिगत रिकार्डों के लिये प्रयोगशील साधनों पर विचार करने का तरीक़ा स्कूल के शिक्षा सम्बन्धी दर्शन को नाटकीय ढंग से स्पष्ट करेगा। कई बार स्कूल की प्रबन्ध-कारिता ही इन पत्रों की रक्षा का समूचा उत्तरदायित्व ले लेती है और कई उदाहरणों में इन पत्रों को सामूहिक-योजना मान कर उन्नत

बनाने का प्रयास किया जाता है। दूसरा तरीका ही अपनाने योग्य है। यदि पहला तरीका अपनाया जाता है, तो ये रिपोर्टें और रिकार्ड व्यर्थ सिद्ध होंगे और दूसरे पत्रों की तरह शान्ति पूर्वक फाइलों में पड़े रहेंगे

(२) विद्यार्थी के निजी रिकार्ड को उसके पीछे चलना चाहिए। प्रमाण पत्र में प्रत्येक विद्यार्थी से सम्बन्धित तमाम निर्दिष्ट तत्व जितनी जल्दी हो सके, प्राप्त कर लेने चाहियें और यह पूर्णतया तैयार होने चाहिएँ। यदि विद्यार्थी एक स्कूल से किसी दूसरे स्कूल में चला जाता है तो ये रिकार्ड भी उसके साथ जाने चाहिए।

(३) निजी रिकार्ड के निर्माण का तरीक़ा बच्चे के शिक्षा सम्बन्धी अनुभवों में अपना भाग डाले। 'रिकार्ड केवल रिकार्ड' के लिये, वाला सिद्धान्त अतीत की बात है। आज प्रबन्धकों, अध्यापकों, और राज्यकीय कार्यकर्ताओं का समय ऐसी अनावश्यक जानकारी प्राप्त करने में व्यर्थ नहीं करना चाहिये जो बच्चे के शिक्षण-विकास में कोई भाग नहीं डालती। व्यक्तिगत रिकार्ड और रिपोर्ट का एक सुचारू और सुव्यवस्थित ढंग अध्यापक का ध्यान बच्चे की आवश्यकताओं पर केन्द्रित कराने का काम कर सकता है। जब अध्यापनकार्य इस दृष्टिकोण से किया जायगा तो परिणाम सर्वथा भिन्न होगा। बच्चे की आवश्यकताओं को निरन्तर सामने रखकर, और उनके वैयक्तिक सत्यों को उनका केन्द्र मान कर, ये प्रमाण-पत्र एक स्कूल के शक्तिशाली कार्यक्रम में एक सबल काम कर सकते हैं।

(४) विद्यार्थी के निजी रिकार्ड और रिपोर्ट काम आने वाली हों। व्यर्थ की जानकारी प्राप्त करने की और आवश्यकता नहीं। उदाहरणार्थ अध्यापकों को शारीरिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान

प्रदान किया जाता है । इस प्रकार इसका उन्हें कोई लाभ नहीं क्योंकि उनके पास इसके प्रयोग के लिये टैक्नीकल पृष्ठभूमि का अभाव ही रहता है । एक साधारण अध्यापक यह जान कर क्या करेगा कि अमुक लड़के को आंखों का रोग है । अध्यापक इस प्रकार की बातों में अभ्यस्त नहीं होता और न ही उनसे ऐसी आशा की जानी चाहिए । फिर भी उसे इतना ज्ञान होना चाहिये कि अमुक लड़के को आंखों का रोग है और उस रोग का उसके शिक्षण पर क्या प्रभाव पड़ता है ।

(५) यह रिकार्ड अपने आप में पूर्ण होने चाहिएं । यदि अध्यापक अपने निरूपणों को क्रमानुसार और कालानुसार रखेगा, तो उसे केवल एक विद्यार्थी के विषय में अपने विचार वनाने में सहायता ही नहीं मिलेगी, बल्कि वह विद्यार्थी के शिक्षण से सम्बन्धित अन्य लोगों की स्वयं भी सहायता कर सकेगा । कुछ अध्यापक अनुभव करते हैं कि वे किसी विशेष विद्यार्थी के विषय में अपने विचार इस भय के कारण नहीं लिख पाते कि कहीं उनके विचारों का रहस्योद्घाटन न हो जाय । स्कूल के वातावरण में, जहां बच्चा ही शिक्षा का केन्द्र है, यह बात कोई गम्भीर समस्या नहीं समझी जानी चाहिए । अध्यापक प्राणियों के स्वभाव के आधारों के विषय में अधिक प्रयत्नशील हो जायगा और उनके बारे में उन्नति और विकास, निरन्तर काम कर रही प्राणी विद्या सम्बन्धी, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक शक्ति के परिणाम की धारा में सोचेगा न कि सुस्ती और बेईमानी की ।

बच्चे का पूर्ण चरित्र-चित्रण प्रदान करने में समय की आवश्यकता है, किन्तु पूर्णतया का यह भाव बच्चे के रिकार्ड को

नष्ट करता है और बच्चे के शिक्षण-कार्यक्रम में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य का हनन करता है।

(६) निजी रिकार्ड अत्यधिक संक्षिप्त होने चाहिए, क्योंकि एक साधारण स्कूल में इनकी सुरक्षा के लिये इतनी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होतीं, सो लम्बे लम्बे, निष्प्रयोजन के रिकार्डों को सम्भाल कर रखना हास्यस्पद है। संक्षिप्त एवं सबल रिकार्डों के लिये लगभग सारे स्टाफ के चिन्तन की आवश्यकता है।

(७) विद्यार्थी के रिकार्ड, आसानी से तैयार किये जाने वाले हों। उनका रूप ऐसा हो कि वे प्राकृतिक रुप से ही कम से कम परिश्रम से फाइल किये जा सकते हों, भावार्थ यह कि इनमें इस प्रकार की कोई विचार–वस्तु शामिल नहीं करनी चाहिये जो बच्चे के शिक्षण-कार्य के लिये लाभदायक एवं वलदायक नहीं क्योंकि जब इन रिकार्डों का निर्माण कठिन हो जाता है, तो ये प्राय: उपेक्षनीय बन जाते हैं।

(८) ये रिकार्ड सुगमता एवं सुविधा से सुरक्षित किये जा सकने वाले हों। इनकी सुरक्षा और 'फाइँलिन्ग' का कोई केन्द्रीय स्थान होना चाहिए। भिन्न २ स्थानों पर जाकर किसी विद्यार्थी से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना महँगा और असुविधाजनक काम है। अध्यापक को पता होना चाहिये कि वह आवश्यकता के समय एक केन्द्रीय स्थान से हर प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकता है।

(९) कुछ लोग इन रिकार्डों के इंचार्ज बना दिये जाने चाहिए ताकि वे उनके लिये पूरे उत्तरदायी हो। उस पर नियुक्त व्यक्ति को सम्पूर्ण स्टाफ का भरपूर सहयोग प्राप्त हो। हरेक को ज्ञान होना

चाहिये कि विद्यार्थी के निजी रिकार्ड के निर्माण-कार्य में 'उस' व्यक्ति का काम सबसे कठिन है।

(१०) इन रिकार्डों की रूप रेखा इस प्रकार होनी चाहिए कि किसी प्रकार के परिवर्तन एवं खर्च के विना उनका परिवर्तन हो सके। यह तथ्य हमारा ध्यान समुचे काम की प्राथमिक योजना की ओर ले जाता है। इनका रूप स्कूल के दूसरे शिक्षा-सम्बन्धी परिवर्तनों के साथ परिवर्तनशील होना चाहिये और इस प्रकार स्कूल की दृष्टिगोचर नीति प्रस्तुत करनी चाहिए।

(११) इन रिकार्डों का रूप बड़ी मितव्ययता से निर्धारित करना चाहिए।

योजना के समय ही इनके व्यय पर ध्यानपूर्वक चिन्तन करना उचित है।

(१२) रिकार्ड की प्रणाली सामाजिक उत्तरदायित्व बांटने के लिये अपनायी जाय।

३. रजिस्टर रखने का तरीका—

(१) प्रत्येक विद्यालय में रजिस्टरों की एक सूची तैयार कर ली जानी चाहिये।

(२) प्रत्येक रजिस्टर के आवरण-पृष्ठ पर निम्नलिखित बातें अंकित होनी चाहिएं।

(अ) स्कूल का नाम (ब) रजिस्टर का क्रमाँक (ज) रजिस्टर का नाम (स) प्रतियों की गिनती (ल) प्रत्येक प्रति के पृष्ठों का अंक और रजिस्टर के खोलने एवं वंद करने की तिथि।

(३) जब कोई रजिस्टर आरम्भ किया जाय तो उसके पृष्ठों पर अंक लगा दिये जाने चाहिएं।

(४) रजिस्टर साफ सुथरा होना चाहिये । लिखाई सुन्दर हो ताकि अन्दराज भले नज़र आयें । अंकों को परस्पर मिलाना नहीं चाहिये । रजिस्टरों को मीड़ना नहीं चाहिये और पृष्ठों को सिकोड़ना नहीं चाहिये ।

(५) यदि पुराने रजिस्टरों में पृष्ठ खाली हों तो यह आवश्यक नहां कि हर साल नये रजिस्टर लगायें । जब किसी नये रजिस्टर का योग आरम्भ किया जाये तो पहले रजिस्टर के विषय में टिप्पणी, कि सम्बन्धित रजिस्टर पूर्ण रूप से प्रयोग में लाया जा चुका है, रिकार्ड में आ जानी चाहिये । नये रजिस्टर खोलने की तिथि और पृष्ठों की संख्यां भी रिकार्ड में आ जानी चाहिये ।

इस प्रकार रजिस्टर और रिकार्ड़ रखने के ये कुछ सुझाव हैं ताकि रजिस्टर रखने का उद्देश्य जिसके लिये इनका प्रयोग किया जाता है पूरा हो जाय ।

४. रिकार्डों, रिपोर्टों और रजिस्टरों के प्रकार

रिकार्ड और रजिस्टर कई प्रकार के होते हैं । मिडल और उच्चकक्षाओं से सम्बन्धित रजिस्टरों का श्रेणीकरण निम्न-लिखित ढंगों से किया जा सकता है ।

(क) सामान्या साधारण,

१. कैलन्डर (Calendar)
२. लाग बुक (Log Book)
३. अतिथि रजिस्टर (Visitor's Book)
४. सर्विस रजिस्टर (Service Register)
५. प्रवेश रजिस्टर (Admission Register)
६. (Transfer of Certificate file)
७. भरती के कार्डों की फाइल (File of Enrolment card)

८. अध्यापक का निजी रिकार्ड

(ख) आर्थिक

१. प्राप्ति की सूची (Acquittance Roll)
२. संदिग्ध-आदेश-पुस्तक (Contingent Order Book)
३. घटना-क्रम रजिस्टर (Contingency Register)
. फीसों का अव्यवहारिक रजिस्टर (Abstract Register of fees)
५. फीसें लेने का रजिस्टर (Register of Fee Collections
६. खर्च और प्राप्ति का रजिस्टर (Register of Receipt and Expenditure)
७. बिलों (बीचक) का रजिस्टर (Bill Register)
८. दान-वृति का रजिस्टर (Register of Donations)
९. छात्र वृति का रजिस्टर (Register of Scholarship)
१० व्यवहारिक सूचनाओं का रजिस्टर (Practical Instruction Order Book)

(ग) शिक्षा सम्बन्धी (Educational)

१. विद्यार्थियों की हाज़री का रजिस्टर (Pupils' Attandance Register)
२. अध्यापकों की हाजिरी का रजिस्टर (Teachers' Attendance Register)
३. श्रेणी का समय विभाजन (Class Time-Tables)
४. अध्यापकों का समय-क्रम (Teachers' Time-Tables)
५. सामान्य समय-क्रम (General Time-Tables)
६. अध्यापकों का मासिक कार्यक्रम (Teachers' Monthly Programme of work)

७. मासिक उन्नति का रजिस्टर (Monthly Progress Register)

८. कालान्तर परीक्षा-फलों का रजिस्टर (Terminal Exminations Results Register)

९. शारीरिक दण्ड का रजिस्टर (Register of Corporal Punishments)

१०. प्राईवेट टयूशन का रजिस्टर (Private Tuition Register)

११. अध्यापकों की डायरी (Teachers, Diary)

१२. प्रारम्भिक स्कूल-रिपोर्ट–कार्डो की फाइल(File of Elementary school Report Cards)

१३. उतीर्णता और अनुतीर्णता का रिकार्ड(File of Promotion and Failure Report

१४. संग्रहीत या सामूहिक रिकार्ड (Cumulative Records)

(घ) सामान और साधन (Equipment)

१. स्कूल के फर्नीचर एवं अन्य सामग्री का स्टाक-रजिस्टर (Stock Book of Furniture and School Appliance)

२. पुस्तकों की सूची

३. पुस्तकालय का निष्कासन रजिस्टर(Library Issue Book)

४. लेखन-सामग्री का निष्कासन रजिस्टर (Stationery Issue Book)

५. खेलों के सामान का स्टाक और निष्कासन रजिस्टर (Stock and Issue of Sports Materials)

(च) पत्र–व्यवहार (Correspondence)

१. आगत और निक्षिप्त रजिस्टर ('From' and 'To' Registers)

२. विभागीय आदेशों और सूचनाओं की फाइल (File of Departmental Orders and Circulars)

३. (Public Examination File)

४. सवेतन छुट्टियों का रजिस्टर (Register of Casual Leave Granted)

कुछ महत्वपूर्ण रिकोर्डों, रिपोर्टों और रजिस्टरों का विवरण नीचे दिया जाता है।

१. लाग बुक या रोज़नामचा (Log-Book)

यह जरूरी है कि प्रत्तेक स्कूल एक लॉग बुक की व्यवस्था करे। आज कल तो केवल निरीक्षण अधिकारी अपनी टिप्पणियां इस पुस्तक में दे सकने हैं, परन्तु हमारा विचार है कि इस पुस्तक में स्कूल से सम्बन्धित पूर्ण घटनाओं का उल्लेख होना चाहिए ताकि यह स्कूल के इतिहास का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करे। इनमें विशेष घटनाएंमयी पाठ्य पुस्तकों का परिचय, पाठ्य-प्रणाली का क्षेत्र, इन्सपैक्टर द्वारा निर्धारित कोई पाठ्य पुस्तक-सम्बन्धी योजना, निरीक्षण अधिकारियों और शिक्षा-क्षेत्र के अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के भ्रमण, स्कूल-स्टाफ के दोष और कमजोरियां एवं स्टाफ की कोई कर्तव्य-अवहेलना स्कूल के समय में परिवर्तन, अन्य प्रकार की कई परिस्थितियां जिन का उल्लेख भविष्य के किसी सम्बन्ध या किसी अन्य कारणवश आवश्यक हो—सब बातें इस रजिस्टर में आ जानी चाहिएं।

प्रवेश–रजिस्टर (Admission Register)

प्रवेश रजिस्टर उन तमाम विद्यार्थियों का रजिस्टर है जो स्कूल में भरती हैं। इस में भरती होने की तिथि, विद्यार्थी का

क्रमांक, विद्यार्थी का नाम और आयु, पिता का नाम, जाति, व्यवस्था और पता, श्रेणी जिस में विद्यार्थी दाखिल किया जाता है और तिथि जब वह स्कूल छोड़ता है—आदि बातों का उल्लेख किया जाता है। विभागीय नियमों के अनुसार प्रवेश रजिस्टर स्थायी रूप से बनाना और रखना पड़ता है। इस रजिस्टर की व्यवस्था ध्यानपूर्वक होनी चाहिये ताकि कोई ग़लती न होने पाये, विशेषकर जन्म-तिथि के कालम में। इसका कारण यह है कि यह रजिस्टर साक्षी या प्रमाण के रूप में न्यायालय के उच्च अधिकारियों द्वारा मंगवाया जा सकता है। जब विद्यार्थी एक स्कूल से किसी दूसरे स्कूल में बदली कर लेता है तो इसमें नये अन्दराज करने पड़ते हैं।

३. हाज़री रजिस्टर (Pupils' Attendance Register)

यह एक और रजिस्टर है जिसका व्यवस्थ बहुत आवश्यक है। जहां तक सम्भव हो सके यह रजिस्टर एक ही अध्यापक के पास रहे। उस दशा में जबकि श्रेणियां छोटी हों, इस रीति से छूट हो सकती है। हमारे देश में हाज़री रजिस्टर स्कूल दिवस के प्रत्येक भाग का अलग अलग कालम रखते हैं। इस प्रकार सुबह और शाम दोनों भागों की अलग अलग हाज़री लगानी पड़ती है। हाज़री उसी समय लगा देनी चाहिये जिस समय श्रेणी अपने निश्चित समय के अनुसार इकट्ठी हो। अवकाश और उनकी प्रकृति का लेखा-जोखा रजिस्टर में लिख जाना चाहिये। अनुपस्थिति, मंद गति विद्या, निष्कासन, उतीर्णता, अनुतीर्णता और अधिकारियों द्वारा वान्छनीय अन्य सूचनाओं से यह रजिस्टर सूचित करे।

२. विभागीय आदेशों और सूचनाओं की फाइल (File of Departmental Orders and Circulars)

३. (Public Examination File)

४. सवेतन छुट्टियों का रजिस्टर (Register of Casual Leave Granted)

कुछ महत्वपूर्ण रिकोर्डों, रिपोर्टों और रजिस्टरों का विवरण नीचे दिया जाता है।

१. लाग बुक या रोज़नामचा (Log-Book)

यह जरूरी है कि प्रत्तेक स्कूल एक लॉग बुक की व्यवस्था करे। आज कल तो केवल निरीक्षण अधिकारी अपनी टिप्पणियां इस पुस्तक में दे सकने हैं, परन्तु हमारा विचार है कि इस पुस्तक में स्कूल से सम्बन्धित पूर्ण घटनाओं का उल्लेख होना चाहिए ताकि यह स्कूल के इतिहास का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करे। इनमें विशेष घटनाएंमयी पाठ्य पुस्तकों का परिचय, पाठ्य-प्रणाली का क्षेत्र, इन्सपैक्टर द्वारा निर्धारित कोई पाठ्य पुस्तक-सम्बन्धी योजना, निरीक्षण अधिकारियों और शिक्षा-क्षेत्र के अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के भ्रमण, स्कूल-स्टाफ के दोष और कमजोरियां एवं स्टाफ की कोई कर्तव्य-अवहेलना स्कूल के समय में परिवर्तन, अन्य प्रकार की कई परिस्थितियां जिन का उल्लेख भविष्य के किसी सम्बन्ध या किसी अन्य कारणवश आवश्यक हो—सब बातें इस रजिस्टर में आ जानी चाहिएं।

प्रवेश–रजिस्टर (Admission Register)

प्रवेश रजिस्टर उन तमाम विद्यार्थियों का रजिस्टर है जो स्कूल में भरती हैं। इस में भरती होने की तिथि, विद्यार्थी का

क्रमांक, विद्यार्थी का नाम और आयु, पिता का नाम, जाति, व्यवस्था और पता, श्रेणी जिस में विद्यार्थी दाखिल किया जाता है और तिथि जब वह स्कूल छोड़ता है—आदि बातों का उल्लेख किया जाता है। विभागीय नियमों के अनुसार प्रवेश रजिस्टर स्थायी रूप से बनाना और रखना पड़ता है। इस रजिस्टर की व्यवस्था ध्यानपूर्वक होनी चाहिये ताकि कोई ग़लती न होने पाये, विशेषकर जन्म-तिथि के कालम में। इसका कारण यह है कि यह रजिस्टर साक्षी या प्रमाण के रूप में न्यायालय के उच्च अधिकारियों द्वारा मंगवाया जा सकता है। जब विद्यार्थी एक स्कूल से किसी दूसरे स्कूल में बदली कर लेता है तो इसमें नये अन्दराज करने पड़ते हैं।

३. हाज़री रजिस्टर (Pupils' Attendance Register)

यह एक और रजिस्टर है जिसका व्यवस्थ बहुत आवश्यक है। जहां तक सम्भव हो सके यह रजिस्टर एक ही अध्यापक के पास रहे। उस दशा में जबकि श्रेणियां छोटी हों, इस रीति से छूट हो सकती है। हमारे देश में हाज़री रजिस्टर स्कूल दिवस के प्रत्येक भाग का अलग अलग कालम रखते हैं। इस प्रकार सुबह और शाम दोनों भागों की अलग अलग हाज़री लगानी पड़ती है। हाज़री उसी समय लगा देनी चाहिये जिस समय श्रेणी अपने निश्चित समय के अनुसार इकट्ठी हो। अवकाश और उनकी प्रकृति का लेखा-जोखा रजिस्टर में लिखा जाना चाहिये। अनुपस्थिति, मंद गति विद्या, निष्कासन, उतीर्णता, अनुतीर्णता और अधिकारियों द्वारा वान्छनीय अन्य सूचनाओं से यह रजिस्टर सूचित करे।

इस रजिस्टर की व्यवस्था पांच वर्ष के लिये की जानी चाहिये ।

४. स्कूल के सामान का स्टाक-रजिस्टर (Stock-Register of School Equipments)

यह रजिस्टर स्कूल की तमाम गतिशील सम्पति का रजिस्टर है । जब भी कोई गतिशील अस्थायी प्रकृति का सामान खरीदा या स्कूल में रखा जाता है; वह अवश्य ही ठीक रूप से इस रजिस्टर में लिखा जाना चाहिये । सम्बन्धित वस्तु के नाम के साथ, खरीदने की तारीख, स्कूल में प्राप्ति की तारीख, उसका मूल्य और अधिकारी जिसकी आज्ञा से सम्बन्धित वस्तु खरीदी गयी हो, का उल्लेख होना चाहिये । हैड मास्टर द्वारा स्टाक-रजिस्टर की जाँच साल में कम से कम एक बार अवश्य की जानी चाहिये और उसकी प्रमाणिकता, स्टाक में हुए अन्तर और उससे सम्बन्धित की गई क्रिया स्टाक रजिस्टर में दरज कर देनी चाहिए । जांच बहुत संक्षिप्त हो जाती है यदि प्रत्येक कमरे के सामान के अनुसार सूचीयां तैयार कर ली जाएं । प्रत्येक कमरे के सामान की सूची की प्रतिलिपी कमरे की दीवार पर लटका देनी चाहिए । यदि कमरे में कोई वस्तु बढ़ाई या कम की जाती है तो उसके विवरण के अनुसार सूची में भी संशोधन कर देना चाहिए । इस प्रकार कमरों के इंचार्ज अध्यापक कमरों के सामान पर ठीक प्रकार से नज़र रख सकेंगे और जांच करने का काम सुगम बन जायगा । प्रमाणित अधिकारी की आज्ञा के बिना कोई वस्तु स्टाक-रजिस्टर से काटी नहीं जानी चाहिये ।

सम्पत्ति की स्थिति	वीचक क्रमांक	स्कूल के आरम्भ में सम्पत्ति का मूल्य	वर्ष भर में वृद्धि			वर्ष भर में कमी			वर्ष के अन्त में मूल्य
			कुल पूंजी	अवस्था	जोड़	हानि	मूल्य में कमी	जोड़	
१									
२									
३									

५. अध्यापकों की हाज़री का रजिस्टर (Teachers' Attendance Register)

अध्यापक की प्रतिदिन की उपस्थिति का रिकार्ड रखने वाला यह रजिस्टर भी आवश्यक है। यह रजिस्टर प्रतिदिन अध्यापक के आने और जाने के समय से सूचित करे। इसका प्रयोग निरन्तर होना चाहिये। यह प्रतिदिन पूर्ण किया जाना चाहिये और अध्यापकों को प्रतिदिन सुबह और बाद दोपहर दोनों समय इस पर अपने हस्ताक्षर करने चाहिएं। मुख्याध्यापक को भी अपनी हाज़री रोज़ लगानी चाहिये और स्कूल शिक्षण के प्रत्येक भाग के दौरान अध्यापकों की हाज़री की भी जांच करनी चाहिये। अवकाश और उनकी प्रकृति की चर्चा भी इस रजिस्टर में होनी चाहिये। छुट्टियां भी इस रजिस्टर में दिखाई जायेंगी और छुट्टियों के प्रार्थना-पत्र, स्कूल के कार्यालय में फ़ाइल कर दिये जायेंगे। अध्यापकों द्वारा ली गयीं तमाम सवेतन छुट्टिया

हैडमास्टर को इस रजिस्टर में लिख देनी चाहिये।

अध्यापक का निजी रिकार्ड

नाम....................लिंग पु०............स्त्री... .....

घर का पता.......................

जन्म तिथि..................

जन्म स्थान..................

नौकरी ग्रहन करने की तिथि...............

स्कूल छोड़ने की तिथि..............छोड़ने का कारण...........

नौकरी से पहले प्राप्त की ट्रेनिंग	नौकरी से पूर्व प्राप्त अनुभव

स्कूल का नाम	तिथियां	डिग्री	अनुभव	स्कल	तिथि	स्थिति

६. अध्यापक का निजी रिकार्ड।

यह प्रायः देखने में आता है कि मुख्याध्यापक बहुधा अपना स्थान बदलते रहते हैं। जब कोई हैड मास्टर किसी नये स्कूल में

नौकरी ग्रहण करता है तो उसे कई परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों से उस का परिचय जरूर होना चाहिये। एक आवश्यक तत्व, जिस के लिये उसके ध्यान की जरूरत है, वह स्कूल की शिक्षण-शक्ति है। चाहे स्कूल छोटा हो या बड़ा, किन्तु वहां के तमाम कर्मचारियों के निजी रिकार्ड की व्यवस्था होनी चाहिये। यह रिकार्ड केवल हैडमास्टर की अपने अध्यापकों को समझाने और उनका अध्ययन करने में ही सहायता प्रदान करता, बल्कि यह अध्यापकों के लिये भी लाभदायक है। ऊपर दी गई आकृति अध्यापक के निजी रिकार्ड का एक उदाहरण है, जो व्यक्ति के विषय में यथेष्ट जानकारी प्रदान करता है।

...............में ट्रेनिंग और अनुभव

वर्ष	निर्दिष्ट इमारत	स्थिति	वार्षिक वेतन	मासिक वेतन	नौकरी के महीने	डिग्री	पाठ्य-क्रम

७. भरती कार्ड

स्कूल में प्रथम बार प्रवेश प्राप्त के समय, प्रत्येक विद्यार्थी के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। एक फार्म जिस में प्राप्त करने योग्य जानकारी का विवरण दिया गया है, शक्ल क्रमांक ५ में दिया गया है। भरती-कार्ड की दो कापियां होनी चाहिएं—एक कार्यालय के अधिकारी के पास और एक हैडमास्टर के दफ्तर में। कुछ स्कूल भरती कार्ड भिन्न २ रंगों में छपवाते हैं—एक रंग कार्यालय के लिये और एक रंग दफ्तर के लिये।

भरती कार्ड

विद्यार्थी..............................जन्म तिथि........................

पिता/माता का नाम..................................

जीवित पिता/माता या कोई नहीं......................

पिता/माता का व्यवसाय.............................

विगत स्कूल..........................

पास की हुई श्रेणी...... ....

चेचक के टीके की तिथि...............

घर का पता	[illegible]	घर का पता	क्रमांक

[illegible]	निर्दिष्ट स्कूल	श्रेणी	तिथि	निर्दिष्ट स्कूल	श्रेणी

८. अध्यापक का क्रमिक श्रेणी-पत्र :--

Teacher's Periodic Grade Sheet:--

यह पत्र एक ऐसा फार्म है जिससे मुख्याध्यापक विद्यार्थियों की श्रेणियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकता है । इस पत्र में अध्यापक का नाम, विषय, श्रेणी-काल और विद्यार्थियों के नामों की एक वर्णमाला के क्रमानुसार सूची, उनके निर्दिष्ट अंकों के साथ होनी चाहिए ।

इस प्रकार के रिकार्ड का प्रयोग प्राथमिक स्कूलों की बजाय सैकंडरी स्कूलों में अधिक किया जाता है ।

९. विद्यार्थी का प्रतिलेख फार्म:--

Pupil Transcript Form:--

बहुत से विद्यार्थी एक स्कूल से दूसरे स्कूल में चले जाते हैं इसलिये स्कूल के प्रबन्धकों को विद्यार्थी का रिकार्ड दूसरे स्कूल में भेजने के लिये एक फार्म की व्यवस्था करनी चाहिए। यह फार्म विद्यार्थी की हाज़री का विवरण, 'छात्रवृति, शारीरिक और मानसिक जानकारी, परीक्षाओं का परिणाम और दूसरी सर्व-साधारण जानकारी प्रदान करे।

स्कूल बदलने का कार्ड

....स्कूल

(नगर)............... ....प्राँत

.....................को

.....................जो इस ज़िला के............

(विद्यार्थी का नाम)

.........स्कूल में शिक्षा प्राप्त करता रहा है आप के ज़िला में आ रहा है। उसकी सूचना है कि अब वह.........में रहेगा।

.....................जब विद्यार्थी आप के स्कूल में भरती हो जाए तो कृपया यह कार्ड लौटा दें। यदि आप चाहें तो एक प्रतिलिपी आप को भेज दी जाएगी।

१० विद्यार्थी को उन्नति की रिपोर्ट :—
Pupil Progress Report—

स्कूल में, विद्यार्थी की सफलताओं का मूल्यांकन करना, विशेष कर पाठ्य-विषय के सम्बन्ध में, और माता-पिता को मूल्यांकन की सूचना एक निर्धारित फार्म पर, जिसे प्राग्रैस रिपोर्ट कहते हैं, भेजना एक परम्परागत क्रिया है। आज कल भी यह

रीति काफी लोकप्रिय है। यह सूचना-पत्र विद्यार्थी के माता-पिता और अध्यापक के दरम्यान एक शृंखला स्थापित करता है। माता-पिता को विद्यार्थी की उन्नति एवं विकास का उचित मूल्यांकन देना चाहिए। सूचना प्रदान करने की रीति का विकास-सहकारिता की भावना के आधार पर होना चाहिये। प्रजातन्त्र में जिस प्रकार का व्यवहार बाँछनीय हो, उस पर यथोचित ज़ोर डालना चाहिए। यह रचनात्मक और बच्चे की वृद्धि एवं विकास के प्रत्येक पक्ष से पूर्ण होना चाहिए। सूचना प्रदान करने की यह प्रणाली स्कूल के शिक्षण-दर्शन से निरन्तर निकट सम्पर्क स्थापित करे। यह सूचना–पत्र विद्यार्थी के परिवार की स्कूल के प्रति सद-भावना के निर्माण में महत्वपूर्ण काम करता है। यह एक महत्वपूर्ण सूत्र है, इसको उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। स्कूल के लिए घर का सहयोग अनिवार्य है––यदि हम चाहते हैं कि बच्चे के हितों का अधिक से अधिक ख्याल रखा जाए।

...........................स्कूल

.... (नगर का नाम;

विद्यार्थी का नाम ....काल म...................

श्रेणी.... ......आयु.......श्रेणी की औसत आयु..........

अनुपस्थिति.........दिन । श्रेणी की विद्यार्थी संख्या.........

श्रेणी में स्थिति.................

विषय	पूर्ण अंक	प्राप्त अंक	स्थिति	काम की विशेषता या गुण
अंग्रेजी ...				
हिसाब ...				
इतिहास ...				
भूगोल ...				
हिन्दी ...				
पंजाबी ...				
संस्कृत ...				
विज्ञान ...				
स्वास्थ्य-विज्ञान और शरीर-विज्ञान				
कला ...				
सामान्य-ज्ञान ...				
जोड़ ...				

हैड मास्टर

प्रिंसीपल

प्राथमिक स्कूल का सूचना-पत्र

श्रीमान और श्रीमती ....जी

निम्नलिखित रिपोर्ट, आप की सेवा में प्रस्तुत की जा रही है ताकि आप अपने बच्चे की उन्नति में परामर्श लेते रहा करें, और हम आप को सहयोग प्रदान करने के योग्य बन सकें। यह रिपोर्ट आप को निम्नलिखित चिन्हों के द्वारा सूचित करेगी कि आप का बच्चा क्या कर रहा है।

"अ" – प्रशंसनीय काम ।

"स"—संतोषजनक उन्नति ।

"ब"—योग्य काम नहीं कर रहा ।

साथ दी हुई टिप्पणियां आप को विषय विशेष में बच्चे की कमजोरी एवं शक्ति की व्याख्या में सहायता देंगी, और अध्यापक एवं माता-पिता में परस्पर सहयोग स्थापित करेगी ।

यह हमारी महत्वाकांक्षा है कि आप का बच्चा स्कूल में प्रसन्न रहे और क्षमता से काम कर पाए । ज्ञान एवं गुणों का प्राप्ति, अच्छी आदतों और सुन्दर प्रवृतियों का विकास और स्कूल के कार्यक्रमों में सहर्ष भाग, उसको एक सफल विद्यार्थी, स्वस्थ युवक और एक भद्र–नागरिक बनाएगा ।

हम आप को स्कूल पधारने और अध्यापकों एवं मुख्याध्यापक से परिचय प्राप्त करने का विनीत निमंत्रण देते हैं । कृपया यह पत्र शीघ्र लौटा दें । पत्र के अन्त में आप के हस्ताक्षर और टिप्पणियों के लिए कुछ स्थान छोड़ा गया है । आप के हस्ताक्षर का अर्थ होगा कि आपने रिपोर्ट का निरीक्षण कर लिया है ।

विनीत—

पहले तीन मास टिप्पणी

पढ़ाई	अ स ब	
भाषा	अ स ब	
गणित	अ स व	
लिखाई	अ स ब	
सामाजिक–अध्ययन	अ स ब	
स्वास्थ्य और शरीर सम्बन्धी विद्या	अ स ब	
शब्द-जोड़	अ स ब	
कला		
संगीत		
नागरिकता	अ स ब	
सामाजिक रुचियां	अ स ब	

"अ" प्रशंसनीय काम — उपस्थित.........दिन

"स" संतोषजनक — अनुपस्थित...........

"ब" असंघ जनक — संरक्षक के हस्ताक्षर......

उतीर्णानुतीर्ण रिपोर्टें

कुछ स्कूल वर्ष के अन्त में विद्यार्थियों की उतीर्णता एवं अनुतीर्णता की रिपोर्ट तैयार करते हैं। शक्ल न० १० इसके लिये प्रयोग किये जाने वाले फार्म का नमूना है। यदि इस प्रकार की रिपोर्ट वर्ष के अन्त में तैयार की जाय तो यह हैडमास्टर को कई चिन्ताजनक बातों का आभास करा सकती है जिनकी ओर ध्यान देना उसके लिये बहुत जरूरी है।

यह अध्यापक की समूचे स्कूल के साथ अपने सम्बन्धों की स्थिति जानने का अवसर प्रदान करेगी। क्या किसी श्रेणी या विषय विशेष में असमान्य रूप से अनुतीर्णता होनी चाहिए। असमान्य अनुतीर्णता के कारणों को जानने के लिये भविष्य में खोज करनी चाहिए। इस प्रकार के अध्ययनों के द्वारा ही, हैड-मास्टर कक्षेतीर्णता की समस्याओं को, जिनका समाधान अवश्यक है, आयत कर सकेगा।

स्कूल........................ तिथि...................

श्रेणी या विषय	भरती-संख्या	परीक्षार्थियों की संख्या	उतीर्ण	प्रतिशत उतीर्णता	अनुतीर्ण	प्रतिशत अनुतीर्ण
१						
२						
या						
हिसाब						
इतिहास						
भाषा						

संग्रहीत-रिकार्ड

संग्रहीत रिकार्ड की व्यवस्था कई शिक्षशास्त्रियों द्वारा लाभप्रद समझी गयी है। हारेस मान का विश्वास है कि अच्छा रिकार्ड व्यवस्था हाज़री की अनियमतता को रोकेगी, ठीक आंकड़े प्रदान करेगी, अध्यापक को बच्चे की मानसिक और आचारिक रिपोर्ट प्राप्त करने में सहायता प्रदान करेगी, प्रत्येक विद्यार्थी को स्वतुलना का अवसर देगी। यह रिकार्ड सद्कार्यों के लिये एक प्रेरणा और बुराइयों के लिये एक प्रतिबन्धक है।

संग्रहीत रिकार्ड स्कूल-व्यवस्था के अन्दर गतिवान बच्चे से सम्बन्धित तमाम महत्वपूर्ण आंकड़े इकट्ठे करने का एक साधन है। इस रिकार्ड का आधार वह दिन है, जब बच्चा स्कूल में प्रविष्ट होता है और बाद में श्रेणी से श्रेणी, स्कूल से स्कूल उसका अनुसरण करता है।

संग्रहीत रिकार्ड के लिये संग्रहनीय आंकड़े स्कूल की वैयक्तिक व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। यह रिकार्ड समूचे स्टाफ के निजी कार्य-कलापों में एक श्रृंखला स्थापित करे। और साथ ही बच्चे की वृद्धि और विकास का चित्र प्रस्तुत करे। स्कूल को व्यर्थ की जानकारियां प्राप्त करने की व्यवस्था नहीं करनी चाहिये, यदि उसके पास उनके प्रयोग की कोई योजनाएं नहीं।

इसमें निम्न लिखित बातें होनी चाहियें–

१. नाम, जन्म-तिथि, जन्म साक्षी, जन्म-स्थान, विद्यार्थी और उसके पिता का निवास-स्थान।

२. घर और जाति

३. छात्र-वृत्त

४. परीक्षा फल

५. हाज़री

६. स्वास्थ्य

संग्रहीत रिकार्ड व्यवस्था की विशेषताएं।

यदि वांछनीय बातें प्रत्येक स्कूल में भिन्न २ होती हैं किन्तु फिर भी कुछ विशेषतायें हैं जो एवं अच्छे संग्रहीत रिकार्ड के लिए ज़रूरी हैं।

१. संग्रहीत रिकार्ड का आरम्भ उसी दिन से किया जाए, जिस दिन बच्चा स्कूल में दाखिल होता है।

२. जब बच्चा छोटे स्कूल से बड़े स्कूल में आए, या स्कूल तबदील करले, तो यह रिकार्ड या इस का सारांश विद्यार्थी के साथ जाना चाहिए।

३. संग्रहीत रिकार्ड विद्यार्थी की वृद्धि और विकास का विस्तारपूर्वक चित्र प्रस्तुत करे। हर प्रकार के आंकड़े इकट्ठे करने का प्रयास करना चाहिए।

४. प्रयोग किए जाने वाले फार्म साधारण और सुगमता से समझे जा सकने वाले हों। उन की सुरक्षा के लिये अधिक मुनीमी काम की ज़रूरत न पड़े।

५. संग्रहीत-रिकार्ड-व्यवस्था स्कूल की एक समूचे काल की प्रवृतियों का प्रदर्शन करे। रिकार्ड-फार्म इस प्रकार के होने चाहियें कि आंकड़े तिथियों के क्रमानुसार रखे जा सकें। तमाम पूर्तियों पर तिथियां दी जानी चाहिएं।

६. उपलब्ध आंकड़ों का सारांश तैयार कर लेना चाहिए ताकि वह स्कूल के विकास और आवश्यकताओं एवं समस्याओं को प्रकट करने में साक्षी बन सके।

७. यद्यपि रिकार्ड अध्यापक की पहुंच में हो, आंकड़ों की रहस्य-प्रकृति का सम्मान करना चाहिए और रिकार्ड को तालों में रखना चाहिए।

इसकी व्यवस्था ऐसे हो कि आंकड़े बिलकुल ठीक हों और पूर्ण हों।

८. आंकड़ों के संग्रह में यथार्थ और निजी विचार में भेद करने का प्रयास करना चाहिए। अध्यापक अन्तर्निरुपक और बाह्य निरुपक विचारों के अन्तर को समझे।

